डॉ. सुरेश चन्द्र निर्मल

गोदान

प्रेमचन्द

आलोचना तथा व्याख्या

प्रेमचन्द कृत गोदान

समीक्षा तथा व्याख्या

(मूलपाठ सहित)

[विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये]

लेखक :
डॉ० सुरेशचन्द्र 'निर्मल'
एम० ए० (गोल्ड मैडलिस्ट), पी-एच० डी०

पूर्णतया संशोधित, परिवर्द्धित तथा नवीनतम सामग्री से युक्त
चतुर्थ संस्करण

सरन प्रकाशन मन्दिर
प्रकाशक मेरठ-२

लेखक का साहित्य

(विभिन्न विश्वविद्यालयों के एम० ए० हिन्दी के लिए)

पाठ्य पुस्तकें : डॉ० निर्मल

१. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो : आदि पूर्व (मूल सहित) „
२. कयमास-वर्ध „
३. विद्यापति-विभा : तृतीय सं० „
४. कबीर और कबीर की वाणी „
५. कबीर-सुधा (गढ़वाल) „
६. पद्मावत (३ खण्ड) (चतुर्थ संस्करण) „
७. भ्रमर गीत सार : चतुर्थ संस्करण
८. रामचरितमानस—बालकाण्ड : तृतीय संस्करण
९. तुलसी-काव्य-मणि (गढ़वाल)
१०. बिहारी-रत्नाकर
११. शिवा-बावनी „
१२. त्रिधारा (ठाकुर) „
१३. रीतिकाव्य संग्रह (देव) „
१४. सूर और सूरसागर : द्वितीय संस्करण „
१५. प्राचीन और मध्यकालीन कवि „
१६. अनुसंधान प्रविधि „
१७. आधुनिक वातायन से—हिन्दी साहित्य का इतिहास „ (प्रेस में)
१८. साहित्यकी निबन्ध

सहायक पुस्तकें : „

१९. निबन्ध-संकलन : समीक्षा तथा व्याख्या : द्वितीय संस्करण „
२०. कहानी संकलन : समीक्षा तथा व्याख्या : द्वितीय संस्करण „
२१. हिन्दी कहानी : १५ पगचिन्ह : (आगरा) : द्वितीय संस्करण „
२२. गोदान (मेरठ, दिल्ली, आगरा गढ़वाल) „
२३. गद्य विविधा : द्वितीय संस्करण „
२४. पुनर्नवा : द्वितीय संस्करण „
२५. दिव्या „
२६. चित्रलेखा „
२७. मानस का हंस „
२८. मैला आंचल डॉ० निर्मल
२९. त्यागपत्र „
३०. प्रिय प्रवास : तृतीय संस्करण „
३१. साकेत नवम सर्ग : द्वितीय संस्करण „
३२. कामायनी (मेरठ, आगरा, गढ़वाल) : चतुर्थ संस्करण „
३३. राग-विराग (मेरठ, आगरा) : द्वितीय संस्करण „
३४. सन्धिनी

३५. राम की शक्ति-पूजा (गढ़वाल) : द्वितीय संस्करण ,,
३६. दिनकर और उर्वशी : तृतीय संस्करण ,,
३७. आत्मप्तक (मेरठ, कानपुर) : तृतीय संस्करण ,,
३८. नया सजयी : द्वितीय संस्करण ,,
३९. अन्धा युग ,,
४०. रंगभूमि ,,
४१. भारत दुर्दशा ,,
४२. अजातशत्रु ,,
४३. रक्षाबन्धन ,,
४४. सिन्दूर की होली ,,
४५. कोणार्क ,,
४६. आधे अधूरे ,,

हमारे अन्य प्रकाशन (एम० ए० हिन्दी के लिये)

४७. चन्द्रगुप्त डॉ० जगदीशचन्द्र शर्मा
४८. रामचरितमानस—उत्तरकाण्ड डॉ० एल० बी० राम 'अनंत'
४९. कवित्त रत्नाकर (सेनापति) डॉ० देशराजसिंह भाटी
५०. घनानन्द-चयनिका : द्वितीय संस्करण डॉ० श्याम मिश्र
५१. भारतीय-पाश्चात्य काव्यशास्त्र डॉ० विदुला
५२. पन्त और उनका रश्मिबन्ध डॉ० द्विवेदी
५३. आँगन के पार द्वारा डॉ० विदुला
५४. भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा डॉ० त्रिगुणायत
५५. शेखर : एक जीवनी डॉ० त्रिगुणायत
५६. लोकसाहित्य का अध्ययन डॉ० अनन्त
५७. प्राकृत एवं अपभ्रंश विमर्श : द्वितीय संस्करण रीता शर्मा
५८. कामना
५९. आँसू
६०. लहर
६१. स्कन्द गुप्त
६२. जनमेजय का नाग यज्ञ
६३. गढ़ कुण्डार
६४. कामायनी (सम्पूर्ण)

● प्रकाशक :
रामकुमार शर्मा
(साझी)
सरन प्रकाशन मन्दिर
सुभाष बाजार, मेरठ २५०००२
● दूरभाष : २०५०१

● विक्रय स्थल :
निकट ईव्ज सिनेमा
मेरठ शहर
फोन : ७६७३०
● मूल्य : १६·०० रुपये

● मुद्रक : दयाल प्रिंटर्स, बीरु कुआँ, मेरठ।

विषय सूची

१ गोदान-समीक्षा

खण्ड (अ)

१ उपन्यास : एक तात्विक विवेचन

'उपन्यास' का अर्थ—

'उपन्यास' शब्द की मूल धातु है 'अस्'। संस्कृत में एक विशेष प्रकार की टीका-पद्धति 'न्यास' कहलाती थी जबकि उपन्यास का अर्थ—'वचन' या 'वाक्यक्रम' होता था। व्युत्पत्तिक दृष्टि से, 'उपन्यास' शब्द 'न्यास' शब्द में 'उप' उपसर्ग लगकर बना है। 'न्यास' का अर्थ है—थाती या धरोहर जबकि 'उप' 'समीप' का द्योतक है। इस प्रकार, 'उपन्यास' का शब्दार्थ हुआ—'समीप रखी धरोहर'। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ही इस शब्द का निर्माण-सूत्र है—उप+नि+अस्+घञ्। अर्थ कई हैं, यथा—निकट रखना, धरोहर, दान, वाक्य-प्रयोग, थाती, वक्तव्य, सुझाव, प्रस्ताव, भूमिका, प्रस्तावना, संकेत और उल्लेख आदि।

संस्कृत में—भारत में, विधा के रूप में उपन्यास एकदम आधुनिक युग की देन है यद्यपि इस शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल में भी हुआ मिलता है। इस शब्द के प्रथम प्रयोगकर्त्ता हैं—महर्षि भरत जिन्होंने "उपन्यासः सयुतश्च तच्चतुर्थ-मुदाहृतम्"[१] तथा "उपपत्तिकृतो स्वार्थः उपन्यासः प्रकीर्तितः"[२] कहकर इसको नाटक के अन्तर्गत क्रमशः पताका स्थानक का चौथा भेद और प्रतिमुख संधि का प्रमुख प्रतिभेद बताया था। इसके पश्चात् तो भामह, दडी, धनंजय और विश्वनाथ आदि आचार्यों ने इसको क्रमशः विन्यास स्थापना, नाटक की प्रतिमुख संधि तथा ज्ञापन आदि कई अर्थों में प्रयुक्त किया। लौकिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कथन, सन्दर्भ उदाहरण तथा वाङ्मय आदि कई अर्थों में किया गया मिलता है। संस्कृत शब्दकोष[३] में इसके कई अन्य अर्थ भी बताये गये हैं यथा—कल्पित कथा, परिकथा, उपकथा, कथा, उपाख्यान, कूटाथ तथा कूटार्थोपाख्यान, मिथ्य कथा तथा प्रबन्ध-कल्पना आदि।

अन्य भाषाओं में—भारत की विविध भाषाओं में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से और विविध अर्थों में किया गया मिलता है। तेलगू में इसका अर्थ 'भाषण' है तो तमिल-कन्नड़ आदि में इसके साथ-साथ 'वार्ता' भी। वार्ता, नवल

१—२. नाट्यशास्त्र : १६/३५ तथा १६/७६

३. मोनियर विलियम्स : डिक्शनरी इंग्लिश एण्ड संस्कृत : पृ० ५३८

कथा, तथा नवल कादम्बरी आदि इसी के पर्यायवाची हैं। "भारतीय भाषाओं में विशिष्ट कथा-रूप के लिये 'उपन्यास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग बंगला भाषा में सबसे पहले शक संवत् १७७३ में किया गया।"[१] जहाँ तक प्रश्न है हिन्दी का तो "ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी में उपन्यास शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम सन् १८७१ में एक कथा पुस्तक के शीर्षक रूप में 'मनोहर उपन्यास' के नाम से हुआ।"[२] इसके सम्पादक थे—सदानन्द मिश्र और शम्भूनाथ।

अंग्रेजी में—सच तो यह है कि आज हिन्दी में ही नहीं, भारत की अन्य कई भाषाओं में भी, 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग गद्य की एक विशेष विधा के लिये किया जाता है। सच में, यह शब्द पाश्चात्य 'नावल' (Novel) शब्द का समानार्थी है। अंग्रेजी का 'नावल' शब्द वस्तुतः लैटिन के Novus शब्द से व्युत्पन्न होकर आया है। Novus का शाब्दिक अर्थ है—नवीन तथा लघुकथा। इतावली भाषा का नावेला (Novella) भी इसी परम्परा में आता है जिसका शब्दार्थ है—समाचार अथवा वर्तमान में घटित कहानी।[३] गुजराती का नवल कथा, उर्दू का नावल और बंगला का गल्प आदि भी इसी वर्ग में आते हैं।

उपन्यास की परिभाषा :

वस्तु जितनी सरल होती है उसको परिभाषित करना उतना ही कठिन है। देशकाल और वैयक्तिक रुचि इसको प्रभावित तो करते ही हैं, परिवर्तित भी करते हैं। निःसन्देह, उपन्यास की परिभाषा भी अपवाद नहीं है। प्रमाण ? देश-विदेश के नाना विद्वानों ने उपन्यास को नाना प्रकार से परिभाषित किया है और वह भी नाना दृष्टियों से। समग्रतः, इन परिभाषाओं को ८ आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। ये आधार हैं—उपन्यास का आकार, नवीनता, गद्यात्मकता, यथार्थात्मकता, कल्पनात्मकता, चित्रणात्मकता, कथात्मकता और कलात्मकता। सुविधा की दृष्टि से इन परिभाषाओं को काल (और भाषा-साहित्य) क्रम से देखना अधिक सुविधाजनक है। इसके अनुसार उपन्यास की विविध परिभाषाओं को 3 वर्गों में रख सकते हैं—(i) संस्कृत परिभाषायें (ii) आंग्ल परिभाषायें तथा (iii) हिन्दी परिभाषायें।

संस्कृत में :

संस्कृत में कहा गया है "उपन्यासः प्रसादनम्" अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। एक अन्य कथन है "उपपत्तिकृतोऽर्थः उपन्यासः संकीर्तितः" अर्थात् युक्ति-पूर्वक कोई अर्थ प्रस्तुत करना ही उपन्यास है। इस प्रकार मनोरंजन और युक्ति उपन्यास के आवश्यक गुण माने गये। फिर भी, सच तो यह है कि, संस्कृत में उपन्यास

---

१. डॉ॰ जयन्तकुमार : क्रिटिकल स्टडी ऑफ दी लाइफ एण्ड नावल्स ऑफ बंकिमचन्द्र : पृ० ५

२. डॉ॰ माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी-परिचय : पृ० २७

३. डॉ॰ रामलखन शुक्ल : हिन्दी उपन्यास-कला : पृ० १

कोई स्वतन्त्र विधा नहीं थी। इसी से, इस साहित्य में उपन्यास-विषयक सुनिश्चित परिभाषाओं और विवेचन का प्रायः अभाव है।

आंग्ल साहित्य में :

उपन्यास निःसन्देह आंग्ल साहित्य की देन है। यही कारण है कि वहाँ पर उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन और उसी के अन्तर्गत स्वरूप-निर्धारण डटकर किया गया मिलता है। प्रमाणस्वरूप कुछ प्रमुख परिभाषायें देखिये—

(i) **राल्फ फाक्स**—"उपन्यास ··मानव-जीवन का गद्य है। यह प्रथम कला है जिसने मानव को सम्पूर्णता में लेने और उसे अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है।"[१]

(ii) **डेविड सिसिल**—"उपन्यास एक ऐसी कलाकृति है जो हमें जीवित जगत् से परिचित कराती है।"[२]

(iii) **प्रिस्टले**—"उपन्यास गद्य में लिखित कथा है जिसमें प्रधानतः काल्पनिक पात्र-घटनायें रहती हैं।"[३]

(iv) **क्लाए रीव**—"उपन्यास यथार्थ मानव-जीवन और व्यवहार का चित्र है। उसमें तत्कालीन समाज का चित्रण होता है।"[४]

(v) **वेब्स्टर**—"उपन्यास गद्य में लिखी हुई एक विशाल आकार की कल्पनात्मक कथा होती है। इसमें मानव-जीवन के यथार्थ स्वरूप का चित्रण करने वाले पात्रों और उनके कार्यों का अंकन होता है।"[५]

(vi) **आर्नल्ड कैटिल**—"उपन्यास एक गद्य-गाथा है जिसका आधार वास्तविक जगत् होता है और जो एक प्रकार की सीमितता और पूर्णता से युक्त होता है।"[६]

(vii) **हडसन**—"उपन्यास एक कल्पित कथा होती है जिसका आधार मनुष्य का यथार्थ जीवन ही होता है।"[७]

(viii) **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका**—"उपन्यास का मूलाधार उसमें निहित यथार्थात्मकता का तत्व है क्योंकि इसमें मानव-जीवन के सत्य का वास्तविक चित्रण किया जाता है।"

(ix) **न्यू पिक्चर्ड एनसाइक्लोपीडिया**—"उपन्यास दीर्घाकार गद्य में रचित वह कल्पित कथात्मक रचना है जिसमें जीवन के यथार्थ स्वरूप की परिचयात्मक कथा तथा पात्र सर्जित किये गये हों।"

---

१. नावल एण्ड दी पीपुल : पृ० ५२
२. हार्डी-दी नावलिस्ट :
३. दी इंगलिश नावेल : पृ० १-२
४. दी प्रोग्रेस ऑफ रोमान्स
५. न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी आफ इंग्लिश लैंग्वेज : पृ० १६७०
६. एन इन्ट्रोडक्शन टु दी इंग्लिश नावेल : पृ० २८
७. एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी ऑफ लिटरेचर : पृ० १६६

(x) क्रास—"उस गद्य आख्यान को कहते हैं जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करे।"[१]

हिन्दी में :

(i) **प्रेमचन्द**—"मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[२]

(ii) **श्यामसुन्दर दास**—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[३]

(iii) **गुलाबराय**—"उपन्यास कार्य-कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य-कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप में उद्‌घाटन किया जाता है।"[४]

(iv) **सीताराम चतुर्वेदी**—"उपन्यास ऐसी गद्य कथा है जिसमें विशेष कौशल से कौतूहल उत्पन्न करके कोई ऐसी सत्य या कल्पित कथा कही जाती है जिससे मनोविनोद होता हो या किसी विषय या नीति का परिचय और प्रचार किया जाता हो।"[५]

(v) **ब्रजरत्नदास**—"उपन्यास मानव-जीवन के छोटे या बड़े चित्र हैं जिनमें जीवन की ही व्याख्या की जाती है।"[६]

(vi) **रामचन्द्र वर्मा**—"उपन्यास वह काल्पनिक गद्य-कथा है जिसमें वास्तविक जीवन से मिलते-जुलते चरित्रों और कार्य-कलापों का विस्तृत और असम्बद्ध चित्रण हो।"[७]

(vii) **हजारीप्रसाद द्विवेदी**—"यह आधुनिक वैयक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है। इसमें लेखक अपना एक निश्चित मत प्रकट करता है और कथानक को इस प्रकार सजाता है कि पाठक अनायास ही उसके उद्देश्य को ग्रहण कर सकें। ··· वैयक्तिक दृष्टिकोण ही नए उपन्यासों की आत्मा है।"[८]

(viii) **डॉ० भगीरथ मिश्र**—"युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली में स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उप-

---

१. क्रास : दी डवलपमैन्ट ऑफ दी इंगलिश नावल : पृ० १.
२. कुछ विचार : पृ. ७१
३. साहित्यालोचन : पृ० १८०
४. काव्य के रूप : पृ० १५
५. समीक्षा शास्त्र : पृ० ६७०
६. हिन्दी उपन्यास : पृ० १०-११
७. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर : पृ० १२५
८. हिन्दी साहित्य : पृ० ४१३

न्यास कहलाता है।"[1]

(ix) **रामलखन शुक्ल**—"......आधार कथा है। वह कथा वास्तविक हो सकती है या कल्पित हो सकती है। कथा की प्रस्तुति में कल्पना का योग नितान्त आवश्यक है। कुतूहल के साथ मानवीय भावभूमि का प्रकाशन उसका चरम लक्ष्य होता है और किसी न किसी प्रकार के सिद्धान्त की आधार-भूमि पर उसकी निर्मिति होती है।"[2]

उपन्यास का स्वरूप :

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर उपन्यास का स्वरूप-निर्धारण करें तो उपन्यास काव्यात्मक गुणों से युक्त एक ऐसी विधा है जिसकी पृष्ठभूमि युग-चित्र और उद्देश्य मानव-जीवन का व्याख्यात्मक प्रस्तुतीकरण होता है। इसकी शैली सहज-स्वाभाविक और कथ्य-प्रस्तुतीकरण प्रत्यक्ष और परोक्षतः दोनों प्रकार से होता है। जीवन की विशाल झाँकियों, चरित्रों के उद्घाटन और मार्मिक अभिव्यक्तियों से यह परिपूर्ण होता है जिसमें मनोरंजन, शिक्षा, सत्याभासित चित्रण या संभावित सत्य भी साथ-साथ चलते हैं। सबसे अधिक तो, समस्त गद्य-विधाओं की कुछ न कुछ सुविधात्मक विशेषताओं से यह सुसज्जित होता है। विविधमुखी मानव-जीवन या मानव जीवन के विविधोन्मुखी पक्ष सर्वाधिक सशक्त, विस्तार और प्रभावोत्पादक रूप में इसी के माध्यम मे अंकित किये जा सकते हैं। जीवन की उपासना, अनुभव का प्रस्तुतीकरण, भूत, वर्तमान और भविष्य का दृष्टा तथा मानव द्वारा मानव का मानव के लिये किया गया सर्वाधिक रंग-बिरंगा जीवन-चित्र प्रस्तुत करने का दम-खम रखने वाली सर्वाधिक प्रचलित और आदृत गद्य-विधा उपन्यास ही है।

उपन्यास की उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से स्पष्ट है कि उपन्यास के स्वरूप पर प्रायः 'मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना' वाली स्थिति रही है। हर परिभाषाकार या तो तत्व-विशेष पर बल देता है या नाना तत्वों का समाहार करता है। उपन्यास का अर्थ और देश-कालानुसार बदलता रूप इसको तो बदलता ही रहा है, स्वरूप-निर्धारण पर भी पुनर्विचार करने को मजबूर करता रहा है। एकदम सच तो यह है कि "उपन्यास इस प्रकार का चित्र उपस्थित करता है जो पल-पल बदलता रहता है और नये रंग, नये रूप, नवीन दृश्य सामने प्रस्तुत करता है।"[3] यह "एक दर्पण है जो युगानुरूप मानव-समाज को लिए सड़क के किनारे-किनारे चलता रहा है।"[4]

उपन्यास के तत्व और प्रकार

संसार की प्रत्येक वस्तु का निर्माण कुछ विशिष्ट पदार्थों के समन्वय से

---

१. काव्य-शास्त्र : पृ० ७९

२. हिन्दी उपन्यास कला : पृ० ३

३. डॉ० रामअवध द्विवेदी : आलोचना-उपन्यास अंक : पृ० ३१

४. फ्रेन्च उपन्यासकार स्तान्दाल का मत

होता है। इन्हीं को पारिभाषिक शब्दावली में 'तत्व' कहा जाता है। निःसन्देह, उपन्यास इन्हीं से निर्मित वस्तु है। यूँ, उपन्यास की विधा एक विकसित कला-कुसुम की भाँति है। उसके उपकरणों को अलग-अलग करके देखना तो मानो किसी पुष्प की एक-एक पंखुडी को अलग-अलग कर देना अथवा प्याज की एक-एक परत को उतारते जाना है। फिर भी, जिस प्रकार मानव-शरीर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसके नाना अंग-प्रत्यंगों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, उसी प्रकार 'उपन्यास' की सम्यक् जानकारी पाने के लिये इसके विभिन्न निर्माता-तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना भी जरूरी है।

परम्परागत दृष्टि से देखें तो प्रारम्भ में उपन्यास के तीन मूल तत्व माने गये थे—कथावस्तु, चरित्र-चित्रण और सैटिंग। संभवतः इसी का अनुकरण करते हुए आज के कुछ समीक्षक (यथा सीताराम चतुर्वेदी) भी ३ ही तत्व मानते हैं—कथा, पात्र तथा व्यापार (घटना-समूह)। उनके मतानुसार—"उद्देश्य वास्तव में तत्व न होकर परिणाम है और 'संवाद' तथा 'शैली' उस कथा को उद्देश्य तक पहुँचाने के साधन। देश-काल, घटना-समूह या व्यापार के अन्तर्गत आ जाता है।" कुछ समीक्षकों ने कौतूहल (सस्पेन्स) को भी तत्व माना है। ध्यान से देखें तो उपन्यास का मूलाधार होती हैं—घटनाएँ जिनका समुच्चय कथानक या कथावस्तु कहलाता है। ये घटनाएँ घटती हैं—पात्रों के माध्यम से और सम्बन्धित भी उन्हीं के जीवन से होती हैं। इन पात्रों का प्रस्तुतीकरण ही **'चरित्र चित्रण'** है। इन पात्रों को अभिव्यक्ति हेतु आवश्यकता पड़ती है पारस्परिक **वार्तालाप या संवादों** की जो एक **काल और वातावरण** विशेष में होते हैं। निःसन्देह इनका प्रस्तुतीकरण किया जाता है - **भाषा-शैली** के द्वारा तथा इन सबका कुछ न कुछ निश्चित लक्ष्य या उद्देश्य भी होता है। इस प्रकार, समग्रतः जिन तत्वों से उपन्यास का निर्माण होता है, वे छः हैं—(१) कथानक या कथावस्तु (२) पात्र या चरित्र-चित्रण (३) संवाद या कथोपकथन (४) देश-काल या वातावरण (५) उद्देश्य अथवा कथ्य (६) भाषा-शैली।

तत्व-परिचय :

कथानक :

उपन्यास की कथा को कथानक कहा जाता है जिसका मुख्य आधार घटनाएँ होती हैं। इस प्रकार, कथानक (या प्लाट) "घटनाओं का वह साधारण या जटिल ढाँचा है, जिसके सहारे किसी उपन्यास का निर्माण होता है।"[1] विषय-प्रकार की दृष्टि से यह सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है तो कालानुसार ऐतिहासिक या काल्पनिक अथवा उद्देश्य की दृष्टि से यथार्थमूलक या आदर्शमूलक। शास्त्रीय दृष्टि से इसके दो भेद हैं—(१) आधिकारिक अथवा प्रधान तथा (२) प्रासंगिक अथवा गौण। सभी स्थितियों और प्रकारों में यह

---

१. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला : पृ० १२७

मानव-जीवन से सम्बन्धित, युग-जीवन को मुखर करने वाला, जीवन की नाना समस्याओं और मूल्यों का मूल्यांकन करने वाला एवं मानवीय अनुभूतियों से परिपूर्ण होना चाहिये। साथ ही साथ, स्वाभाविकता. विश्वसनीयता, पारस्परिक सम्बद्धता, वैचारिकता. मौलिकता, कौतूहलता और रोचकता आदि भी श्रेष्ठ कथानक के अन्य आवश्यक गुण हैं। उपन्यास के निर्माण में इसका विशेष महत्व होता है। प्रमाण ? यही वह तत्व है जो वर्णित कालक्रम से शृंखलित घटनाओं को रीढ़ की हड्डी की तरह दृढ़ता देकर गति देता है और जिसके चारों ओर घटनाएँ बेल की भाँति उगती, बढ़ती और फैलती हैं। कथानक का अर्थ है—कार्य-व्यापार की योजना। कथा या कथनी भी साधारणतः कार्य-व्यापार की योजना ही होती है परन्तु कैसी भी कोई कथा, कथानक नहीं कही जा सकती।"[1] लेखक का समस्त कथ्य इसी में मुखर होता है, पात्रों का संयोजन और संवादादि प्रत्यक्षतः इसी को उजागर करते हैं, देशकाल इसी की पृष्ठभूमि बनता है तथा उद्देश्य-प्रकटीकरण का सबल माध्यम भी यही होता है। सच तो यह है कि उपन्यास की अट्टालिका का निर्माण कथानक की नींव पर ही होता है।

पात्र अथवा चरित्र-चित्रण :

पात्र किसी भी उपन्यास के वे चरित्र होते हैं जिनके माध्यम से कथा और उसकी घटनाएँ घटित होती हैं। उपन्यास का मूलाधार यही होते हैं। इसी से ठीक ही कहा गया है कि "The foundation of good fiction is character-creation and nothing else"[2] प्रमाण ? "कथा की घटनाएँ चरित्रों के स्वभाव और प्रकृति से जन्म लेती हैं, वातावरण का निर्माण चरित्रों की विशेषताओं के घटने से होता है. संवाद इन्हीं के लिये और इन्हीं के द्वारा प्रयुक्त होते हैं तथा उद्देश्य भी इन्हीं में निहित होता है।"[3]

पात्र प्रकार का निर्धारण कई दृष्टियों से किया जाता है। स्थूलतः, **लिंग के आधार पर** ये स्त्री और पुरुष, **काल के आधार पर** ऐतिहासिक, पौराणिक तथा **वृत्ति के आधार पर** यथार्थवादी और आदर्शवादी होते हैं। **कथा में महत्व के आधार पर** इनको प्रमुख और गौण माना जाता है तो **कथा-सम्बन्ध के आधार पर** व्यक्ति-वादी और वर्ग-प्रतिनिधि आदि। कभी ये प्रतीक मात्र होते हैं तो कभी-कभी मात्र काल्पनिक। फिर भी, श्रेष्ठ चरित्र के लिए कुछ आवश्यक गुण होने अनिवार्य माने गये हैं, यथा-कथा से सम्बद्धता, स्वभाविकता, चारित्रिक सप्रमाणता, विश्वसनीयता, भावनात्मक सहृदयता, रचनात्मक मौलिकता, बौद्धिकता और सबसे अधिक प्रभावात्मकता।

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोष-भाग १ : पृ० २०३

२. आर्नल्ड बैनट : डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : शिप्ले

३. आर्नल्ड बैनट : हिन्दी साहित्य कोष भाग १ : पृ० ४८९

पात्र-प्रस्तुतीकरण करना ही चरित्र-चित्रण है। दूसरे शब्दों में "चरित्र-चित्रण किसी गद्य (उपन्यास) के पात्रों की वैयक्तिक तथा विशिष्ट विशेषताओं के पारस्परिक वैभिन्य का स्पष्टीकरण करने वाली एक प्रणाली है।"[1] आवश्यक यह है कि इनका "...अंकन कुछ इस प्रकार की स्वाभाविकता के साथ किया जाये कि वे निर्जीव पुस्तक के पृष्ठों से परे मूर्त होकर जीवन्त वैयक्तिकता ग्रहण कर लें।"[2] इसके लिये उपन्यासकार उनकी "जाति, वर्ग या व्यक्ति का प्रतिनिधित्व, आंतरिक और वाह्य व्यक्तित्व, उसके व्यक्तित्व की सामान्य और सूक्ष्म विशेषताएं उसकी आकृति, वेशभूषा, वार्तालाप की शैली, भाषा आदि"[3] का विस्तृत अंकन करता है। इसके लिए वह नाना साधनों का प्रयोग करता है। ये साधन ही चरित्र-चित्रण की शैलियाँ कहलाते हैं जिनमें से प्रमुख हैं—वर्णन, विवरण, विश्लेषण, संवाद, नाटकीय, स्वगत आदि।

संवाद :

उपन्यास का तीसरा तत्व है—संवाद अथवा कथनोपकथन। साधारणतः, उपन्यास के पात्रों का परस्पर वार्तालाप करना ही संवाद है यद्यपि कभी कभी (यथा चिंतन या विश्लेषण में) अकेले पात्र की वार्ता (स्वगत) भी इसी का अंग है। यह तत्व मूलतः नाटक की देन है। उपन्यास में यह मुख्यतः ३ कार्य करता है—कथा को विकास या गति प्रदान करना, पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करना तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना। कथा-पात्र-अनुकूलता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता परस्पर सम्बद्धता मनोवैज्ञानिकता और उद्देश्यपूर्णता आदि श्रेष्ठ संवाद-योजना के आवश्यक गुण हैं।

देश-काल अथवा वातावरण :

देशकाल अथवा वातावरण वह पृष्ठभूमि है जिसमें पात्रों द्वारा कथा-घटनाएं घटित होती हैं। इसके अन्तर्गत "सामान्य रूप से किसी भी देश अथवा समाज की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएं समझी जाती हैं। देश-काल के अन्तर्गत युग की परिस्थितियाँ और विशिष्ट सन्दर्भ में किये गये आन्दोलनों आदि की व्यापक भूमिका भी प्रस्तुत की जाती है।"[4] यहाँ पर यह बात भी दृष्टव्य है कि देश-काल अथवा वातावरण बाह्य तो होता ही है, आन्तरिक (पात्र की मनः स्थिति-विषयक) भी होता है।

---

१. स्काट मेरेडिथ : स्टफिंग दी हालोमैन : पृ० ६२

२. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला : पृ० १६५

३ वही : १६६

४. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला : पृ० ३००

उपन्यास में देश-काल का प्रयोग मुख्यतः तीन बातों के लिये किया जाता है—कथा को विश्वसनीय बनाने के लिये, पदार्थों में यथार्थता का समावेश करने के लिये तथा औपन्यासिक प्रभाव की सृष्टि के लिए। इसके प्रमुख आवश्यक गुण हैं—वर्णन की सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पना, संतुलन और कथा-पात्रानुकूलता। देश-काल सर्वथा काल्पनिक (यथा जासूसी-तिलस्मी), संभावित-काल्पनिक (यथा ऐतिहासिक-सामाजिक) और इतिहासपुष्ट काल्पनिक (यथा ऐतिहासिक-पौराणिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। इसका क्षेत्र अंचलविशेष और स्थानीय रंग से लेकर कितना भी व्यापक हो सकता है।

उद्देश्य :

उपन्यासकार अपनी रचना के माध्यम से कुछ न कुछ कहना चाहता है इस 'कुछ' को पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। इसी को उसका (उपन्यासकार और उपन्यास दोनों का) उद्देश्य कहा जाता है। महत्व की दृष्टि से उद्देश्य प्रमुख और गौण दो प्रकार के होते हैं। सामान्यतः उपन्यास के उद्देश्य हैं—नीति-शिक्षा, मनोरंजन, कौतूहल-सृष्टि, सुधार-भावना, समस्याओं का चित्रण और समाधान तथा जीवन-दृष्टि का प्रकटीकरण उपन्यास-विशेष में कथा या पात्र का प्रस्तुतीकरण, स्थान-काल या प्रवृत्ति-विशेष का चित्रण तथा सामाजिक वैयक्तिक स्थिति का दिग्दर्शन आदि भी उपन्यास के सामान्य उद्देश्य होते हैं।

उद्देश्य उपन्यास-स्वरूप का भी निर्धारक तत्व है और इसी के आधार पर उपन्यास का वर्गीकरण भी किया जाता है। कभी-कभी पात्र-विशेष की मान्यता को भी उपन्यासकार की मान्यता समझ लिया जाता है। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिये आवश्यक है कि उपन्यासकार अपने औपन्यासिक उद्देश्यों को सावधानीपूर्वक स्पष्ट करे।

भाषा-शैली :

भाषा-शैली उपन्यास का छठा और अन्तिम तत्व है। कुछ आलोचक इनको अलग-अलग भी मानते हैं यद्यपि मूलतः ये अभिन्न हैं। उपन्यास का अभिव्यंजना अथवा शिल्प-पक्ष इन्हीं में मुखर होता है।

उपन्यास में भाषा का प्रयोग दोहरे रूप में पाया जाता है। (अतएव इसका महत्व भी दोगुना हो जाता है) "प्रथमतः तो वह उपन्यासकार के मन में कथा के वैचारिक स्वरूप को व्यक्त करती है जिसके लिये उसके पास यही एक माध्यम होता है। इसी के द्वारा वह (उपन्यासकार) उसे पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ होता है। द्वितीयतः, वह अपने उपन्यास में जिन पात्रों की रचना करता है, अपने-अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व में वे भी पृथक् सत्ता से युक्त होकर अपने हृदय की विविध अनुभूतियों और भावनाओं की प्रतीति दूसरे को करा देते हैं।"[1] इस प्रकार किसी भी उपन्यास

---

१. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला : पृ० २३५

में भाषा का एक रूप तो वह होता है जिसको स्वयं उपन्यासकार अपने विवरण-वर्णनों और स्व-टिप्पणियों में प्रयुक्त करता है और दूसरा वह रूप जिसको पात्र संवादादि में प्रयोग करते हैं। कभी-कभी ये दोनों ही रूप एक से (उपन्यासकार के) हो जाते हैं (यथा जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में)। फिर भी उपन्यास की भाषा का निर्धारण इन दोनों ही रूपों के सम्बन्धित रूप पर किया जाता है। प्रकार की दृष्टि से उपन्यास की भाषा कई प्रकार की हो सकती है, यथा—सामान्य, साहित्यिक, मिश्रित, लोकभाषा, आंचलिक भाषा आदि। शास्त्रीय दृष्टि से, कथा-प्रसंग और पात्रानुकूलता, अभिव्यक्ति-सक्षमता, प्रेषणीयता और साहित्यिकता आदि उपन्यास की श्रेष्ठ भाषा की आवश्यक शास्त्रीय विशेषतायें हैं। इसका क्षेत्र भी विपुल होता है। प्रमाण ? भाषा में शब्द-समूह, वाक्य-विन्यास, मुहावरे-लोकोक्ति से लेकर सूक्ति-परकता, व्यंजनात्मक और विश्लेषण-परकता आदि सभी कुछ आ जाता है। इसी से माना तो यह गया है कि "……सफल भाषा वही होती है जो उपन्यास की कथा, काल और पात्रों के अनुरूप हो। उसमें स्थानीय मुहावरों और लोकोक्तियों का भी यत्र-तत्र उपयोग हो जिससे उसकी प्रवाहशीलता नष्ट न हो। भाषा में… सजग शब्दावली का प्रयोग और भावानुकूलता होनी चाहिये। प्रसंगों के अनुसार वाक्यों की लम्बाई का निर्धारण होना चाहिये। सामान्यतः छोटे और गठे हुये वाक्य भाषा की सफलता में सहायक होते हैं। भाषा का रूपगत परिवर्तन भी होना चाहिये।"[1]

उपन्यास में भाषा कोई अलग तत्व नहीं है। सच तो यह है कि उपन्यास के सभी तत्व इसी के द्वारा प्रकट होते हैं। अतएव उपन्यास की भाषा का सर्वाधिक महत्व तो उसकी अन्तःसम्बद्धता शक्ति से ही प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में "उपन्यास के प्रायः सभी उपकरणों में अनिवार्य अन्तःसम्बद्धता के रूप में जिस तत्व का महत्व सामान्य सन्दर्भ में सबसे अधिक है, वह भाषा तत्व ही है। औपन्यासिक प्रगति का एक आधार उस भाषा की समृद्धि भी है जो उसमें प्रयुक्त की जा रही होती है क्योंकि साहित्य और भाषा घनिष्ठ रूप में पारस्परिक सम्बद्धता रखते हैं।"[2]

शैली उपन्यास का वह पक्ष या माध्यम है जिसके द्वारा उपन्यासकार अपने कथ्य (उपन्यास) को पाठकों तक पहुँचाता है। इस प्रकार उपन्यास का प्रकट रूप (Form) ही शैली है। "उपन्यास में यह तत्व और भी अधिक वैशिष्ट्य इस कारण रखता है क्योंकि उपन्यास को आकर्षक रूप प्रदान करने में इसी तत्व का प्रधान योग रहता है। उपन्यास के अन्य सभी तत्वों से प्रत्यक्षतः अन्तःसम्बन्धित होते हुए भी यह उनकी रूपात्मक निर्मिति में सहायक होता है।"[3] इतना ही नहीं

१. वही : पृ० २३५
२. वही : पृ० २३४
३. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिंदी उपन्यास : पृ० २९६

वरन् 'सच पूछा जाये तो एक उपन्यास में जो वस्तु सबसे पहले पाठक का ध्यान आकर्षित करती है, वह उस उपन्यास की शैली है, क्योंकि पाठक का उससे ही सबसे पहले परिचय होता है।......(अन्य तत्वों से) पाठक का परिचय धीरे-धीरे ही बढ़ता है लेकिन जो चीज उसे उपन्यास को पढ़ने के लिये तुरन्त प्रेरित करती है, वह उस उपन्यास की शैली ही है।"[1] सामान्यत: प्रचलित शैलियाँ हैं—वर्णन, विश्लेषण, आत्म-कथात्मक, डायरी, पत्र, फ्लैशबैक, संवाद, नाटकीय, भावात्मक, लोककथात्मक, आंचलिक और मनोविश्लेषण।

उपन्यास के प्रकार

उपन्यास के प्रकार-निर्धारण अथवा भेद-विभाजन के मुख्य आधार दो हैं—वर्ण्य-विषय तथा शैली। **वर्ण्य-विषय के आधार पर** कथा के काल-पात्र को महत्व दिया जाता है। इसके अनुसार उपन्यास के प्रमुख प्रकार हैं—सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, तिलस्मी, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक आदि। इसी प्रकार **शैली के आधार पर** उपन्यास घटना या क्रिया-प्रधान, चरित्र-प्रधान और नाटकीय तीन प्रकार के माने जाते हैं। **उद्देश्य अथवा लेखक के प्रस्तुत जीवन-दर्शन के आधार पर** भी उपन्यास का वर्गीकरण किया जाता यथा—यथार्थमूलक, आदर्शमूलक, आदर्शोन्मुख, यथार्थवादी, अतियथार्थवादी, प्रकृतिवादी तथा प्रवाहवादी आदि। कुछ आलोचकों ने **वैयक्तिक रुचि के आधार पर** उपन्यास का प्रकार-निर्धारण किया है यथा—वृत्त-प्रधान और सामाजिक (एडविन मूर)। **वाद-विशेष या विचारधारा-विशेष पर** भी उपन्यास का वर्गीकरण किया गया है यथा—प्रगतिवादी, प्रयोगवादी आदि। हिन्दी में तो कभी-कभी **युगीन अथवा रचना-काल पर भी** उपन्यास-विभाजन किया गया मिलता है यथा-भारतेन्दुकालीन, प्रेमचन्द-युगीन, प्रसाद-युगीन आदि तो **विकास-क्रम के आधार पर** प्रेमचन्द-पूर्व, प्रेमचन्द-युगीन, स्वातन्त्र्योत्तरकालीन आदि के नाम से भी उपन्यास का वर्गीकरण किया गया है। यहाँ तक कि **देश-काल के आधार पर** भी ग्राम्य और नगरीय तथा आंचलिक आदि नामों से विभाजन किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपन्यास का प्रकार-निर्धारण नाना आधारों पर किया गया है और अभी भी यह क्रम जारी है। सच तो यह है कि उपन्यास का बहुविध प्रचार-प्रसार और नये-नये प्रयोग प्रकार-निर्धारण के प्रश्न को उठाते रहते हैं। अतएव, किसी एक तत्व पर ही यह वर्गीकरण सीमित नहीं रह सकता। उपन्यास निरन्तर विकसित होने वाली सशक्त विधा है और इसके प्रकार-निर्धारक तत्व समय समय पर परिवर्तित-वर्धित होते रहते हैं। समग्रत: कह सकते हैं कि उपन्यास के वर्गीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार उसका कथा-तत्व ही है और उसी के आधार पर वर्गीकृत उपन्यास-भेद अधिक प्रचलित और मान्य हैं।

---

१. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास : पृ० २६६

विवेच्य प्रश्न

१. उपन्यास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसका स्वरूप निर्धारित कीजिए।

२. "उपन्यास की परिभाषा देश-कालानुसार बदलती रही है, इसी से उसका स्वरूप भी पल-पल परिवर्तित रहा है" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

३. उपन्यास से आप क्या समझते हैं और इसको किस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं ?

४. उपन्यास को परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

५. उपन्यास के स्वरूप-निर्धारक तत्व कौन से हैं और क्यों ? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

६. उपन्यास के आवश्यक तत्वों का परिचय देते हुए उसके प्रमुख प्रकारों का परिचय दीजिये।

७. उपन्यास के आवश्यक तत्व और प्रकारों का परिचय दीजिये।

८. उपन्यास का निर्माण किन तत्वों के आधार पर होता है तथा कौनसे तत्व उसका प्रकार निर्धारण करते हैं ?

९. उपन्यास के स्वरूप और प्रकार-निर्धारक तत्वों का परिचय दीजिये।

१०. उपन्यास की तात्विक विशेषताओं का परिचय देते हुए उसका वर्गीकरण कीजिये।

२ हिन्दी—उपन्यास : उद्भव और विकास

पृष्ठभूमि और प्रेरणा-स्रोत :

विधा—स्थापन और सृजन-काल की दृष्टि से हिन्दी-उपन्यास निःसन्देह आधुनिक काल की देन है यद्यपि 'उपन्यास' शब्द अत्यन्त पुराना है। कालक्रम से इस शब्द के सर्वप्रथम प्रयोगकर्त्ता थे—भरत मुनि जिन्होने अपने 'नाट्यशास्त्र' में "उपपत्तिकृतो स्वार्थः उपन्यासः प्रकीर्तितः" कहकर इसको नाट्यान्तर्गत प्रतिमुख सन्धि का एक उपभेद माना था : संस्कृत के लौकिक साहित्य में कुछ ऐसी रचनायें भी हैं, जो इसके अत्यन्त निकट हैं। निःसंदेह, इन रचनाओं में "उपन्यास की न तो भावशीलता है, न जीवन को व्यापक रूप से देखने की दृष्टि और न शैली की ही सहज रोचकता है। फिर भी, औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से, बाणभट्ट की 'कादम्बरी' तथा दंडी का 'दशकुमार-चरित', जिनमें घटना, चरित्र और शैली तीनों की रमणीयता है, उपन्यास के निकट पहुँचते हैं।"[1] आगे चलकर प्राकृत और अपभ्रंश में भी ऐसी कुछ रचनायें मिलती हैं।

प्रेरणा-स्रोत की दृष्टि से देखें तो प्राचीन संस्कृत तथा ग्रीक, लैटिन साहित्य में प्रचलित आख्यायिकाओं, गाथाकाव्यों, यात्रियों और पर्यटकों के यात्रा-वृत्तान्तों विषयक ग्रन्थों में उपन्यास के कई तत्व ढूँढे जा सकते हैं ढूँढे भी गये हैं किन्तु फिर भी इससे सत्य इन्कार नहीं किया जा सकता है कि आज के मान्य रूप में, उपन्यास एकदम आधुनिक काल की देन है। आंग्ल साहित्य में सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में स्वरूप ग्रहण कर लेने वाले उपन्यास का भारत में प्रवेश बीसवी शताब्दी में ही संभव हो सका, वह भी बंगला साहित्य के माध्यम से। इस शताब्दी में, आंग्ल साहित्य के प्रभावस्वरूप, जो-२ नये-नये साहित्य-रूप हमारे देश के साहित्य में, उत्पन्न हुए, उपन्यास उनमें अन्यतम बनकर प्रकट हुआ।

हिन्दी में शुद्ध उपन्यास-विधा का श्रीगणेश बीसवीं शताब्दी में हुआ है। निःसन्देह, इसके प्रेरणा-स्रोत मराठी, बगला और आंग्ल उपन्यास और उनके प्रभाव थे जो हिन्दी तक अनुवाद के माध्यम से पहुँचे थे। स्वय "भारतेन्तु हरिश्चन्द्र ने

---

१. देखिये—हिन्दी साहित्य कोष प्रथम भाग : पृ० १५६

मराठी से अनूदित 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक हिन्दी का प्रथम सामाजिक उपन्यास प्रस्तुत किया।[1] इसी अनुवाद-परम्परा को (इसी काल में) बढ़ाया — बाबू गोपालराम गहमरी (चतुर चंचला, नये बाब, बड़ भाई), राधाकृष्णदास (स्वर्णलता, मरता क्या न करता), हरिऔध (वेनिस का बाँका, अधखिला फूल), गदाधर, मिश्र (बंगविजेता, दुर्गेशनन्दिनी), राधाचरण गोस्वामी (सावित्री, विरजा, मृणमयी) तथा प्रतापनारायण मिश्र (राजसिंह, इन्द्रा, राधारानी), आदि ने जिन्होंने मुख्यतः बंगला और अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यास दिये तथा हिन्दी में उपन्यास-विधा का सूत्रपात किया।

हिन्दी का प्रथम उपन्यास :

इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है और उन्होंने प्रायः 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' का ही परिचय दिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महत्व तो किशोरीलाल गोस्वामी को दिया है किन्तु प्रथम उपन्यासकार का गौरव पद श्रीनिवासदास-कृत **परीक्षा गुरु**' को प्रदान किया है।[2] डॉ० माताप्रसाद गुप्त सन् १८७१ में प्रकाशित एवं सतानन्द मिश्र और शभूनाथ द्वारा सम्पादित '**मनोहर**' नामक उपन्यास को यह पद देते हैं[3] तो श्री रामचन्द्र तिवारी श्रद्धाराम फिल्लौरी-कृत '**भाग्यवती**' को और शिव-नारायण श्रीवास्तव 'रानी केतकी **की कहानी**' (इंशाअल्ला खाँ) को।[4] डॉ० श्री-कृष्णलाल देवकीनन्दन खत्री की '**चन्द्रकान्ता**' को प्रथम उपन्यास मानते हैं[5] तो श्री गुलाबराय प्रेमचन्द के '**सेवासदन**, को।[6]

हिन्दी उपन्यास के विकास-सोपान : वर्गीकरण और विकास :

आधुनिक काल में ही प्रकाश में आने पर भी, हिन्दी-उपन्यास का विकास तीव्र गति से हुआ है। इस विकास-मात्रा को भी किसी ने विकास-स्थिति के आधार पर बाँटा तो किसी ने प्रवृत्ति और किसी ने स्थापक-उपन्यासकार के नाम पर। बिना किसी विवाद में पड़े कहें तो हिन्दी-उपन्यास की इस विकास-मात्रा को मुख्यतः ३ सोपानों में रख सकते हैं—(१) प्रारम्भिक सोपान, (२) विकास सोपान, (३) वर्तमान सोपान।

प्रारम्भिक सोपान :

इस स्थिति की सीमा उपर्युक्त चर्चित उपन्यासों से लेकर प्रेमचन्द तक रखी जा सकती है। प्रवृत्ति या प्रकार की दृष्टि से इस युग में **चार प्रकार के उपन्यास**

---

१. हिन्दी साहित्य कोष : प्रथम भाग : पृ० १५६

२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ५००

३. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी पुस्तक परिचय : पृ० १६

४. हिन्दी उपन्यास : पृ० ६१

५. हिन्दी साहित्य-द्वितीय भाग

६. काव्य के रूप : पृ० १६०

मिलते हैं—सामाजिक, जासूसी, तिलस्मी और ऐय्यारी, ऐतिहासिक तथा आख्यायिका। प्रथम वर्ग में उपर्युक्त चर्चित उपन्यासकारों के साथ-साथ कुछ अन्य नाम भी प्रमुख हैं, यथा—बालकृष्ण भट्ट (नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान) राधारमण गोस्वामी (विधवा विपत्ति, कल्पलता, चन्द्रकला), राधाकृष्णदास (निःसहाय हिन्दू), लज्जाराम शर्मा (धूर्त रसिक लाल) हरिऔध (ठेठ हिन्दी का ठाट), ब्रजनन्दन सहाय (सौन्दर्योपासक)। दूसरे वर्ग में आते हैं—देवकीनन्दन खत्री (चन्द्रकान्ता २४ भाग, चन्द्रकान्ता संतति ४ भाग, भूतनाथ, रक्त-मण्डल, नरेन्द्रमोहिनी), देवीसहाय शुक्ल (भयानक भेड़िया)। तीसरे में प्रमुख हैं—रामकृष्ण वर्मा (अकबर) तथा किशोरी लाल गोस्वामी जिन्होंने सर्वाधिक उपन्यासों (६५) की रचना की। आख्यायिका शैली के प्रतिनिधि हैं—अंबिकादत्त व्यास (आश्चर्य-वृत्तान्त) तथा ठाकुर जगमोहनसिंह (श्यामा स्वप्न)। इन सभी उपन्यासों की सामान्य विशेषतायें हैं—कथा-प्रधानता, घटनाधिक्य, अविश्वसनीय कल्पना, प्रेम-प्रमुखता, अतिरेकता तथा मनोरंजन-प्रधानता। अधिकांश उपन्यासों में मौलिकता का अभाव और बंगला का प्रभाव मिलता है।

विकास-सोपान :

इस समय तक उपन्यास को निश्चित रूप और लक्ष्य मिल चुका था। इसका सर्वाधिक श्रेय है श्री प्रेमचन्द को जिन्हें 'उपन्यास सम्राट्' तक कहा गया है। आदर्शोन्मुख यथार्थ, समाज-सुधार और राष्ट्रीयता इनके प्रमुख स्वर हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं—सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, निर्मला, कायाकल्प और गोदान। इसी परम्परा को बढ़ाने वाले इन्हीं के समकालीन कुछ प्रमुख नाम हैं—विश्वम्भर नाथ कौशिक (माँ) जयशंकर प्रसाद (कंकाल, तितली, इरावती), उषादेवी मित्रा (पिया), धनीराम प्रेम (वेश्या का हृदय), भगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रफुल्ल चन्द्र ओझा तथा श्रीनाथसिंह आदि।

इस काल में हिन्दी-उपन्यास में विविधता आयी। ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और प्रकृतिवादी न जाने कितने प्रकार के और कितने उपन्यास इसी युग में रचे गये। ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक सफल रहे—वृन्दावन लाल वर्मा (मृगनयनी, झाँसी की रानी, कचनार, अचल मेरा कोई, गढ़कुंडार, सोना), चतुरसेन शास्त्री हृदय की परख, हृदय की प्यास, गोली, वयं रक्षाम, सोना और खून) और भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा)। राजनैतिक उपन्यासों में विशेष नाम कमाया यशपाल (झूठा सच, पार्टी कामरेड, दादा कामरेड), राहुल (सोने की ढाल, सिंह सेनापति, जय यौधेय), रांगेय राघव (विषाद मठ, कब तक पुकारूँ, मुर्दों का टीला) आदि ने। इसी काल में एक नयी धारा चली-मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की जिसमें तीन प्रमुख नाम उभरे—जैनेन्द्र (सुनीता, कल्याणी, सुखदा, विवर्त्त, त्यागपत्र, व्यतीत और जयवधन), अज्ञेय (शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी) तथा इलाचन्द जोशी (पर्दे की रानी, संन्यासी,

प्रेम और छाया, सुबह के भूले, जिप्सी, जहाज का पंछी)। इसी वर्ग के कुछ अन्य नाम हैं—डॉ० देवराज (पथ की खोज), द्वारकानाथ (घेरे से बाहर रजना, रति, मम्मी बिगड़ेगी आदि)। प्रकृतवादियों में सर्वाधिक कटु और नग्न यथार्थ दिया—पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र ने (शराबी, दिल्ली का दलाल, चंद हसीनों के खतूत, जीजी जी तथा सरकार तुम्हारी आँखों में। इसी युग के कुछ अन्य प्रमुख नाम हैं—भगवती-प्रसाद वाजपेयी (विश्वास का बल, यथार्थ से आगे, सूनी राह, सपना बिक गया), अमृतलाल नागर (महाकाल, सुहाग के नूपुर, मानस का हंस, एकदा नैमिषारण्ये, बूँद और समुद्र) तथा गोविन्दवल्लभ पंत (नूरजहाँ)। इस युग में हिन्दी-उपन्यास में विविधता, गहनता और परिपक्वता डट कर पाई जाती है।

वर्तमान सोपान :

इस वर्ग में अधिकांशतः स्वातन्त्र्योत्तर-कालीन उपन्यास आते हैं। इस युग में एक ओर तो विकास-युग के उपन्यासकार सजग-सक्रिय रहे, साथ ही अनेक नये नाम भी प्रकाश में आये। ऐसे ही कुछ प्रमुख नाम हैं—श्री राजेन्द्र यादव (सारा आकाश, उखड़े हुये लोग, शह और मात, कुलटा), मोहन राकेश (अन्धेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल), मन्नू भंडारी (आपका बंटी, महाभोज), यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र (संन्यासी और सुन्दरी), यज्ञदत्त शर्मा (इन्सान, निर्माण-पथ, झुनिया की शादी) आनन्द प्रकाश जैन (अन्तस्तल, ताँबे के पैसे, आग और फूस), लक्ष्मीनारायण लाल (धरती की आँख, बया का घोंसला और साँप), कमलेश्वर (एक सड़क सत्तावन गलियाँ, आँधी)। बहुत सी नारी-उपन्यासकार भी इसी युग की देन है तथा उषा प्रियंवदा (पचपन खंभे लाल दीवारें) शिवानी (भैरवी, चौदह फेरे) अमृत प्राप्त (रंग का पत्ता, हीरे की कनी, पिंजर तथा तेरहवाँ सूरज) रजनी पाणिक्कर (प्यासे बादल) इतना ही नहीं, कुछ सर्वथा नये प्रयोग भी हुए यथा धर्मवीर भारती (सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों का देवता), प्रभाकर माचवे (परन्तु, द्यूत), हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, चारु चन्द्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा) आदि। एक सर्वथा नवीन शैली का प्रचार हुआ—आंचलिक शैली। इसके प्रमुख नाम हैं—फणीश्वर नाथ रेणु (मैला आँचल, परती परिकथा), नागार्जुन (बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ), शिवप्रसाद मिश्र (बहती गंगा, गली आगे मुड़ती है), उदयशकर भट्ट (सागर-लहरें और मनुष्य), राही मासूम रजा (आधा गाँव), डॉ० रामदास मिश्र (बीच का समय) जगदीशचन्द्र पाण्डेय (गंगास के तट पर), राजेन्द्र अवस्थी (आने कितनी आँखें, शिवानी (चौदह फेरे, मायापुरी) तथा शिवसागर मिश्र (मिट्टी की नींव)।

आज भी यही क्रम गतिशील है। उपर्युक्त उपन्यासकारों के साथ-साथ, गत दो दशकों में ही, न जाने कितने नाम उभर कर लोकप्रिय हुए हैं। कुछ प्रमुख नाम हैं—रामकुमार भ्रमर, रमेश बक्षी, गिरिराज किशोर, शानी, मेहरुन्निसा परवेज,

मृदुला गर्ग, से० स० पात्री, सत्यप्रकाश, मनहर चौहान, गिरीश अस्थाना, सुरेश अवस्थी, नरेन्द्र कोहली, सुरेश सिन्हा तथा डा० सुरेश निर्मल। अनेक कवि-आलोचक भी इस क्षेत्र में आये हैं, यथा-नरेश मेहता राजकमल, चौधरी, कैलाश वात्स्यायन, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्ययन से एकदम स्पष्ट है कि "...अब तक के पचास वर्षों में हिन्दी उपन्यास ने जो कुछ प्राप्त किया है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। यूरोपीय भाषाओं में उपन्यास का सैंकड़ों वर्षों में जो विकास हुआ, वही हिन्दी में मात्र पचास वर्षों में हुआ। इतने अल्प काल में किसी भी भाषा (के उपन्यास साहित्य) में इतनी वैविध्यपूर्ण प्रवृत्तियों का उद्‌गम और विकास नहीं हुआ होगा।"[1] दिन-प्रतिदिन की बदलती-पनपती नयी-नयी प्रवृत्तियां, नये-नये शिल्प-प्रयोग, नये-नये उपन्यास-रूप और नये-नये विपुल गुण-परिमाण में आने वाले उपन्यास और उपन्यासकार यही सिद्ध करते हैं कि हिन्दी-उपन्यास का विकास-क्रम और भी तेजी से बढ़ेगा, वह विविधमुखी, गहन और मानव-जीवन के नाना पक्षों की नये-नये कोणों-रूपों से व्याख्या करेगा और विश्व-उपन्यास-साहित्य की परम्परा में अपना गौरव अक्षुण्ण बनाये रखेगा।

विवेच्य प्रश्न

१. हिन्दी-उपन्यास के विकास-क्रम का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

२. प्रमुख प्रवृत्तियों और रूपों का परिचय देते हुए हिन्दी-उपन्यास के विकास को स्पष्ट कीजिये।

३. हिन्दी-उपन्यास के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

४. हिन्दी-उपन्यास का विकास किन सोपानों में हुआ है और उसकी भावी स्थिति के विषय में अपने मत को स्पष्ट कीजिये।

५. कालानुसार हिन्दी-उपन्यास का उद्‌भव बताते हुए उसकी विकास-यात्रा का सप्रमाण परिचय दीजिये तथा भावी संभावनाओं को संकेतिक कीजिये।

---

१. डा० एस० एन० गणेशन हिन्दी उपन्यास का अध्ययन।

३ प्रेमचन्द : जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व

जीवन-वृत्त :

भूमिका—"घुटनों से जरा ही नीचे तक पहुँचने वाली मिल की धोती, उसके ऊपर गाढ़े का कुर्ता और पैर में बन्ददार जूता, यानि कुल मिलाकर आप उसे देहकान ही कहते-गवँइया मुच्च जो अभी गाँव से चला आ रहा है, जिसे कपड़ा पहनने की तमीज नहीं, जिसे यह भी नहीं मालूम कि धोती-कुर्ते पर चप्पल पहनी जाती है या पम्प (शू)।"[1]—यह है एक सच्चा चित्र, उस व्यक्ति (पिता) का जिसे आज सब प्रेमचन्द के नाम से जानते हैं, चित्रकार हैं—प्रेमचन्द के छोटे पुत्र श्री अमृतराय। वस्तुतः प्रेमचन्द हिन्दी-साहित्यकारों की उस बिरादरी से है जिसे प्रायः 'अलमस्त और फक्कड़' किन्तु साथ ही साथ 'जन-मन के कुशल-समर्थ चितेरे' भी कहा माना जाता है।

जन्म और पारिवारिक परिचय—उत्तर प्रदेशान्तर्गत तीर्थों का तीर्थ और अपने आप में एकदम बाँका नगर है—बनारस जिससे लगभग ४ कोस पर ही एक छोटा-उपेक्षित सा गाँव-लमही जहाँ एक निम्न मध्यवर्गीय कायस्थ-परिवार रहता था। इसी परिवार के प्रमुख मुंशी अजायब लाल श्रीवास्तव के यहाँ, उनकी पत्नी आनन्दी देवी के गर्भ से, शनिवार दिनांक ३१ जुलाई सन् १८८० को पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। नवजात शिशु को पिता ने नाम दिया—धनपतराय जबकि शिशु के चाचा ने प्यार भरा नामकरण किया—नवाबराय (और आगे चलकर शिशु के परमप्रिय मित्र श्री दयानारायण निगम ने नाम सुझाया—प्रेमचन्द)। तीन बहिनों के बाद पैदा होने के कारण घर में तेतर भी कहलाये।

बालक के पिता यूं थोड़ी-बहुत काश्तकारी यानि खेती जमींदारी भी रखते थे किन्तु उनका मुख्य कार्य था—स्थानीय डाकघर में मुंशी-गिरी (क्लर्की) करना जिसकी चरम सीमा गाँव के छोटे से डाकघर में पोस्टमास्टर के पद तक रही। तबादले की इस नौकरी ने अजायब लाल को प्रायः घर से दूर ही रखा।

बाल्यकाल—पाँच वर्ष की अल्पायु से ही प्रेमचन्द निर्धनता के भरपूर नजारे देखने-भोगने लगे थे। सात वर्ष की आयु में माता श्री चल बसी तो विमाता के विरोध भरे कठोर अनुशासन में जा फंसे और पन्द्रह वर्ष की आयु तक तो, पिता की मृत्योपरान्त, एकदम परिवार का मुखिया ही बन जाना पड़ा।

---

१. मेरा बाप—लेख : उपन्यास-सम्राट, प्रेमचन्द।

निर्धनता का आलम, स्वयं प्रेमचन्द के ही शब्दों में, यह था—"पांव में जूते न थे, देह पर कपड़े न थे। महँगी अलग, दस सेर का जौ था।"[1] तथा "बारह आने वाला अवरा के पुत्र का चमरौधा जूता और चार आने गज का कपड़ा—ये ही उनके जीवन की समस्त आवश्यकतायें थीं।"[2] अपनी कमाई में भी, "बरसों उन्होंने सस्ते के ख्याल से किरमिच का जूता पहना ताकि रंग-रोगन (पालिश) की झंझट न रहे, रोज-रोज उस पर सफेदी पोतने की मुसीबत से नजात मिले, इसलिये वह किरमिच का जूता ब्राउन रंग का होता था, जिसे आजकल तो शायद रिक्शे वाला भी नहीं पहनता, कम से कम शौक से तो नहीं पहनता और मुझे उनके दोनों पैरों की कन्नी उंगली की अच्छी तरह याद है जो जूते को चीर कर बाहर निकली रहती थी। सादगी इससे आगे नहीं जा सकती।"[3]

शिक्षा-दीक्षा—तत्कालीन परम्परा-रीति के अनुसार, बालक धनपत की शिक्षा का श्रीगणेश, लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में, स्थानीय मौलवी साहब के मकतब से, उर्दू-फारसी के अध्ययन से हुआ। स्थिति यह कि पढ़ाई कम, मार ज्यादा। उस पर भी "फीस के मात्र बारह आने मौलवी साहब को देने से पूर्व ही कम हो जाते। विमाता के कोप से त्रस्त वे इस सम्बन्ध में पिता से भी कुछ नहीं कह पाते।"[4] परिणाम? 'बालक धनपत घर-आँगन से भाग कर खुले मैदान में, अमराई में, खेतों की तरफ निकल जाता था। साथियों के साथ गुल्ली-डंडा खेलता था, पेड़ों पर चढ़ता था, आम के टिकोरे चुनता था, मटर की फलियाँ तोड़ता था,……हवाई किले बनाता था।"[5] "मौलवी साहब के यहाँ कोई हाजिरी का रजिस्टर तो था नहीं और न गैरहाजिरी का जुर्माना ही देना पड़ता था। फिर डर किस बात का? कभी-कभी हम हफ्तों गैरहाजिर रहने पर मौलवी साहब से ऐसा बहाना कर देते कि उनकी चढ़ी त्योरियां उतर जातीं।"[6] जौनपुर में तो, बारह वर्षीय धनपत का समय कटता था—चोरी छिपे हुक्का पीने या फिर 'तिलिस्मा-इ-होशरुबा' जैसी वृहत्-काय पुस्तकों को पढ़ने में।

दूसरी ओर, ट्यूशनों के सहारे, विद्यालयी पढ़ाई की गाड़ी भी जैसे-तैसे रेंगती रही। सन् १८९५ में हाई स्कूल में बनारस आकर दाखिला लिया। व्यय के लिये पिता से मिलते थे—पाँच रुपये मासिक जिसमें से दो रुपये फीस के और एक रुपया

---

१. प्रेमचन्द : कफन : पृ० ५७
२. प्रेमचन्द–घर में : शिवरानी देवी : पृ० २–३
३. अमृतराय : मेरा बाप संस्मरण : पृ० २४–२५
४. शिवरानी देवी : प्रेमचन्द-घर में : पृ० ५
५. नागार्जुन-कलम के सिपाही : उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द
६. नागार्जुन कलम के सिपाही : उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द

दूध का देना पड़ता। अतएव, ट्यूशनों का सहारा लिया। वह भी, स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "सवेरे आठ बजे लमही से चल देता। इम्तिहान सिर पर था और मैं बाँस के फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुँचना होता था। पढ़ाकर छः बजे छुट्टी पाता। वहाँ से······तेज चलो, फिर भी आठ बजे से पहले घर न पहुँच सकता और प्रातःकाल आठ बजे फिर घर से चलना पड़ता था।···रात को भोजन करके कुप्पी के सामने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बाँधे हुए था।"[2] इसी हिम्मत के सहारे, बनारस के क्वीन्स कालिज से मैट्रिक की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की।

गणित, धनपतराय के लिये, हिमालय की चोटी था। परिणाम? इन्टर में दो बार अनुत्तीर्ण होना पड़ा। कालान्तर में उन्होंने इण्टर किया और बी० ए० भी। एम० ए० उत्तीर्ण करने की इच्छा तो पूरी न कर पाये किन्तु सन् १९०४ में प्रथम श्रेणी में जे० टी० सी० की परीक्षा अवश्य उत्तीर्ण कर ली।

नौकरी—यूँ ट्यूशन-कार्य का श्रीगणेश तो प्रेमचन्द ने किशोरावस्था वाली छात्र-स्थिति में ही कर दिया था जो अपने पैरों पर खड़े होने का शुभारम्भ था। फिर भी, सन् १८९९ में, मात्र १९ वर्ष की अवस्था में, वे प्राइमरी स्कूल में सहायक अध्यापक भी हो गये थे। यह नौकरी भी विवशता की स्थिति में छप्पर फाड़ कर ही प्राप्त हुई थी। अन्तर्बाह्य के संघर्ष, खाली जेब और उधार मिलने की आशा के निराशा में बदल जाने की स्थिति में अपनी दो रुपये मूल्य वाली पुस्तक 'चक्रवर्ती गणित कुंजी' को एक रुपये में ही बेचने के लिये एक दुकान पर पहुँचे। प्रेमचन्द को स्थानीय प्राइमरी पाठशाला के मुख्याध्यापक महोदय ने देख लिया तो तरस खाकर अठारह रुपये माहवार की यह नौकरी प्रदान कर दी थी। ट्रेनिंग के पश्चात् यह मॉडल स्कूल के हेडमास्टर बने और कालान्तर में बी० ए० करने पर सब डिप्टी इन्सपेक्टर पर रहे। सरकारी नौकरी की इस अवधि में वे कानपुर, महोबा, गोरखपुर, बस्ती आदि कई स्थानों पर रहे किन्तु नौकरी वस्तुतः प्रेमचन्द को रास नहीं आई। फलतः १९२१ में, सत्रह वर्ष तक निरन्तर कार्य करते रहने पर भी, उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दिया। यूं उन्होंने समय-समय पर चरखे की दुकान की करघे का काम किया, पत्रिकाओं का सम्पादन किया, प्रिंटिंग प्रेस चलाया, अपना स्वतन्त्र प्रकाशन कार्य किया और बम्बई की फिल्मी दुनिया में मुन्शीगिरी (लेखन) भी की।

विवाह—असफल और सफल—प्रेमचन्द का प्रथम विवाह १५ वर्ष की अवस्था में ही हो गया था—बस्ती जिले की मेंहदावल तहसीलान्तर्गत रामपुर गाँव की स्त्री से जो अशिक्षित, कुरूपा और कर्कशा ही नहीं, उम्र में भी इनसे कई वर्ष बड़ी थी। यह सम्बन्ध, इनकी विमाता और सौतेले मामा ने कराया था जो स्वयं

१. प्रेमचन्द : जीवन-वृत्त

प्रेमचन्द के ही शब्दों में," अष्टधातु की बेड़ियाँ ही सिद्ध हुआ। नववधू इनसे भी लड़ा करती और इनकी विमाता से भी। परिणाम ? शीघ्र ही सम्मुख आ गया—सम्बन्ध त्याग के रूप में। उनकी पत्नी घर त्याग कर अपने मायके चली गयी और फिर कभी नहीं लौटी। सन् १६०४ में उसका देहान्त ही हो गया।

सन् १६०५ में प्रेमचन्द ने पुनर्विवाह किया—एक बाल विधवा के साथ जिसके लिये उन्हें घर और बाहर दोनों का विरोध सहन करना पड़ा। यह बाल विधवा थी—शिवरानी देवी, स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में "निर्भीक, साहसी, दृढ़, विश्वसनीय, भूल स्वीकार करने वाली और अत्यधिक प्रोत्साहन देने वाली, स्त्री" जिसने असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जेल यात्रा भी की। इसी से इनकी वंश-परम्परा चली–पुन्नू (श्रीपतराय) बन्नू (अमृतराय) जैसे साहित्यिक पुत्रों और पुत्री कमला के रूप में।

साहित्य-प्रवेश और सृजन—कहा जाता है कि प्रेमचन्द ने अपनी पहली रचना नाटक के रूप में अपने सौतेले मामा के एक प्रणय-प्रसंग पर लिखी थी। यह रचना आज अनुपलब्ध है जो मात्र तेरह वर्ष की अल्पायु में रची गयी थी तथा जिसका उद्देश्य मात्र मामूजान को छकाना और वस्तुतः व्यंगात्मक रूप में नीचा दिखाना था।"[1]

इस समय तक प्रेमचन्द हिन्दी नहीं जानते थे। वस्तुतः उनका रचनारम्भ उर्दू से हुआ था—नवाबराय और धनपतराय के नाम से। सन् १६०१ में 'कृष्णा' तथा १६०२ में उनका प्रथम उर्दू-उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसका नाम था—"हम खुरमा, हम सवाब'। उनकी प्रथम हिन्दी कहानी थी—'संसार का सबसे अनमोल रत्न' जो सन् १६०७ में 'जमाना' में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष में प्रकाशित 'सोजे वतन' के जब्त होने पर, मित्र-सम्पादक दयानारायण निगम की सलाह पर प्रेम-चन्द नाम अपनाया गया जो आजीवन साथ लगा रहा। प्रेमचन्द के नाम से प्रकाशित प्रथम हिन्दी कहानी थी—ममता जो सन् १६०६ में 'जमाना' में छपी थी। सन् १६१६ तक तो उनका प्रथम हिन्दी कहानी-संग्रह 'सप्तसरोज' तथा प्रथम उपन्यास 'सेवासदन' (जो वस्तुतः उन्हीं के एक उर्दू उपन्यास 'बाजारे हुस्न' का अनुवाद था) भी प्रकाश में आ चुके थे। तत्पश्चात् तो उन्होंने लगभग ३५० कहानियाँ, तीन नाटक, पन्द्रह कहानी-संग्रह, सात अनुवाद, साढ़े ग्यारह उपन्यास, निबन्ध तथा बालोपयोगी रचनाओं का भी सृजन किया।

सन् १६२० में, गांधी जी से प्रेरित होकर और सरकारी नौकरी का परित्याग करने के उपरान्त वे स्वतन्त्र लेखन-कार्य में रम गये थे मगर आर्थिक विपन्नता ने उन्हें पुनः कोई व्यवसाय करने को विवश कर दिया। परिणाम-स्वरूप, कुछ समय तक 'मर्यादा' और 'माधुरी' का सम्पादन किया और शीघ्र ही 'हंस' नामक मासिक

---

१. प्रेमचन्द : कफन : मेरी पहली रचना : पृ० ४७–५१

तथा 'जागरण' नामक साप्ताहिक अपनी स्वयं की पत्रिकायें भी निकालने लगे। यहाँ तक की लेखन की कमाई भी इसी में लगती रही। आर्थिक घाटा बढ़ता गया तो बम्बई की फिल्मी दुनिया में भी गये जहाँ 'सेवासदन' और 'मिल मजदूर' जैसी फिल्में लिखी ही नहीं, कुछ ने अभिनय तक भी किया। वहाँ भी मुंशीगिरी अधिक नहीं चल सकी। फलतः पुनः वापिस बनारस आ गये।

अन्तिम समय और मृत्यु—इस समय तक दुर्बल शरीर और भी दुर्बल होने लगा था। पेचिश का राजरोग तो पहले से ही लगा हुआ था। सितम्बर, १९३६ तक रोग बढ़ता ही गया, उधर न ठीक से उपचार हो सका, न परहेज। बिस्तर पर पड़े-पड़े भी मौका मिलते ही लिखा करते। अन्ततः स्थिति यह कि "......पीली कुम्हलाई हुई पिंजरा शेष आकृति, हड्डी-हड्डी बाँहें, पेशानी की वह मोटी-मोटी झुरियाँ और पैनी चमकती हुई गहरी-गहरी आँखें" लिये ८ अक्तूबर सन् १९३६ की प्रातः चिरनिद्रा में सो गया यह महान् व्यक्ति प्रेमचन्द। संयोग देखिए कि मैक्सिम गोर्की और शरत्चन्द्र का देहावसान भी इसी दिन हुआ था।

व्यक्तित्व

वाह्यतः, "प्रेमचन्द का जो व्यक्तित्व था वह न सूरज की तरह चमकता था और न चाँद की तरह दमकता हुआ। वह बनारस जिले के ठेठ किसान की तरह था......उस सीधे-सादे निष्कपट व्यक्तित्व के भीतर साहित्य की बड़ी-बड़ी बातें हैं, यह पता नहीं चल सकता था।"[1] नाम से धनपत और नवाब ने आजीवन मानों निर्धनता से ही प्रेम किया था। संभवतः इसी से वह निर्धन ग्रामीणों का "भैया जी" था। उनके वाह्य रूप को देखें तो, "उनका रंग जर्द था, चेहरा करीब-करीब बिलकुल सूखा हुआ, सिर उनकी प्रतिभा को देखते हुए छोटा लगता था, ललाट विस्तृत था, भौंहें मोटी, आँखें कमजोर थीं जिनमें कभी खुमारी, कभी शान्ति, कभी करुणा दिखाई पड़ती थी। सिर के बाल प्रायः रूखे और बड़ी-बड़ी मूंछे बेतरतीब रहती थीं। धोती घुटनों से कुछ नीचे रहती थी। पैरों में कभी चप्पल और कभी भूरे रंग के किरमिच के जूते पहनते थे जो अक्सर बिना फीतों के रहते थे।"[2] दूसरी ओर, मंद-मंद मुस्कान से लेकर छतफोड़ ठहाके, अलमस्तों के साथ होली के फाग-कबीरो के गायन, हद दर्जे का बातूनीपन, बात-बेबात पर सटीक विनोद, खाने और गाने का शौक, गजब की अध्ययन-प्रियता, विचारों से राष्ट्र और मानवता[2] प्रेमी तथा हद दरजे के स्वाभिमानी प्रेमचन्द का आन्तरिक व्यक्तित्व एकदम बेलौस और निःसंकोच था। स्वयं को मंजूर मानना हो या घर के सारे काम स्वयं करना, राष्ट्र-प्रेम की झोंक में 'राय साहब' का पद ठुकराना हो या अलवर नरेश का निमंत्रण, स्वयं फटा-पुराना पहिन कर अधीनस्थ कर्मचारियों को वस्त्र बनवा देना हो या

---

१. राधाकृष्ण : प्रेमचन्द का व्यक्तित्व-निबन्ध

२. देखिए : रंगभूमि (प्रेमचन्द) : जीवनी : पृ० ११

निरन्तर के अर्थ-संकट और घात सहकर भी पत्र-प्रकाशन करते रहना हो, उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष थे। विभिन्न रंग मगर अपने आप में एकदम इकरंगापन लिये हुए, साफ बेबाक और पारदर्शक जो इस सीधे-सादे बनारसी मुंशी की महानता के साक्षात् सबूत थे।" उस आदमी की सबसे बड़ी महानता थी कि वह किसी तरह से महान् नहीं था। न कपड़े लत्ते में, न तौर तरीके में, न बोलचाल में, न रहन-सहन में।"[1] हर ओर से वह एक आम आदमी था, आम समाज का, आम लोगों का और आम बातों का। फिर भी, "यह बात हजार मुंहों से भी कही जाये तो थोड़ी है कि प्रेमचन्द से बेहतर इन्सान मुश्किल से ही मिलेगा।...इस सारी चीज की जड़ में है उनकी वह सरल-निश्छल इन्सानियत जो घर और बाहर सब जगह यकसाँ सोना बिखेरती रहती थी।"[2] निष्कर्षतः, श्री नागार्जुन के शब्दों में, कह सकते हैं कि, उनका जीवन ऐसा दीप था जिसकी लौ मद्धिम नहीं, तेज प्रकाश देने को मजबूर थी पर उस दीप में कभी पूरा-पूरा तेल नहीं डाला गया, लौ हमेशा बत्ती के रेशों को भी जलाती रही।"

विवेच्य प्रश्न

१. श्री प्रेमचन्द के जीवन-वृत्त का परिचय देते हुए उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट कीजिये।

२. श्री प्रेमचन्द के जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व का प्रमाणपुष्ट विवरण दीजिये।

३ श्री प्रेमचन्द के जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं का सप्रमाण परिचय दीजिये।

४. प्रेमचन्द के जीवन-परिचय और व्यक्तित्व पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

५. "प्रेमचन्द असफल जीवन में सफल व्यक्तित्व रखने वाले व्यक्ति थे।" प्रस्तुत कथन की सार्थकता को स्पष्ट कीजिये।

---

१. अमृतराय : मेरा बाप : निबन्ध
२. कलम के सिपाही-उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द

४ प्रेमचन्द का औपन्यासिक कृतित्व

भूमिका—

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की जगतप्रसिद्ध लोकोक्ति को अपने जीवन में सत्य सिद्ध करके दिखाने वाले साहित्यकारों में से एक प्रसिद्ध नाम है—धनपतराय श्रीवास्तव जिसे उर्दू-जगत् नवाबराय के नाम से जानता है तो हिन्दी-जगत् प्रेमचन्द के नाम से। एक महत्वपूर्ण बात और। हिन्दी के बड़े-बड़े स्वनामधन्य विद्वान् तक प्रेमचन्द को प्रायः "मुंशी प्रेमचन्द" लिखते-बताते हैं जो वस्तुतः एकदम गलत है और मूलतः दो नामों को एक कर देने वाले प्रेस-कम्पोजिटरों की भ्रान्ति का परिणाम है। वस्तुतः, 'सरस्वती' पत्रिका के एक विशेषांक के दो संयुक्त सम्पादक थे—गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री के० एम० मुंशी तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार श्री प्रेमचन्द। दोनों के नाम साथ-साथ मुद्रित होने थे—'मुंशी प्रेमचन्द'। प्रेस-भूतों की भूल से बीच का हाइफन (-) मुद्रित होने से रह गया किन्तु यार लोग नाम मान बैठे—मुंशी प्रेमचन्द (जो आज भी अनेक लोगों द्वारा प्रयुक्त किया जा रहा है)।

पृष्ठभूमि—

हिन्दी-उपन्यासान्तर्गत यह वह युग (सन् १९००—१९३५ था जबकि मुख्यतः जासूसी, ऐयारी या तिलिस्मी उपन्यासों का बोलबाला था अथवा आख्यायिकापरक-उपन्यासों का। घटना-प्रमुखता, हवाई कल्पनाएँ, आरोपित-उपदेशपरक आदर्श-प्रधानता तथा प्रेमपरक रोमानियत इनकी समान्य विशेषतायें थीं तो कोरा दिल-बहलाव, मनोरंजन और नैतिकतापरक उपदेश देना आदि सामान्य उद्देश्य। सच में तो, अभी हिन्दी उपन्यास (और कहानी भी) अपरिपक्वास्था में था और उसकी कोई निर्दिष्ट परम्परा नहीं थी। आवश्यकता थी "ऐसे साहित्य की जो विचारों में स्वतन्त्र हो, चिन्तन में सन्तुलित हो, जीवन की अवरोधक शक्तियों के प्रति उग्र हो, दीन-दरिद्र जनता की हीन दशा से विक्षिप्त हो और सर्वोपरि भारत की मूक जनता को ही प्रदर्शित करके, उसकी आशाओं और अभिलाषाओं को वाणी देने वाला हो।"[1] दूसरे शब्दों में, वह कल्पना से यथार्थ की ओर, रोमांस से जीवन के मूलभूत प्रश्नों की ओर, स्थूल वर्णन-परकता से यथार्थ सूक्ष्म चित्रण की ओर. वाह्य जगत् से मनोजगत् की ओर तिलस्म-ऐयारी से प्रगति और क्रान्ति की ओर तथा स्थूल विवरण से अभि-

१. डा० एस० एन० गणेशन हिन्दी उपन्यास का अध्ययन

व्यंजना की ओर अग्रसर हो। इसी समय, मानों इन्हीं आवश्यकताओं की सम्पूर्ति करने के लिये, उदय हुआ—श्री प्रेमचन्द का। प्रमाण है—उनका कृतित्व, विशेषतः औपन्यासिक कृतित्व।

प्रेमचन्द का कृतित्व—कालक्रम से, प्रेमचन्द की प्रथम रचना थी—एक हास्य-व्यंगमय नाटक जो उन्होंने तेरह वर्ष की अल्पायु में, अपने सौतेले मामा की एक प्रणय-कथा को विषय बनाकर लिखा था और जो स्वयं मामा जी द्वारा उड़ा लिये जाने के कारक अप्रकाशित और फलस्वरूप अनुपलब्ध बन कर रह गया।"[1]

प्रकाशन की दृष्टि से देखें तो उनकी प्रारम्भिक रचनायें, उर्दू भाषा में और नवाबराय तथा धनपतराय के नाम से मिलती हैं जिनका श्रीगणेश सन् १९०० से हुआ। कृष्णा, हम खुरमा हम सवाब, इसरारे मुहब्बत, प्रतापचन्द, श्यामा तथा प्रेमा आदि उपन्यास तथा 'संसार का अनमोल रत्न' (रचनाकाल सन्, १९०७) जैसी कहानी तथा 'सोजे वतन' (प्रकाशन वर्ष–सन् १९०८), जैसे कहानी-संग्रह हैं। कहानियाँ प्रायः 'जमाना' और 'अदीब' में तथा उपन्यास 'आवाजे खल्क' में भी प्रकाशित हुए।

आज, इनमें से अधिकांश रचनायें अनुपलब्ध हैं।

प्रेमचन्द के नाम से उनकी प्रथम कहानी है—'ममता'; प्रथम कहानी-संग्रह है—'सप्तसरोज' तथा प्रथम उपन्यास है—'सेवासदन'। यूँ प्रेमचन्द जी के नाटक, निबन्ध, जीवन-चरित्र, बाल-कहानियाँ तथा अनुवादादि की विधाओं में, भी लेखनी चलाई थी यद्यपि ख्याति उनको कथा-साहित्य में ही अधिक मिली। समग्रतः, विधानुसार, उनकी प्रमुख रचनायें निम्नांकित हैं—

(१) **नाटक**—(१) संग्राम (२) कर्बला (३) प्रेम की वेदी।

(२) **निबन्ध**—कुछ विचार (जो बाद में 'साहित्य का उद्देश्य' नाम से भी प्रकाशित हुये)। श्री राजेश्वर गुरु 'कलम, तलवार और त्याग' को भी इसी वर्ग से रखते हैं।"[2]

(३) **जीवन-चरित्र**—महात्मा शेख सादी, दुर्गादास. कलम, तलवार और त्याग, जीवनसार।

(४ **बाल कहानियाँ**—मनमोदक, कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, राम-चर्चा।

(५) **अनुवाद**—सुखदास, अहंकार, टालस्टाय की कहानियाँ, आजाद कथा, हड़ताल, चाँदी की डिबिया, न्याय।

(६) **स्फुट**—स्वराज्य के फायदे।

---

१. प्रेमचन्द : कफन : मेरी पहली रचना : पृ० ४७–५१

२. प्रेमचन्द—एक अध्ययन : पृ० २८०

(७) कहानी-संग्रह—सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, बड़े घर की बेटी, लाल फीता, नमक का दरोगा, प्रेमपचीसी, प्रेमप्रसून, प्रेम द्वादशी, प्रेम प्रतिमा, प्रेम प्रमोद, प्रेम तीर्थ, पाँच फूल, प्रेम चतुर्थी, प्रेम प्रतिज्ञा, सप्तसुमन, प्रेमपंचमी, प्रेरणा, समरयात्रा, पंचप्रसून, नवजीवन, बैंक का दिवाला, शान्ति, अग्नि समाधि, कफन और शेष रचनायें, नारी जीवन की कहानियाँ, गल्परत्न, प्रेमपीयूष, प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, गल्प समुच्चय तथा समस्त कहानियों का संग्रह 'मानसरोवर ८ भाग।'

उपन्यास—प्रेमा या प्रतिज्ञा, वरदान, सेवा सदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मंगलसूत्र (अधूरा)। (आलोचकगण 'रूठी रानी, को भी इनका प्रथम उपन्यास मानते हैं।

उपर्युक्त उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित हैं—

प्रेमचन्द का औपन्यासिक कृतित्व

प्रेमा अथवा प्रतिज्ञा—सन् १९०५ में सर्वप्रथम प्रकाशित, तथा आकार में लगभग 'जेबी' वाला प्रस्तुत उपन्यास वस्तुतः लेखक के पूर्व प्रकाशित उर्दू-उपन्यास "हम खुरमा हम सवाब" का, स्वयं लेखक द्वारा किया गया, भाषानुवाद है। मूल-कथ्य और उद्देश्य है—विधवा-विवाह का समर्थनात्मक प्रचार जिसको नायिका प्रेमा और नायक अमृतराय द्वारा की गई प्रतिज्ञा से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ, नारी-जीवन से सम्बन्धित अनमोल विवाह, दहेज-अभिशाप तथा वैधव्य-जीवनादि कई अन्य प्रश्न भी यथास्थान उठाये गये हैं। निःसंदेह, रचना कलात्मक दृष्टि से शिथिल और समकालीन आर्यसमाजी विचारों से प्रभावित हैं। मुख्य कथायें दो हैं—अमृतराय-प्रेमा-दीनानाथ तथा बद्रीप्रसाद-कमलाप्रसाद-विधवा पूर्णिमा की। जहाँ तक प्रश्न है इसकी विशेषता का तो, श्री मन्मथनाथगुप्त के शब्दों में कह सकते हैं, "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'प्रतिज्ञा'···प्रेमचन्द की बहुत सी पुस्तकों से श्रेष्ठतर है। इसमें मनुष्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। विधवा की समस्या केवल सतीत्व की आध्यात्मिक समस्या नहीं बल्कि रोटी-दाल की समस्या है, यह बात 'प्रतिज्ञा' में बहुत अच्छी तरह सामने आ जाती है।"

वरदान—प्रो० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की सूचना के अनुसार, लेखक ने उर्दू में एक परिहास-प्रधान उपन्यास लिखा था जो कहीं छपा नहीं था, आज तो उसकी पांडुलिपि भी अनुपलब्ध है। उसी की मूलकथा को लेकर हिन्दी में 'वरदान' लिखा गया जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९०२–०५ के मध्य हुआ।"[1] जहाँ तक प्रश्न है इसके कथ्य का तो, 'कर्त्तव्य की कठोर साधना में निरत रहने वाले पुरुषत्व की प्रेमार्द्रता अभाव से भरे हुए नारी-हृदय की उद्दीप्त वेदना के साथ मिलकर क्या-क्या करुणा क्रीड़ायें करती है, इसी का सजीव चित्रण इस पुस्तक का जीवन है। इनके अतिरिक्त पारिवारिक और सामाजिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाली कितनी

१. प्रेमचन्द की उपन्यास कला : पृ० १२

ही ऐसी बातें इसमें आ गई हैं जो किसी भी कृति की शोभा कही जा सकती है।"[1] वस्तुतः इस लघुकाय उपन्यास में, "प्रेमचन्द ने प्रेम और पवित्रता, संयम, त्याग, स्वदेश-सेवा और बलिदान की कथा प्रस्तुत की है"[2]— तीन परिवारों के माध्यम से जो नगरीय और मध्यमवर्गीय हैं—मुंशी शालिग्राम, मुंशी सजीवनलाल तथा डिप्टी श्यामचरण के परिवार। आदर्श के अतिरेक में भटकन भरा अयथार्थ ही इसमें अधिक है। उर्दू में इस उपन्यास का नाम 'जलवा-ए-इसार' बताया गया है।[3]

सेवा-सदन—लेखक के ही उर्दू-उपन्यास 'बाजार-ए-हुस्न' का हिन्दी रूप हैं—'सेवासदन' जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९१६ में हुआ। मूल समस्या है—वेश्या जीवन की करुणापरक स्थिति। नारी की दयनीय पारिवारिक-सामाजिक स्थिति, धर्मान्तर्गत प्रचलित ढोंग-पाखंड, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, रिश्वतखोरी, हिन्दू समाज का खोखलापन, साम्प्रदायिकता, भारतव्यापी दारिद्र्य, भोगवाद आदि नाना ज्वलंत प्रश्नों से परिपूर्ण 'सेवासदन' वस्तुतः समाज सुधारवादी उपन्यास है। स्वयं लेखक ने इन समस्याओं का समाधान बताया है—सेवा-सदन की स्थापना करना जो निःसंदेह युग-प्रवृत्ति का द्योतक है।[4] मुख्य कथा है—दरोगा कृष्णचन्द्र और वेश्या सुमन की।

प्रेमाश्रम—जमींदारी प्रथा के विघटन पर आधारित प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन वर्ष है—सन् १९२१ तथा मूल स्वर है—वर्ग-संघर्ष जो शोषक (जमींदार) और शोषित (कृषक) के मध्य व्याप्त है। उपचार है—साम्य सिद्धान्त का प्रयोग किया जाना। साथ ही साथ, "भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का प्रथम झाँकी और भावनागत रामराज्य की स्थापना का स्वप्न भी 'प्रेमाश्रम' की अपनी विशेषता है।"[5] 'यूँ इसको पहला राजनैतिक उपन्यास होने का श्रेय भी प्राप्त है और नये युग के प्रवर्त्तक होने का भी। निःसंदेह यहाँ पर भी कथायें दो हैं—एक ज्ञानशंकर-प्रेमशंकर की तथा दूसरी इनकी अमलदारी में आने वाले लखनपुर के ग्राम्य-समाज की। एक में आदर्श की प्रमुखता है तो दूसरी में कड़वे यथार्थ की। कथा-गठन पर लेखक ने अधिक ध्यान नहीं दिया है यद्यपि इस पर भी कुछ आलोचक इसको 'गोदान से भी श्रेष्ठ उपन्यास मानते हैं।'

निर्मला—सन् १९२३ में प्रकाशित 'निर्मला' इसी नाम की एक युवती की करुणा भरी गाथा है जिसमें दहेज और वैधव्य जीवन का बड़ा सच्चा और मर्म-

---

१. प्रो० द्विज : प्रेमचन्द की उपन्यास कला : पृ० १२—१३
२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य कोश : भाग—२ : पृ० ५२४
३. वही
४. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृ० १९
५. डॉ० वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य कोश भाग—२ : पृ० ३३८

स्पर्शी अंकन किया गया है। "सच तो यह है कि "मध्यवित्त तथा उच्चवर्ग की विवाहोपजीवी (भारतीय) नारी की समस्या इस उपन्यास में जितनी स्पष्ट हुई है प्रेमचन्द के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुई है।"[1] नायिका-प्रधान इस उपन्यास में कथा भी केवल एक है और उस पर भी 'कहानी के गठन की दृष्टि से यह प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।"[2] सरल कथा-विकास, आवश्यक घटनायें और समर्थ चरित्र-चित्रण आदि इसकी अन्य महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं।

रंगभूमि—प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में सबसे बड़े आकार वाले 'रंग-भूमि' का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १६२४–२५ में हुआ। इसका उद्देश्य है—नौकरशाही, पूँजीवाद बनाम जनवाद का सघर्ष दिखाने के साथ-साथ जीवन के क्रीडा क्षेत्र-रंग-भूमि-के रूपक से हर व्यक्ति के जीवन-खेल का परिचय देना और इसके माध्यम से बताना कि परास्त होने पर भी घबराना नहीं चाहिये। गाँधीवाद और उसके सबल प्रतिपादन अंधे सूरदास की कथा इसी की प्रमाण है। यहाँ की कथायें दो हैं—ग्रामीण और शहरी। जिसके क्षेत्र हैं—पाण्डेयपुर ग्राम तथा बनारस नगर। समकालीन राजनीतिक संघर्ष और उसमें सत्याग्रह की विजय दिखाना लेखक का इष्ट है तो अंधा सूरदास उसके द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ पात्र। अनेक आलोचकों और भावुक गाँधीवादियों ने ही नहीं, स्वयं प्रेमचन्द ने भी अपने एक पत्र में इसको अपना सर्वोत्तम उपन्यास स्वीकार किया है।[3] श्री ऋषभचरण जैन की धारणा है कि, "....रंगभूमि मेरी राय में, उन्हीं (प्रेमचन्द) का नहीं, हिन्दुस्तान का सबसे अच्छा उपन्यास है। रंगभूमि में कहानी है, फिलासफी है, मनोविज्ञान है और ढूँढने पर नीति, धर्म और सोशलिज्म का बहुत सा मसाला मिल जायेगा। रंगभूमि हमारी जिन्दगी का खाका है।'[4] दूसरी ओर, श्री मन्मथनाथ गुप्त का मत है कि, "रंगभूमि में वे (प्रेमचन्द) अभी दुविधा में हैं। अभी उनकी दृष्टिगतता तथा दृश्यगतता का न तो कलात्मक द्वन्द्व मिटा है, न सिद्धांतात्मक।......रंगभूमि बहुत कुछ एक रोमांस हो गया है। इसकी दृश्यगतता द्रष्टगतता में रंगी हुई है। इसमें नाटकीयता का प्रयास बहुत है।"[5] निःसंदेह दोनों ही मत इकतरफा हैं।

कायाकल्प— सन् १६२८ में प्रकाशित 'कायाकल्प' एक ओर यदि प्रयोगशील उपन्यास है तो दूसरी ओर कलात्मक रूप से शिथिल भी है। जन्म जन्मान्तर वाली रानी देवप्रिया की कथा इसी का प्रमाण है जिसमें अतिनाटकीयता और अतिप्राकृत तत्वों की प्रमुखता है। इसके द्वारा लेखक ने यही दिखाने का प्रयास किया है कि

१-२. मन्मथनाथ गुप्त : प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार : पृ० ३०२ तथा २६८

३. वही : पृ० २४५

४-५. देखिए : वही : पृ० २४४-५५ तथा २६०

प्रेम, सच्चा प्रेम चिरंतन तथा पवित्र भी होता है। साथ ही चक्रधर कथा के माध्यम से लेखक ग्राम्य समाज की कथा भी कहता है जो वही चिर परिचित अर्थात् वर्ग-संघर्ष वाली है। इस प्रकार कथायें दो हैं जिनको लेखक न तो कुशलतापूर्वक कह सका है और न स्वाभाविक-विश्वसनीय बना सका है। एक अतिप्राकृत बन गयी है तो दूसरी कोरे आदर्श की समुच्चय। कथा-विन्यास भी एकदम असंगत और चक्करदार है। फलतः "निर्माण की दृष्टि से 'कायाकल्प' सबसे अधिक निर्बल उपन्यास बन गया है। कहा तो यहाँ तक गया है कि, "समग्र रूप से लेने पर यह उपन्यास न केवल ऊलजलूल, निरर्थक, शिथिल तथा लचर है, बल्कि इसका रुख भी प्रगतिविरोधी है।"[1]

गबन—कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से प्रेमचन्द की उत्तम रचना है—गबन जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९३० में हुआ। वस्तुतः इसका कथा-स्रोत और विधान लेखक के ही एक उर्दू-उपन्यास 'कृष्णा' की देन है।[2] प्रस्तुत उपन्यास में भी मुख्यतः दो कथायें हैं—प्रयाग और कलकत्ते से सम्बद्ध जिनको जालपा के माध्यम से जोड़ा गया है। मध्यवर्गीय हिन्दू समाज में प्रायः प्रचलित नारी का आभूषण-प्रेम, पुरुष और स्त्री दोनों ही वर्गों का आडम्बर-पाखंड भरा जीवन और दिनचर्या, त्रिशंकु वाली स्थिति तथा रिश्वत, दिखावा, थोथा दाम्पत्य-प्रेम, असंगत पातिव्रत्यादि से लेकर वेश्या-जीवन तक की नाना समस्याओं का एकदम यथार्थ भरा अंकन रमानाथ-जालपा, देवीदीन, इन्द्रभूषणादि की कथाओं के माध्यम से किया गया है। एकदम सच तो यह है, "...गबन में लेखक इस वर्ग (मध्य वर्ग) के चरित्र का जितना सुन्दर, सजीव तथा मनोज्ञ उद्घाटन करने में समर्थ हुए हैं, उतना वे और किसी उपन्यास में नहीं कर पाये। यह पुस्तक मानो एक दर्पण है जिसमें मध्यवित्त वर्ग अपनी सजीव प्रतिच्छवि देख सकता है।"[3] तथा "प्रेमचन्द के प्राक् गोदान-युग के उपन्यासों में दो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथार्थवादी हैं—एक 'निर्मला' तथा दूसरा 'गबन'।"[4]

कर्मभूमि—सन् १९३२ में प्रकाशित 'कर्मभूमि' लेखक का एक वृहत्काय उपन्यास है जिसमें मुख्यतः युगीन चेतना को मुखर किया गया है। साधन है—शहरी और ग्रामीण वातावरण जिसमें शहर का प्रतिनिधित्व लाला समरकान्त और उसके परिवार की कथा करती है तो ग्राम्य वातावरण का चमार-हरिजनों की कथा।" इसका पहला आधा हिस्सा तो बहुत ही सुन्दर है किन्तु दूसरे आधे हिस्से

---

१. देखिए : वही पृ० २५४-५५ तथा २६०

२. प्रो० द्विज : प्रेमचन्द की उपन्यास कला : पृ० १६

३-४. मन्मथनाथ गुप्त : व्यक्ति और साहित्यकार : पृ० २७६ तथा पृ० २८९

में कथा की रुचि और उत्सुकता बढ़ाने वाली क्षमता कुछ दब सी गयी है और ऐसा मालूम पड़ता है जैसे बहुत सी बातें 'रंगभूमि' से ही उधार ले ली गई हैं।"[1]

गोदान—'युग का दूत और नये युग का सूत्रधार', 'महाजमी सभ्यता के इतिहास का दस्तावेज', 'कृषक जीवन का महाकाव्य', 'भारतीय ग्राम्य परिवेश की समस्याओं का महाकाव्य', तथा 'विश्व के छह श्रेष्ठतम उपन्यासों में से एक' जैसे विविध प्रकार के प्रशंसात्मक विशेषणों से युक्त 'गोदान' लेखक की अंतिम पूर्ण रचना है जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९३६ में हुआ। कृषक और जमींदार (क्रमशः होरी तथा रायबहादुर) की ग्राम्य तथा 'मेहता-मालती की शहरी कथाओं के मिश्रण से यहाँ भी लेखक ने वर्ग-संघर्ष को बड़े सच्चे और विशाल कैनवास पर अंकित किया है। जहाँ तक प्रश्न है इसके नामकरण का तो प्रो० जनार्दन प्रसाद झा' 'द्विज' ने एक दृष्टव्य सूचना देते हुये कहा, "ग्रामीण उच्चारण की स्वाभाविकता के विचार, से इसका नाम पहले 'गौदान' रखा गया था। इन पंक्तियों के लेखक ने उक्त नाम को पसंद नहीं किया। अतः जैसा कि प्रेमचन्द जी स्नेहवश किया करते थे, उसी क्षण 'गौ' की जगह 'गो' लिख दिया गया।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक की सहानुभूति मुख्य ग्राम्य समाज और उसके कर्णधार कृषक वर्ग के प्रति अधिक रही है जिसका पूरा-२ प्रतिनिधित्व होरी और उसका परिवार करता है। दूसरी ओर मालती जैसी आधुनिका का चरित्र-विकास प्रेमचन्दीय आदर्श की स्थापना करता है।

मंगल-सूत्र—'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द जी का अधूरा उपन्यास है जिसको, मृत्यु के कारण, पूरा नहीं किया जा सका। अपने अधूरे रूप में ही, यह बनारस (के हिन्दुस्तान पब्लिशिंग हाउस) से प्रकाशित हो चुका है। इसका लेखन वर्ष था—सन् १९३६।

अपने प्रकाशित रूप में यह एक 'ऐतिहासिक आलेख (Document) बन चुका है। आत्मकथात्मक रूप में लिखित इस उपन्यास में एक साहित्यिक के जीवन की समस्या का चित्रण किया गया है। देवकुमार ऐसा ही साहित्यिक है जो जीवन में ख्याति तो पाता है किन्तु सुख नहीं। उनका छोटा पुत्र-साधुकुमार भी उन्हीं की भाँति इस पर आदर्शवादी बना रहता है यद्यपि अपने जीवन-संघर्ष में असफल और परास्त सा वह भी होता है।

वस्तुतः उपलब्ध कथांश (देवकुमार की साठवीं वर्षगाँठ पर उन्हें थैली भेंट किया जाना) से तो कथा का प्रारंभ ही होना था। अतएव इसके निष्कर्ष के विषय में साधिकार कुछ नहीं कहा जा सकता है। प्रेमचन्द के सुपुत्र श्री श्रीपतराय का, इस विषय में अनुमान है कि "इसमें वे अपने मानदंडों के अनुसार यह दिखाना चाहते

---

१. प्रो० द्विज : प्रेमचन्द की उपन्यास कला : पृष्ठ १७

२. वही : पृष्ठ १७

थे कि सफलता के लिये चालाकी अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है। वे इस उपन्यास से यह दिखाना चाहते थे कि एक ईमानदार, परिश्रमी और सीधा-सादा आदमी ऐसी सफलता प्राप्त कर सकता है कि जिसे देखकर लोग ईर्ष्या करें, और यह जगत सुरुचिपूर्ण मान्यताओं के विरुद्ध नहीं है। मेरा ऐसा विश्वास है कि वे ऐसा समझते थे कि उन्हें अपने जीवन में सफलता प्राप्त हुई है और ऐसा वे उचित कारणों से ही समझते थे, ऐसा मेरा अनुमान है।''[१] शहरी वातावरण और उच्चकोटि की उपन्यास कला इस रचना की अपनी विशेषतायें हैं।

उपसंहार (महत्व)

वस्तुतः गुण और मात्रा दोनों ही दृष्टियों से, प्रेमचन्द जी का कृतित्व विपुल और समृद्ध है यद्यपि विशेष सफलता और ख्याति उनको औपन्यासिक कृतित्व में ही मिली। उनके इस कृतित्व का महत्व, उनके समकालीन युग-वातावरण तथा पूर्ववर्ती हिन्दी उपन्यास की स्थिति को देखते हुये और भी अधिक बढ़ जाता है। सच तो यह है कि अपने इस कृतित्व से "उन्होंने साहित्य को रूढ़िबद्ध परम्परा से मुक्त किया और आर्त्त मानवता के जीवन-चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की······न केवल उपन्यास साहित्य में वरन् समस्त हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द ने नवीन और स्वस्थ साहित्य-परम्परा का प्रवर्तन किया जो समाज की आधारभूत मानवता के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है।''[२] यही कारण है कि प्रेमचन्द और उनका कृतित्व जन-जन का है युग-युग का है, प्रशंसा और आदर, प्रेय और श्रेय तथा कल्याण और मगल का है।

□

विवेच्य प्रश्न

१. प्रेमचन्द के (औपन्यासिक) कृतित्व का परिचय देते हुये उसके महत्व का निर्धारण कीजिये।

२. प्रेमचन्द के रचना-कृतित्व का संक्षिप्त परिचय देते हुये उनके औपन्यासिक कृतित्व को स्पष्ट कीजिये।

३. प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृतियों का प्रमाणपुष्ट संक्षिप्त परिचय दीजिये।

४. प्रेमचन्द के उपन्यासों का सक्षिप्त परिचय देते हुये उनकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

५. प्रेमचन्द ने कौन-कौन से उपन्यास रचे? कालक्रम से हर एक का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

६. रचना-सृजन की पूर्वपीठिका का संकेत देते हुये प्रेमचन्द के उपन्यास-सृजन को स्पष्ट कीजिये।

७. प्रेमचन्द के औपन्यासिक कृतित्व पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिये।

———

१. देखिये : श्री मन्मथनाथ गुप्त : प्रेमचन्द-व्यक्ति और साहित्यकार पृ० ३५७

२. श्री हरस्वरूप माथुर : प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प : पृ० ८

गोदान-समीक्षा

खण्ड (ब)

५ गोदान : परिचय और कथासार

गोदान : एक परिचय :

विश्व के छह सर्वोत्तम उपन्यासों में से एक तथा हिन्दी की उपन्यास-परम्परा में सर्वोत्तम माना जाने वाला, 'कृषक जीवन का महाकाव्य' तथा 'महाजनी सभ्यता के इतिहास का दस्तावेज' कहलाया जाने वाला एवम् स्वयं लेखक को 'उपन्यास-सम्राट्', 'युग-सूत्रधार' तथा 'युग-अग्रदूत' जैसे विशेषण प्रदान करा देने वाला 'गोदान' प्रेमचन्द का, कालक्रम से, हिन्दी का दसवाँ तथा उनके समग्र उपन्यास-कृतित्व की दृष्टि से सोलहवाँ उपन्यास है जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९३५-३६ में हुआ। जहाँ तक प्रश्न है-इसके नामकरण का तो प्रो० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' की सूचनानुसार, "ग्रामीण उच्चारण की स्वाभाविकता के विचार से, इसका नाम पहले 'गोदान' रखा गया था। इन पंक्तियों के लेखक (अर्थात् प्रो० द्विज) ने उक्त नाम को पसन्द नहीं किया। अतः (उसके सुझाव को स्वीकार करते हुये) जैसा कि प्रेमचन्द जी स्नेहवश किया करते थे, उसी क्षण 'गौ' की जगह 'गो' लिख दिया गया और इस प्रकार उपन्यास का नाम 'गोदान' कर दिया गया।"[१] प्रकाशित होते ही उपन्यास चर्चित-प्रशंसित ही नहीं हुआ, पाठक से लेकर आलोचक-वर्ग तक शिराधार्य भी हो गया। निःसन्देह, इसका एक महत्तम कारण था—समकालीन औपन्यासिक परिस्थितियों के परिवेश में एकदम नयी, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कथा जो एक ओर तो कृषिप्रधान भारत देश के कृषक समाज की नाना समस्याओं से भरे जीवन को निकट से देखती-प्रस्तुत करती है, वहीं दूसरी ओर सहायक नगरीय कथाओं से संयुक्त होकर समग्रतः 'तत्कालीन सम्पूर्ण भारतीय समाज के जीवन और संघर्ष" को अंकित करती है। इस प्रकार तीन सौ पृष्ठीय प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय जन-जीवन और उसके विविध पहलुओं-रूपों को बड़े विस्तृत और गहन रूप में ग्रहण किया गया हैं।

गोदान का कथासार

उपन्यास की कथा का श्रीगणेश होता है--नायक किसान होरी से जो बनारस के समीपस्थ बेलारी नामक छोटे से गाँव का निवासी है। धनिया का पति और तीन

---

१. प्रेमचन्द की उपन्यास-कला : पृ० १७

पुत्र-पुत्रियों वाला होरी गाँव के ही जमींदार रायसहाब अमरपालसिंह के यहाँ जा रहा था कि मार्ग में भोला अहीर अपनी गायों के साथ आता हुआ मिल गया। स्वस्थ गायों ने होरी की चिर आकांक्षा को जाग्रत कर दिया कि "गऊ से ही द्वार की शोभा है।' भोला की पुनर्विवाह करने की भड़की हुई लालसा को सांत्वना दे शीघ्रातिशीघ्र उसकी पूर्ति में सहायक बनने का वादा कर चतुर होरी उसकी सहानुभूति ही अर्जित नहीं कर लेता, उधारखाते में एक स्वस्थ गऊ प्राप्त कर लेने का आश्वासन भी पाता है। निःसन्देह, मित्रता के नाम पर वह भोला को एक के स्थान पर तीन-तीन ढाँचे भूसा भी देने को उद्यत हो जाता है।

होरी रायसहाब की ड्योढी पर पहुँचकर देखता है कि जेठ के दशहरे पर होने वाले 'धनुष यज्ञ' की तैयारियाँ हो रही हैं। रायसहाब होरी को भी उसमें माली का अभिनय करने का निमन्त्रण देते हैं किन्तु साथ ही साथ यह भी आज्ञा देते हैं कि उसके गाँव से कम से कम पाँच सौ का चंदा (शगुन) आना चाहिये।

होरी लौटकर घर पहुँचा। साथ में था—पुत्र गोबर (गोवर्धन) जो पिता से एकदम विपरीत, कुछ-कुछ उद्दंड और विद्रोही स्वभाव का युवक था। बातों ही बातों में बात भोला से प्राप्त हो सकने वाली गाय पर आयी तो परिवार के सभी लोग खुशी से झूम उठे। स्वयं होरी को भी मारे खुशी के नींद नहीं आयी और पत्नी धनिया के साथ गाय विषयक नाना कल्पनाओं में रमा रहा।

अगले ही दिन गोबर जाकर गाय तो ले आया मगर साथ ही साथ भोला की विधवा-जवान बेटी झुनिया को अपना दिल भी दे आया। इधर गाय दरवाजे पर आयी और उधर सारा गाँव उसके दर्शनार्थ आ जुड़ा, होरी के दरवाजे पर। नहीं आया तो स्वय होरी का भाई और उसकी पत्नी। उलटे, बाँस बेचने और कमीशन खा जाने के आरोप पर दोनों के परिवारों में युद्ध और छिड़ गया। सारे गाँव ने गाय के साथ-साथ यह तमाशा भी खूब देखा।

गोबर भोला के यहाँ एक बार क्या गया कि बहाने-बेबहाने बारम्बार वहीं जाने लगा। निःसन्देह कारण थी-झुनिया। 'दो जवान दिलों में लगी प्रेमाग्नि सुलगी तो सुलगती ही चली गयी। परिणाम ? गोबर ने एक दिन अपने साथ झुनिया को पत्नीवत् रखने का वचन भी दे दिया।

इधर, रायसहाब अमरपालसिह के यहाँ पर 'धनुष यज्ञ' का उत्सव जोर-शोर से मनाया गया जिसमें सम्मिलित होने के लिये नगर से कई गणमान्य व्यक्ति भी आये। प्रो० मेहता, मिस मालती, मि० खन्ना, खुर्शेद और मि० तंखा आदि इनमें प्रमुख थे। उत्सव के पश्चात् शिकार का आयोजन किया गया जिसमें प्रो० मेहता और मालती को निकट आने का मौका भी मिला। पं० ओंकारनाथ को शराब पिलाकर मालती अपनी स्वच्छन्दता का सिक्का जमा चुकी थी तो मानवतावादी-समाजवादी तर्क-वितर्कों और पठान के अभिनय से प्रो० मेहता भी अपने ज्ञान भरे वाक्-चातुर्य और सभा-कौशल से सबको परिचित करा चुके थे। शिकारा-

न्तर्गत किये गये नौका-विहार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मालती ही प्रोफेसर की ओर अधिक आकृष्ट है। इसी प्रकार मि० खन्ना और रायसाहब तंखा और खुर्शेद आदि के रूप में नगर के पूँजीवादी वर्ग की वस्तु-स्थिति की झलक भी साकार होती है।

इधर, गाय-प्रकरण के लगभग सात माह बाद, पुनः होरी वाली कथा और उसके नये पात्र-प्रसंग तथा तत्सम्बन्धी समस्यायें सामने आती हैं। राय साहब द्वारा भेजे गये कारकुन और उसकी इस घोषणा ने कि बाकी चुकाये बिना किसी को हल चलाने नहीं दिया जायेगा', गाँव में खलबली मचा दी। स्वयं होरी तक को इधर-उधर दौड़ना पड़ा और अन्ततः गाय को गिरवी रखकर रुपये लेने पड़े। मगर दु र्भाग्य कि उसी रात गाय मर गयी या कहिये मार दी गयी। साक्ष्यों के आधार पर दोष हीरा का ही पाया गया किन्तु वह तो पहले ही फरार हो चुका था। धनिया के चंडी रूप को देख स्वयं होरी को उस पर हाथ उठाना पड़ा, भाई को बचाने के लिये झूठी कसम खानी पड़ी तथा पारिवारिक मर्यादा की रक्षार्थ भ्रातृ-पत्नी पुनिया की यथाशक्ति सहायता भी करनी पड़ी।

होरी के कष्ट बढ़ते गये। हीरा तो लापता था ही, पुनिया पर 'कृपा' करने की एवज में पत्नी धनिया भी कटी-कटी रहने लगी या फिर जली-कटी सुनाने लगी। उस पर भी एक दिन, शाम के झुटपुटे में गोबर झुनिया को घर तक तो ले आया किन्तु भयवशात् स्वयं पलायन कर गया। विवशतः होरी-धनिया को झुनिया को स्वीकार करना पड़ा जो गर्भवती थी—स्वयं उन्हीं के पुत्र गोबर से।

भोला और उसके दो-दो लठैत पुत्र इस अपमान को भला किस प्रकार बरदाश्त कर सकते थे? पुत्री झुनिया से तो उन्होंने सम्बन्ध तोड़ा ही गोबर को जान से मारने के लिए उसकी खोज भी करते फिरे। पुत्र के इस अपराध का दण्ड भी बेचारे होरी को ही भोगना पड़ा—डाँड भर कर जिसके लिये उसे स्वयं भूखों रहकर भी फसल खर्च करनी पड़ी और अपना कच्चा मकान झिंगुरीसिंह के हाथों गिरवी रखना पड़ा। जातिच्युत होना पड़ा अलग। उसी समय उसके यहाँ झुनिया की कोख से पौत्र भी उत्पन्न हो गया। इस प्रकार होरी की निर्धनता और उत्तर-दायित्व दोनों ही बढ़ते गये।

गोबर, इस सबसे बेखबर था और गाँव के क्षुब्ध वातावरण को छोड़ लखनऊ जा चुका था जहाँ उसने मजदूरी तक की और अन्ततः मिर्जा खुर्शेद के यहाँ पन्द्रह रुपये मासिक पर नौकर हो गया।

मालती बाहर से तितली थी पर भीतर से मधुमक्खी। मध्यवर्गीय परिवार में पली मालती नारी-स्वतन्त्रता की कट्टर समर्थक थी। उधर प्रो० मेहता नारी की इस स्वतन्त्रता को 'स्वच्छन्दता' का प्रतिरूप मानते थे जिसका परिचय उन्होंने

'वीमेन्स लीग' में आयोजित किये गये अपने भाषण में सविस्तृत रूप में दे भी दिया। निःसन्देह इसने मालती के हृदय पर करारी चोट की। कारण बना—मेहता द्वारा मालती पर किया गया आक्षेप कि वह मि० खन्ना को अपनी ओर आकृष्ट करके उनके पारिवारिक जीवन को तबाह कर रही है।

इधर, बढ़ती हुई विपन्नता और संस्कारगत आदर्शवाद में फँसकर होरी को किसान से मजदूर बन जाना पड़ा। सहानुभूति और गाढ़े में सहायता करने के नाम पर ब्राह्मण देवता दातादीन उस दीन होरी का शोषण करते गये।

मि० खन्ना व्यापारी तो थे ही, दिल-फेंक रसिक भी थे। मालती की उन्मुक्तता भरी सुन्दरता ने उनको इतना रिझाया कि स्वयं के परिवार को भी आये दिन की कलह से न बचा सके। स्थिति 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की' वाली बन गई। यहाँ तक कि एक दिन तंग आकर उनकी पत्नी गोविन्दी घर छोड़ कर निकल पड़ी जिसको अचानक मिले प्रो० मेहता ने बड़ी मुश्किल से समझा-बुझा कर वापिस भेजा, वह भी इस आश्वासन के साथ कि वे मि० खन्ना को मालती के पंजों से छुड़ा देंगे।

लखनऊ शहर में रहते हुए गोबर शहरी ही नहीं, काइयां भी होने लगा था। अब तक वह नौकरी छोड़ खोंचा लगाने लगा था और अपने को खाता-पीता स्वतन्त्र व्यापारी भी मानने लगा था। मन में घर-परिवार की याद और कल्पनायें भी उठने लगी थीं। फलतः मौका पाते ही, होली के अवसर पर, वह गाँव जा पहुँचा।

इधर गाँव में, होरी विष के घूँट पी रहा था तो साथ ही साथ सारा परिवार विपन्नता से जूझने में लगा था। गोबर को सामने देखा तो, पहले का सब कुछ भूल, सबने उसे सिर आँखों पर बिठाया। स्थिति को देख और युवा रक्त का जोश खाया उबाल गोबर को शान्त कहाँ बिठा सकता था? उधर, शहरी बाबू बने गोबर को पुराने दोस्तों की चंडाल चौकड़ी भी मिल गयी और अचानक ही होली का उन्मुक्तता भरा अवसर भी। फलतः उसने दातादीन, नोखेराम और पटेश्वरी की तबियत से छिछालेदार की। साथ ही साथ होरी और धनिया से भी बिगाड़ बैठा। यहाँ तक की जोश में भर कर पत्नी झुनिया और पुत्र मुन्नू को ले पुनः शहर की ओर चल दिया।

अपने-अपने स्तर पर राय साहब, मि० खन्ना और तंखा आदि भी नाना पारिवारिक-आर्थिक समस्याओं से उलझ रहे थे। राय साहब पुत्र-पुत्री के विवाह और घटती आय, बढ़ते खर्चों से परेशान थे तो मि० खन्ना अभी भी पत्नी से विमुख और मालती की ओर उन्मुख बने थे। तंखा साहब, इलेक्शनी सहायता के नाम पर, पैसा डकारने में व्यस्त थे। निःसन्देह इन सबकी पोल-पट्टी भी खुलती जा रही थी।

उधर, गाँव में, झुनिया के जाने के पश्चात् धनिया और होरी वात्सल्य के मारे हुए थे तो इधर शहर में गोबर भी पुनः नौकरी करने लगा था—खन्ना की मिल में जहाँ पर यकायक आग लग जाने और श्रमिक आन्दोलन में चोट खाकर वह घर का रहा था, न बाहर का। हाँ, झुनिया की अथक सेवाओं ने उसको अपनी ओर आकृष्ट अवश्य कर लिया था।

होरी की पुत्री सोना विवाह योग्य होकर गरीब पिता के लिए एक बड़ी मुसीबत बनने लगी जिसका समाधान कर्जा करके उसका विवाह कर देना ही था। वही होरी ने किया भी। विवाहोपरान्त सोना भी अपने घर चली गयी। सिलिया को ओर मातादीन पुनः आकृष्ट होने लगा था तो अपनी सहेली सोना को यह शुभ समाचार देने की खुशी से भर सिलिया आधी रात को ही उसके वहाँ जा पहुँची मगर स्थिति उलट गई। अपने पति मथुरा-सिलिया की वार्ता को सुन सोना भड़क पड़ी और अन्ततः सिलिया को अपमानित होकर लौट आना पड़ा।

इधर, मेहता-मालती विरोध बढ़ रहा था तो मिल में अ.ग लग जाने के पश्चात् मि० खन्ना भी कष्ट में पड़ गोविन्दी के सामने नत-मस्तक हो रहे थे। राय साहब पुत्र के उन्मुक्त विवाह और पुत्री-दामाद के सम्बन्ध-विच्छेद और बढ़ती दुश्मनी को देख-देखकर व्यथित हो रहे थे। मिर्जा खुर्शेद वेश्या-उद्धार में और तंखा पत्रकारिता की समस्याओं में व्यस्त थे। मालती की बढ़ती हुई आदर्शवादिता और चारित्रिक परिवर्तनों ने स्वयं मेहता तक को उसका 'उपासक' बना दिया किन्तु पति नहीं। यूँ, दोनों समाज-सेवा करते, गाँवों में जा जाकर कार्य करते। मालती की जन-सेवा बढ़ती गई और साथ ही गोबर-पुत्र के प्रति ममत्व भी। इधर गाँव में होरी को अपनी छोटी बेटी रूपा का विवाह भी, पैसे के अभाव में, एक वृद्ध से करना पड़ा। गोबर में भी गम्भीरता और उत्तरदायित्व की भावना बलवती होने लगी। सिलिया-मातादीन भी पुनः एक हो गये।

होरी की दशा गिरती जा रही थी। रूपा के अनमेल विवाह करने के अपराध-बोध ने मानो उसको तोड़ ही दिया था यद्यपि मन-परिवर्तन के पश्चात् हीरा तक उसको पूरा-पूरा दिलासा दिया करता था। गोबर पैसा कमाने पुनः शहर जा चुका था। होरी और धनिया हाड़ तोड़ मजूरी करते, चना चबेना जुटाते जिन्दगी की गाड़ी धकेल रहे थे कि एक दिन, काम करते-करते ही, होरी को चक्कर आ गया। लू लग गई थी हाथ-पांव ठंडे पड़ने लगे थे। निःसन्देह, चिकित्सा का अभाव भी था। मन न जाने कहाँ-कहाँ भटकने लगा था इसी भटकन में याद आ गयी गाय।

गाँव में खबर फैल गई। लोग जमा होने लगे। होरी का अन्तिम समय था। आवाजें आने लगीं—अन्तिम समय है, गोदान कराओ। धनिया पर सुतली बेचकर

कमाये गये मात्र बीस आने थे। वे ही पंडित दातादीन के हाथों में रख दिये क्योंकि घर में न गाय थी, न बछिया और न और पैसा। इधर धनिया ने पछाड़ खाई और उधर होरी के प्राण निकले। इसी गोदान-क्रिया के साथ 'गोदान' की कथा समाप्त होती है।

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' का परिचय देकर इसकी कथा का सारांश अपने शब्दों में लिखिये।

२. 'गोदान' उपन्यास के कथासार का परिचय दीजिए।

३. 'गोदान' उपन्यास की कथा-घटनाचक्र को परिच्छेदानुसार लिखिये।

४. 'गोदान' उपन्यास की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

५. 'गोदान' का परिचय देते हुये बताइये कि इसमें कितनी मुख्य कथायें हैं? प्रत्येक कथा का क्रमबद्ध रूप में संक्षिप्त परिचय भी दीजिये।

६ 'गोदान' : कथा-समीक्षा

[कथा-संगठन, कथा-विन्यास, कथागत विशेषतायें, कथा-सर्वेक्षण, कथा वस्तु-वैशिष्टय कथा-शिल्प, वस्तु-विन्यास]

कथा-तत्व का आशय और औपन्यासिक आवश्यकता :—

संस्कृत भाषा की 'कथ्' धातु से निर्मित 'कथा' शब्द का अर्थ है—कहना। कथा-वस्तु, कथानक, कथा-तत्व आदि भी इसी से निर्मित शब्द हैं। सामान्यतः, "उपन्यास के उस भाग को कथावस्तु कहते हैं जिसमें मूल कथा भाग या इतिवृत्त के साथ सम्बद्ध वे समस्त घटनायें भी आ जाती हैं जिनसे मिलकर कथात्मक साहित्य विशेष की विषय वस्तु बनती है। इस प्रकार वह तत्व जो कालक्रम से शृंखलित घटनाओं को रीढ़ की हड्डी की तरह दृढ़ता देकर गति देता है और जिसके चारों ओर घटनायें बेल की भाँति उगती, बढ़ती और फैलती हैं, कथावस्तु कहलाता है।"[1] कथा-शिल्प, कथा-संगठन, कथा-कौशल, कथा वस्तु-विन्यासादि में इसी के प्रस्तुतीकरण का गुण अभिव्यक्त हुआ करता है और इसी के आधार पर रचना की कथागत विशेषताओं का निर्धारण। वस्तुतः यही वह मूलभूत तत्व है जिसकी नींव पर उपन्यास-रचना रूपी भवन का निर्माण हो पाता है। प्रमाण अन्य सभी औपन्यासिक तत्वों का, किसी न किसी रूप-मात्रा में, इसी तत्व पर निर्भर रहना है। पात्र या चरित्रों का निर्माण, संयोजन और प्रस्तुतीकरण, उनके क्रियाकलाप से लेकर संवादों तक का नियोजन, वातावरण या देशकाल का पृष्ठभूमिक रूप, रचना-उद्देश्यों की अभिव्यक्ति तथा रचना का नामकरण तक प्रायः इसी से सम्बन्धित या इसी पर निर्भर क्रिया करते हैं। यहाँ तक कि पाठकों को आकर्षित-प्रभावित करने में भी इस तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रेमचन्द और कथावस्तु—कथा-प्रकार की दृष्टि से, प्रेमचन्द यदि सामाजिक वर्ग के कथाकार हैं तो कथा-प्रस्तुतीकरण में प्रायः स्वतन्त्र, कल्पित, यथार्थ-आदर्शपरक और स्वेच्छानुसार उसको प्रस्तुत करने के समर्थक। उनकी स्वयं की स्पष्ट मान्यता है कि, उपन्यासकार को अपनी सामग्री (कथा) आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिये जो उसे चारों तरफ मिलते रहते हैं।"[2] तथा, "उपन्यासकार को इसका अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना-वैचित्र्य से रोचक बनाये, लेकिन शर्त यह है कि प्रत्येक घटना असली ढाँचे से निकट

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ : पृ० २०५

२. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ५८-५९ तथा ६५

सम्बन्ध रखती हो। ·· उपन्यास में वही घटनाएँ, वही विचार लाना चाहिये जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाये जो प्लाट के विकास में सहायक हो अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों।''[1] कहना न होगा कि अपने उपन्यासों के कथा तत्व में प्रेमचन्द ने यही किया है जिसका सर्वोत्तम और सर्वोच्च प्रमाण है— उनके अन्तिम उपन्यास 'गोदान' की कथावस्तु (और उसकी समीक्षा)।

'गोदान' की कथावस्तु-समीक्षा :

गोदान में मुख्य (आधिकारिक) कथा दो हैं—ग्रामीण तथा नगरीय अर्थात् होरी की कथा तथा मालती-मेहता एवम् उनके संगी-साथी नगरीय लोगों की कथा। दोनों ही कथाएँ आद्योपान्त समान्तर रूप से साथ-साथ चलती हैं। इनको परस्पर सम्बन्धित किया गया है— रायसाहब अमरपाल सिंह की कथा से जो ग्राम्य और नगरीय दोनों कथाओं का स्पर्श करने वाली है। गहराई से देखें तो इन तीनों में प्रधान कथा होरी वाली ही है (क्योंकि उपन्यास का आरंभ और अंत एवं समग्र घटनाचक्र का विकास इसी से होता है)। इस मूल या प्रधान कथा को बल देने वाले कुछ अन्य प्रमुख कथा-प्रसंग हैं—गोबर-झुनिया, सिलिया, मातादीन, भोला अहीर और उसकी पत्नी की कथाएँ। इसी भाँति हीरा-पुनिया, झिंगुरी सिंह, दातादीन-मातादीन, पटेश्वरी, दुलारी सहुआइन, सोना-रूपा आदि के प्रसंग इसको गतिशीलता प्रदान करते हैं तथा इनमें से कुछ के पूर्ववृत्त (अंतर्कथाओं) का कार्य करते हैं। उधर, खन्ना-गोविंदी, खान-मिर्जा, तंखा, चुहिया, सूर्यप्रताप-रुद्रप्रताप आदि विषयक प्रसंग नगरीय कथा को सहायता पहुँचाते हैं। निःसन्देह, इतने व्यापक पटल पर व्यापक कथा-प्रसंगों का साथ-साथ निर्वाह करना, इन्हें समेट कर संगुफित करना लेखक के कथा-कौशल के साक्षी हैं।

डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव, बाबू गुलाबराय, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी आदि कुछ आलोचकों ने 'गोदान' की उपर्युक्त कथाओं को परस्पर असम्बद्ध मान कर दोषपूर्ण बताया है। इस सन्दर्भ में कहा गया है—"गोदान उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र (अपनी-अपनी कथा-प्रसंगों के साथ) एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं, जिनका एक-दूसरे के जीवन-क्रम से बहुत कम सम्पर्क है। वे कभी-कभी आते-जाते मिल लेते हैं और कभी-कभी किसी बात पर झगड़ा भी कर लेते हैं परन्तु न तो उनके मिलने में और न झगड़ने में ही कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसे स्थायी कहा जा सके।"[2] दूसरे शब्दों में, "गोदान की कथावस्तु में दो सर्वथा भिन्न, सर्वथा असम्बद्ध, कथाओं का बेमेल सम्मिश्रण किया गया है।"[3]

---

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ५८-५९ तथा ६५

२. आधुनिक साहित्य : पृ० २००

३. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान-पुनर्मूल्यांकन : पृ० ८२

गहराई से देखें और ध्यान से सोचें तो सत्य इतना ही नहीं है। कारण ? शहरी और ग्रामीण, किसी भी कथा को, यदि उपन्यास से निकाल दिया जाये तो कथा से भी अधिक उसके इष्ट को क्षति पहुँचेगी। दूसरी ओर, यह सत्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि उपन्यास का सर्वांगीण कथ्य, विस्तृत यथार्थ फलक तथा समस्त देशीय स्थिति-चित्रण उपर्युक्त कथाओं की समग्रता में ही प्रतिफलित हो सकता था, एकांगी में नहीं। वास्तविकता तो, प्रो० प्रकाशचन्द गुप्त के शब्दों में, यह है कि "गोदान में भी कथा का स्रोत अविरल है। ···कथा के ऊपर प्रेमचन्द का पूरा अधिकार है—कभी ग्राम में, कभी नगर में, बड़े-बड़े रईसों में, दीन-दुखियों में उनकी कल्पना स्वच्छन्द चक्कर लगाती है।" इस पर भी, लेखक कथा-प्रस्तुतीकरण में शास्त्रीय स्थितियों और आवश्यक गुणों का पूरा-पूरा निर्वाह करता हुआ मिलता है।

गोदान की कथा ३६ परिच्छेदों में विभक्त है। प्राय:, एक ही कथा कई-कई परिच्छेदों तक चलती है और फिर किसी अन्य कथा-प्रसंग का प्रारम्भ किया गया मिलता है। फिर भी, समग्रत: देखें तो कथा-विकास की स्थितियाँ आसानी से और स्पष्टत: मिल जाती हैं। होरी-धनिया से कथा की **आरम्भ स्थिति** का आरम्भ होता है जो भोला द्वारा होरी के बैल खोलकर ले जाने तक चलती है। इसी भाग में लेखक ने समस्या, उद्देश्य तथा पात्रों के स्वरूपादि को प्रस्तुत कर दिया है। बैलों के जाने से समस्या और गहरा उठती है और यहीं से कथा की **मध्य या उत्कर्ष स्थिति** का श्रीगणेश हो जाता है। शहरी बुद्धिवादी वर्ग (मालती-मेहता-प्रसंग) कथा को नया मोड देता है और यहीं से शहरी और ग्राम्य पात्रों की समस्यायें विकासोन्मुख होती जाती हैं प्रासांगिक पात्र पूर्णता प्राप्त करते हैं तथा कथा को नियति तक पहुँचा देते हैं। मालती-मेहता, खन्ना, गोविन्दी, गोबर-झुनिया का पुनर्मिलन, रायसाहब की विजय-पराजय तथा होरी का मरणासन्न आदि **चरमावस्था** की संकेतक घटनायें हैं तो होरी की अकाल मृत्यु ही वह **चरमबिन्दु** है जिस पर कथा की समाप्ति होती है।

गोदान की कथा की एक महत्वपूर्ण किन्तु विवाद-ग्रस्त विशेषता है—**कथा-प्रसंग-संयोजन तथा गठन**। यहाँ पर, नि:संदेह समान्तर गति से चलने वाली, दो कथायें हैं, इनको परस्पर संगुफित करने वाली रायसाहब की कथा है तथा सभी को बल प्रदान करने वाले अनेकानेक छोटे-बड़े प्रसंग और लघु प्रसंग हैं। इन सभी को लेखक ने अत्यन्त कुशलता से संयोजित किया है। प्रमाणस्वरूप होरी-कथा को बल देने वाले ग्राम्य पात्रों के प्रसंग देखे जा सकते हैं तो शहरी कथा से ग्राम्य कथा को सम्बन्धित करने वाले रायसाहब और गोबर-विषयक प्रसंग। नि:सन्देह, लेखक ने इनको यथाआवश्यकता और यथास्थान ही ग्रहण किया है। एकदम सच तो यह है कि वर्णन, विश्लेषण, स्मृति, मन-स्थिति-विश्लेषण, संवादादि नाना साधनों से लेखक

इनको विकसित ही नहीं करता, परस्पर सम्बन्धित भी कर देता है। यूँ यहाँ पर सरलता भी है और विविधता भी किन्तु शिथिलता नहीं है। प्रमाणस्वरूप बिलारी के होरी का, उसी गाँव के निवासी रायसाहब से मिलना, घर से भागकर गोबर का शहरी पात्रों से और फिर शहरी पात्रों (मालती-मेहता) का गोबर-परिवार से मिलना जैसे प्रसंगों को देखा जा सकता है। एकदम सच तो यह है कि प्रायः सभी प्रसंग मुख्य कथाओं को बल प्रदान करते हैं—कभी कथा या कथा-सूत्र को गति देकर, कभी समस्या-स्थिति को उजागर करके और कभी पात्रादि को प्रभावित-परिचालित या सक्रिय करके। श्री त्रिलोकीनाथ खन्ना का यह कथन एकदम सत्य है कि, "गोदान में प्रेमचन्द प्रसंगों के उपन्यासकार हैं। उपन्यास का यह नया सम्बोध है। आरम्भ से अन्त तक हम प्रसंगों की मन्थर गति में ही बहते हैं। महानद का प्रवेग यहाँ नहीं है वरन् लघु जलधाराओं की ललित मन्द गति है। ···प्रेमचन्द इन प्रसंगों का कुशल निर्माण त्याग-चयन पद्धति शिल्प) से करते हैं। अनावश्यक, असम्बद्ध और प्रसंग के कलात्मक सौष्ठव में किसी भी प्रकार का योग न देने वाले तत्वों को प्रेमचन्द ग्रहण ही नहीं करते, वर्णन की मितव्ययिता प्रसंग को प्रलाप नहीं देती। सक्षिप्तता की समर्थता इन प्रसंगों को सांकेतिकता और गाम्भीर्य प्रदान करती है।"[1] निःसन्देह 'गोदान' में, "प्रेमचन्द ने प्रत्येक वर्ग के प्रतीक पात्र को लेकर समूचे समाज का चित्रण किया है। इस कहानी (अर्थात् नगर-कथा और प्रसंगों) को हटा दीजिये तो होरी अर्थात् समाज का चित्र अधूरा ही रह जायेगा। दुःख को मूर्तिमान करने के लिये यही तो उपयुक्त पृष्ठभूमि है। जमींदार अमरपालसिंह (की कथा) दोनों की रीढ़ की हड्डी है। इसीलिये नगर की कहानी इस उपन्यास का अविभाजित अंग है।"[2] इसके अभाव में 'गोदान' इतना सशक्त और व्यापक या पूर्ण नहीं बन सकता था। कारण ? "दोनों कथाओं के साथ-२ चलने से ग्रामीण और नागरिक परिवेश साथ-साथ उभरते चलते हैं और दोनों प्रत्यक्ष रूप से कोई सम्बन्ध न होने पर भी दोनों एक-दूसरे के पूरक से होकर इस उपन्यास में आते हैं।" पहली कथा (होरी की कथा) यदि परिवेशगत-व्यवस्थागत यथार्थ को मुखर करती है तो दूसरी (शहरी कथा) उसके कारण को अत्यन्त पैने व्यंग्य और मर्मस्पर्शिता से भर कर।

इसी के साथ-साथ एक प्रश्न उठता है—मालती-मेहता-कथा की उपयोगिता का। ध्यान से देखें तो कुछेक प्रसंगों में, जो निःसन्देह जबरन जोड़े गये हैं, यह कथा न तो ग्राम्य कथा से सम्बन्धित है, न नगरीय कथा से। ये केवल रायसहाब के भी मित्र मात्र हैं, अतएव उनकी भी किसी असहायता या समस्या में काम नहीं आते हैं। निःसन्देह दोनों ही चरित्र न तो ग्राम्य समाज के और न शहरी या अर्धशहरी पूँजीपति-शोषक समाज के प्रतिनिधि हैं। दोनों ही चरित्र, अपनी-अपनी समस्याओं,

१. गोदान—एक नव्य परिबोध : पृ० ११३
२. हंसराज रहबर : प्रेमचन्द-जीवन और कृतित्व

लक्ष्यों, प्रश्नों और विचारधारादि में, अन्य सबसे अलग हैं और अपना व्यक्तित्व तथा कथा-प्रसंग भी स्वतन्त्र रूप से रखते हैं। वे न ग्रामीणों की भाँति शोषित हैं, न शहरियों की भाँति शोषक। इसी प्रकार "मालती-मेहता की कथा न तो कोई विषमता ही दिखलाती है और न ग्रामीण जीवन में कोई परिवर्तन लाने के लिये ही लिखी गई है। हाँ, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वह एक स्वतन्त्र कथा के रूप में अपना महत्व रख सकती है" तथा एक प्रकार से 'लघु उपन्यास' का काम दे सकती है।

निःसन्देह मालती और मेहता की सम्मिलित कथा पर उपर्युक्त बातें सही उतर सकती हैं किन्तु यदि दोनों पात्रों और उनके क्रिया-कलाप, रूप, विचारों आदि को अलग-अलग करके देखें तो मानना पड़ता है कि दोनों का ही उपन्यास की कथा को सम्पूर्ण बनाने में भरपूर योग रहा है। भारतीय समाज में, आज भी एक ऐसा बौद्धिक वर्ग है जो एक ओर दलितों से सहानुभूति रखता है और शोषकों से विरोध यद्यपि वह वर्ग मुख्यतः बौद्धिक ही बना रहता है। प्रो० मेहता इसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। दूसरे, स्वयं लेखक ने भी उन्हीं को अपना विचार-वाहक (Mouth Piece) बनाया है। तीसरे, अमीर-गरीब के बीच की कड़ी का कार्य भी वही करते हैं। इस प्रकार मिस मालती भी एक ओर यदि समकालीन ग्रामीण समाज की नारीगत स्थिति की विषमता को दिखाती है तो दूसरी ओर उसकी कथा नगरीय समाज की पाश्चात्य से प्रभावित तथाकथित आधुनिकाओं की अंततः निराश्रिता, एकाकी और दुःखद स्थिति को। मालती-मेहता की प्रेमकथा, मित्रवत् बने रहने और विवाह न करने के दुष्परिणामों को भी मुखर करती है। सबसे अधिक तो लेखक की नारी विषयक भारतीयता से भरी कल्पना, भारतीय नारी की आदर्शमयता के प्रति श्रद्धा तथा समकालीन नगरीय समाज में पल्लवित-विकसित होने वाले नारी-वर्ग का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व भी मालती और उसकी कथा से अभिव्यक्त कराया गया है—उपन्यास-कथा को सर्वांगीण बनाने के लिये। फलतः बाहर से जोड़ी गयी होने पर भी, मालती-मेहता-कथा उपन्यास में लाभप्रद ही सिद्ध होती है।

अब आइये कथा के आवश्यक **शास्त्रीय गुणों** पर। सामान्यतः, शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास-कथा के मुख्य आवश्यक माने जाने वाले गुण हैं—**रोचकता, स्वाभाविकता, कौतूहल-वर्धकता, मार्मिकता** तथा **गतिशीलता**।

इस दृष्टि से, 'गोदान' के कथा-प्रसंगों को देखें तो कह सकते हैं कि उनमें से अधिकतर रोचक हैं। कुछेक प्रसंगों (यथा मेहता का वीमेन्स क्लब में दिया गया लम्बा भाषण, धनुष-लीला में होरी का माली वाला अभिनय करना आदि) को छोड़ दें तो सभी कथा-प्रसंग पाठक को रुचिकर लगते हैं। कारण है—उनका **स्वाभाविक** अर्थात् यथार्थ या सत्य की प्रतीति कराने में सक्षम होना। होरी-धनिया का पारस्परिक मजाक और उसी में 'साठे-पाठे' की गम्भीर भविष्यवाणी, होरी की गाय

विषयक ललक और उत्साह, क्रमशः कष्ट पर कष्ट भोगते जाना, गोबर-झुनिया की आँखें चार होना, पुनिया-धनिया-वाक्युद्ध, हीरा द्वारा गाय को ईर्ष्यावश जहर दिया जाना, गोबर का शहर में आकर हुआ विचार-परिवर्तन तथा खन्ना मालती, खन्ना-गोविंदी, मालती-जंगली युवती, रायसहाब और उनके पुत्र-पुत्री विषयक प्रसंग आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। आद्योपान्त कथा-विन्यास और एक के बाद एक आये छोटे-बड़े प्रसंगों में पाठक का **कौतूहल** बना रहता है, 'आगे क्या' की जिज्ञासा बढ़ती रहती है। जहाँ तक प्रश्न है—**मार्मिकता** का, भला 'होरी की मृत्यु वाला दृश्य' कौन भूल सकता है ? **गतिशीलता** भी प्रायः बनी ही रही है।

कुछ असंगतियाँ—इस पर भी 'गोदान' की कथा सर्वगुण-सम्पन्न नहीं कही जा सकती है। कारण ? **सर्वप्रथम**, लेखक ने कई ऐसे प्रसंगों का सृजन-समावेश किया है जो अनावश्यक हैं और जिनको पूर्णतया निकाल देने पर भी कथा पर कुछ फर्क नहीं पड़ता। कुश्ती का आयोजन, शिकार-प्रसग, कोदई का मान लीला-प्रसंग, ठाकुर ध्यानसिंह का पूजा-पाठ, पड़ोसी पति-पत्नी के झगड़े में गोबर का बेबात कूदना, मिर्जा खुर्शेद की कथा तथा अमरपालसिंह की पुत्री की तलाक विषयक कथा आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। **दूसरे**, कुछ प्रसंग अविश्वसनीय भी बन गये हैं यथा प्रो० मेहता का पठान बनकर सबको मूर्ख बना देना, गोबर के बेटे की बीमारी (चेचक) पर झुनिया का सोते रहना और मालती का रात-रात भर बच्चे को गोद में उठाये घूमना, मालती का एकदम आदर्श भरा भारतीय नारी बन जाना, झुनिया का शहरी पडित की दुर्गति करना, सोना जैसी सामान्य ग्रामीण स्वर की लड़की का पति को दहेज न लेने का संदेश भेजना, घर आयी सिलिया का जबरन अपमान करना, रूपा का चुपचाप रामसेवक जैसे वृद्धप्रायः से विवाह करने को तैयार हो जाना आदि। **तीसरे**, धनिया-पुनिया के झगड़े में होरी का खाली खाट देखना और उधर उपन्यासकार का पूर्व स्मृति-पद्धति (Flash Back) से झुनिया-गोबर के प्रेमालापों का वर्णन करना इसी का ये प्रमाण है कि कहीं-कहीं वर्णन असंगत स्थलों पर भी कर दिये हैं। इस सन्दर्भ में डॉ० राजपाल शर्मा ने सशक्त शब्दों में कहा है—"चतुर्थ परिच्छेद में आयी हुई गाय को लाते समय झुनिया और गोबर में क्या बातें हुई थीं, इसका वर्णन पाँचवें परिच्छेद में होने पर भी उसका सम्बन्ध चतुर्थ परिच्छेद के कई वाक्यों और परिस्थितियों द्वारा उससे जोड़ दिया गया है किन्तु छठे परिच्छेद का आरम्भ इस वाक्य से करके (गोबर जब अकेला गाय को हाँकता हुआ चला···) तथा अगली ही साँस में धनुष-यज्ञ का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने सारा गुड़ ही गोबर कर दिया है। समझ में नहीं आता कि धनुष-यज्ञ के वर्णन से पूर्व इस एक वाक्य की ·· क्या विशेषता थी।"[1] यहाँ पर यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण उपन्यास में इस प्रकार की असगति का यही एकमात्र प्रमाण है।

---

१. गोदान—पुनर्मूल्यांकन : पृ० ६१

सूक्ष्म अवलोकन करने पर प्रस्तुत उपन्यास में कुछ जानी अनजानी भूलें भी मिल जाती हैं यथा खन्ना की पत्नी का नाम धनुष-यज्ञ-प्रसंग में कामिनी है किन्तु बाद में सर्वत्र गोविन्दी, प्रथम परिच्छेद में रूपा की आयु आठ वर्ष है तो तृतीय परिच्छेद में 'पाँच-छह वर्ष', इक्कीसव परिच्छेद में होरी का गाँव से भरी बताया गया है जबकि अन्यत्र बेलारी, चौंतीसवें परिच्छेद में सिलिया का बालक 'सारे गाँव में दौड़ लगाता' है तो उसी के तीसरे पृष्ठ (पृ० २८६) पर कुछ-कुछ बकवाँ चलने वाला तथा छत्तीसवें परिच्छेद में विवाह के 'दूसरे दिन एक अहीर के मारफत रूपा ने गाय भेज दी' मगर तुरन्त इस सूचना के बाद 'होरी गाय खरीदने' की चिन्ता करने लगता है—" अगर यह काम दो महीने भी टिक गया तो गाय भर को रुपये मिल जायेंगे।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कुछेक अपवादों और दोषों को छोड़ दें तो 'गोदान' का कथा-सौष्ठव एक ओर यदि अपने आप में 'विशिष्ट' है तो साथ ही साथ नाना विन्यासात्मक गुणों से युक्त भी। उसमें लेखक ने अपने कथा-शिल्प का पूरा-पूरा परिचय तो दिया ही है, उसको नाना कथागत विशेषताओं से परिपूर्ण भी कर दिया गया है। उसमें एक ओर यदि लेखक के कथा-कौशल का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व मिलता है तो शास्त्रीय कसौटी पर भी 'गोदान' की कथा अनेकांशों में खरी ही सिद्ध हुई मिलती है।

विवेच्य प्रश्न

१. कथा-तत्व का परिचय और उपन्यासान्तर्गत महत्व बताते हुए 'गोदान' के कथा-तत्व का सप्रमाण मूल्यांकन (विवेचन) कीजिये।

२. कथा-संगठन (विन्यास, प्रस्तुतीकरण, शिल्प) की दृष्टि से 'गोदान' के गुण-दोषों का निर्धारण कीजिये।

३. "गोदान में दो कथायें समानान्तर गति से एक साथ चलती हैं किन्तु प्रायः परस्पर सम्बद्ध रूप में"—प्रस्तुत कथन की सारगर्भित समीक्षा कीजिये।

४. "गोदान की कथावस्तु में दो सर्वथा भिन्न, सर्वथा असम्बद्ध कथाओं का बेमेल सम्मिश्रण किया गया है।" प्रस्तुत कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना प्रमाण-पुष्ट मत दीजिये।

५. शहरी कथा-विशेषतः मालती-मेहता-कथा की 'गोदान' उपन्यास में उपयोगिता (या सार्थकता) को सिद्ध कीजिये।

६. 'गोदान' उपन्यास की कथागत विवेचना करते हुए उसकी महत्वपूर्ण कथाविषयक विशेषताओं की स्थापना कीजिये।

७. शास्त्रीय दृष्टि से 'गोदान' की कथा का सर्वेक्षण कीजिये।

८. "गोदान में प्रेमचन्द प्रसंगों के उपन्यासकार हैं"—प्रस्तुत कथन के परिप्रेक्ष्य में "गोदान की कथावस्तु" की समीक्षा कीजिये।

९. "गोदान की कथावस्तु अत्यन्त सुव्यवस्थित, सुनियोजित, आकर्षक और आवश्यकतानुसार बदलने, मुड़ने और बढ़ने वाली है।"—प्रस्तुत कथन पर टिप्पणी करो।

१०. "गोदान में ग्राम और नगर की कथायें एक-दूसरे की पूरक बन गई हैं"—प्रस्तुत कथन की सार्थकता को स्पष्ट कीजिये।

११. कथा विषयक आवश्यक गुण बताते हुये 'गोदान' की समीक्षा कीजिये।

१२. 'गोदान के प्रधान तथा प्रासंगिक कथानकों का संक्षेप में निर्देश कीजिये। उन्हें किस प्रकार जोड़ा गया है?

१३. "गोदान की दोनों कहानियाँ अधूरी हैं किन्तु इसी में इस उपन्यास की पूर्णता है।" प्रस्तुत कथन की समीक्षा, गोदान की कथावस्तु के आधार पर, कीजिये।

———

७ 'गोदान' : चरित्र-चित्रण-समीक्षा

[पात्र-संयोजना, चरित्र-चित्रण-पद्धतियाँ, चरित्रांकन-कला, चरित्र-चित्रणगत गुण-दोष]

चरित्र चित्रण और उपन्यास-रचना—संस्कृत भाषा की 'चरँ' धातु से निर्मित 'चरित्र' और पात्र को सामान्यतः समान अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है यद्यपि भारतीय मनीषा ने इनको परस्पर भिन्न माना है। इसी को स्पष्ट करते हुए डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने बताया है, 'पात्र कहते हैं बर्तन को जिसमें आप कुछ रखें। आप उसमें चरित्र रखते हैं। चरित्र उसको कहते हैं जो चरँ-ति, जो डाइनमिक (गतिशील) है, जो अपना जीवन जी रहा है। आप उसके मुँह में अपना कुछ नहीं रख सकते।''[1] सामान्यतः पात्र वे व्यक्ति होते हैं जिनकी अन्तर्बाह्य विशेषताओं के माध्यम से किसी भी रचना की घटनाएँ घटित होती हैं, जिनसे कथा-प्रसंगों को व्यक्त और गतिशील किया जाता है तथा जो स्वयं भी घटनाओं से प्रभावित-संचालित होते हैं। आंग्ल भाषा में इन्हें करैक्टर (Character) कहा जाता है और इन्हीं को रचना में प्रस्तुत करना, इनके अन्तर्बाह्य का उद्घाटन करना, चरित्र-चित्रण कहलाता है। जिन-जिन साधनों या माध्यमों से यह चरित्राभिव्यक्ति की जाती है, उनको 'चरित्र-चित्रण की शैलियाँ (विधियाँ या प्रणालियाँ) कहते हैं और उन्हीं को 'चरित्र-विधान' या 'चरित्र-संयोजन'। समग्रतः ''चरित्र-चित्रण किसी गद्य (उपन्यास भी) के (पात्रों या) चरित्रों की वैयक्तिक तथा विशिष्ट विशेषताओं के पारस्परिक वैभिन्नय को स्पष्टीकरण करने वाली एक प्रणाली है।''[2]

उपन्यास में, सर्वाधिक आवश्यक और सर्वोपरि तत्व चरित्र-चित्रण ही होता है। कारण ? पाश्चात्य विचारक श्री आर्नल्ड बैनेट के शब्दों में, ''कथा की घटनाएँ तो प्रायः पात्रों के स्वभाव और प्रकृति में जन्म लेती हैं, वातावरण या देशकाल का निर्माण चरित्रों की विशेषताओं के घटने से होता है, संवाद भी इन्हीं के लिये और इन्हीं के द्वारा प्रयुक्त होते हैं और उद्देश्य भी इन्हीं में निहित होता है।'' निःसन्देह, उपन्यास की भाषा और नामकरण भी किन्हीं न किन्हीं रूप-मात्राओं में इसी से सम्बन्धित रहते हैं।''[3] रचनात्मक दृष्टि से भी देखें तो पाते हैं कि रचना के कर्ता

---

१. सारिका पाक्षिक : मार्च : १९८० अंक

२. स्काट मेरिडिथ : स्टँकिग द हालोमैन : करेक्टराइजेशन

३. देखिये—हिन्दी साहित्य कोश-भाग १ : पृ० ४८८

और भोक्ता चरित्र ही होते हैं। कथा या कथ्य की कल्पना किये जाते ही उसके साधन हेतु चरित्रों की भी कल्पना का श्रीगणेश होने लगता है। यही "उपन्यासकार की भाषा के भावमय शब्द होते हैं। इन्हीं के द्वारा वह अपने उस अभिप्राय: को व्यक्त करना चाहता है जिसके लिये उसे विवश होकर उपन्यास की रचना करनी पड़ी है। इन पात्रों के द्वारा ही वह जीवन का अध्ययन और उसकी अनुभूतियों को मूर्तिमान करना चाहता है।"[1] यही कारण है कि "...जब भी किसी (उपन्यासकार) ने इस (उपन्यास) के निर्माण के लिये लेखनी उठाई वह पात्रों और उनके चरित्र-चित्रण की समस्या से नहीं बच सका। ......पात्र के चरित्र-चित्रण के बिना उसका उपन्यास 'उपन्यास' नहीं कहला सकता, और चाहे जो कुछ भी कहलाये क्योंकि उपन्यास का मूलाधार मानव और उसका चरित्र है।"[2] एकदम सच तो यह है कि श्रेष्ठ कथा साहित्य की नींव केवल मात्र चरित्र-चित्रण है, कुछ अन्य नहीं—"The foundation of good fiction is character creating and nothing else."[3]

प्रेमचन्द और चरित्र-चित्रण—हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के युग तक तिलिस्मी-ऐय्यारी या सस्ती उर्दू-फारसी वाली रोमांटिक कथाओं की प्रधानता थी। फलत: चरित्र भी एकदम काल्पनिक, अतिप्राकृत या फिर एकदम आदर्श के जड़ रूप होते थे। इसी वातावरण में, सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही, सशक्त वाणी में घोषित किया, "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है।"[4] प्रकारान्तर से, प्रेमचन्द ने भी चरित्र-चित्रण को ही उपन्यास का मूलाधार स्वीकार किया। एक अन्य स्थान पर भी उन्होंने माना, "...यही चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्त्तव्य है।"[5] तथा "उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें। जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है।"[6] एवं "उपन्यास के विषय का विस्तार मानव-चरित्र से किसी कदर कम नहीं है। उसका सम्बन्ध अपने चरित्रों के कर्म और विचार, उनके देवत्व और पशुत्व उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है। मनोभाव को विभिन्न रूप और भिन्न-भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास

---

१. डॉ० सत्येन्द्र : समीक्षा के सिद्धांत : पृ० १३६
२. डॉ० रणवीर रांग्रा : हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास : पृ० १५
३. देखिये : डिक्शनरी ऑफ वर्ड लिटरेरी टर्म्स
४. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ६
५-६. वही : पृ० ५१

के मुख्य विषय हैं।"[1] इतना ही नहीं, श्रेष्ठ चरित्रांकन के लिये प्रेमचन्द जी ने कुछ गुणों के समावेश को भी आवश्यक माना है।"[2] यथा, प्रभावोत्पादकता, आत्मीयता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, गतिशीलता तथा विकासोन्मुखता आदि। इस प्रकार, प्रेमचन्द जी ने उपन्यास में चरित्र-चित्रण को अनिवार्यतम तत्व तो स्वीकार किया ही है, अपने उपन्यासों में उस पर भरपूर ध्यान भी दिया है। प्रमाण है—उनकी अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट उपन्यास-रचना 'गोदान' का चरित्र-चित्रण।

'गोदान' का चरित्र-चित्रण—

चरित्र-प्रकार—लगभग ३०० पृष्ठों एवं ३६ अध्यायों में विभक्त 'गोदान' विस्तृत फलक पर अंकित की गयी रचना है जिनमें दो-दो समानान्तर कथाओं, एक दीर्घ-कार्य समन्वयकारी कथा तथा सैकड़ों प्रसंगों-गौण प्रसंगों का आयोजन किया गया है। इसी का एक स्वाभाविक परिणाम यह भी होना ही था कि इसमें पात्रों की बहुतायत हो। एकदम सच तो यह है कि 'गोदान' में समाज के प्रायः सभी वर्गों के और प्रायः सभी प्रकारों के पात्र भरे पड़े मिलते हैं।

कथा में महत्व की दृष्टि से, पात्र दो प्रकार के वर्गों में रखे जा सकते हैं मुख्य अर्थात् आधिकारिक कथा से सम्बन्धित तथा गौण अर्थात् गौण प्रसंगों से सम्बन्धित। होरी, धनिया, गोबर आदि ग्राम्य कथा के तथा रायसाहब अमरपालसिंह, मालती, प्रो० मेहता, खन्ना, तंखा, गोविंदी, ओंकारनाथ आदि नगर कथा के प्रमुख चरित्र हैं तो भोला, मातादीन, दातादीन, सोना, रूपा, चुहिया, सिलिया, आदि गौण वर्ग के। महात्मा और रूपा के पति का तो परिचय ही मिलता है, प्रत्यक्षतः वे मंच पर नहीं दीखते। सम्बन्धित वर्गाधार पर भी पात्रों को सामान्य और मिश्र नामक दो वर्गों में रखा जाता है। सामान्य पात्र अपने सम्बन्धित वर्ग का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं, वह भी आद्योपांत जबकि मिश्रित पात्र कभी प्रतिनिधित्व करते हैं और कभी-कभी, कहीं-कहीं उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी प्रखर रूप में मुखर हुआ करता है। पटेश्वरी, दुलारी सहुआइन, पं० दातादीन, मिर्जा खुर्शेद और ओंकारनाथ आदि प्रथम वर्ग के चरित्र हैं तो रायसाहब, होरी, धनिया, गोबर, भोला, झुनिया, सिलिया, मालती और मेहता द्वितीय वर्ग के।

चरित्र-विकास की दृष्टि से पात्र स्थिर और गत्यात्मक दो प्रकार के होते हैं। "स्थिर चरित्र उन्हें कहा जाता है जो एक जीवनधारा और आदर्श से बँधे होते हैं। ऐसे पात्रों का चरित्र रूढ़ हो जाता है और किसी भी घटना अथवा परिस्थिति से उनके चरित्र में परिवर्तन नहीं आता। ......इसके विपरीत, गतिशील (या गत्यात्मक) पात्र में जीवन का उत्थान-पतन मिलता है, वह सजग और सचेष्ट होता है।" 'गोदान' में होरी और मालती क्रमशः इन दोनों प्रकारों के सर्वोत्तम प्रमाण

१-२. वही : पृ० ६३ तथा ६६-६९

हैं। इसी शृंखला में प्रथम वर्ग में ·खेलाल, सिलिया और दातादीन को रखा जा सकता है तो दूसरे वर्ग में मेहता, झुनिया, गोबर और गोविंदी आदि को।

'गोदान' में चरित्र-चित्रण की शैलियाँ—

उपन्यास में चरित्र-चित्रण करने की प्रमुखतः तीन प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं—(१) प्रत्यक्ष अथवा बहिरग (२) परोक्ष अथवा अंतरंग तथा (३) नाटकीय। गोदान में तीनों का ही प्रयोग बहुतायत से किया गया मिलता है।

प्रत्यक्ष अथवा बहिरंग शैली—इस शैली में पात्र के अन्तर्वाह्य का परिचय लेखक स्वयं अपनी टिप्पणी या विश्लेषण-वर्णनादि से देता है। पात्र का नाम, आकृति, वेशभूषा, क्रिया-कलाप आदि का अंकन करने में यह विधि सरलतम मानी जाती है। 'गोदान' में लेखक ने इसका प्रयोग बहुतायत से और प्रायः प्रत्येक पात्र के चरित्रांकन में किया है। कुछ प्रमाण देखिये—

(१) "गोबर सांवला, लम्बा, इकहरा युवक था जिसे इस काम में रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुँह पर असंतोष और विद्रोह था। ···बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, साँवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बाँधे हुए थी, उसके हल्के शरीर पर कुछ लदी हुई सी थी और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी।"

(२) "दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख-छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंग्लैड से डाक्टरी पढ़ कर आई हैं और अब प्रेक्टिस करती हैं ······आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं।"

(३) "·······होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी।"

इसी प्रकार धनिया, रायसाहब, गोविंदी, झुनिया, तंखा, ओंकारनाथ और जंगली युवती आदि के शब्द-चित्र भी इसी वर्ग में आते हैं। सशक्त साकारता की क्षमता प्रेमचन्दीय प्रत्यक्ष वर्णन शैली की अपनी विशेषता हैं जो इस प्रकार से किये गये चरित्रांकन में पगे-पगे मिलती है।

परोक्ष अथवा अंतरंग शैली—चरित्रांकन की सर्वोत्तम शैली है—परोक्ष अथवा अंतरंग जिसके द्वारा पात्रों की विभिन्न मनोभावनाओं, मनःस्थितियों, अन्तः-प्रेरणाओं, सम्मोहन, पूर्ववत्त, प्रत्यावलोकन तथा मनोद्वन्द्व आदि आन्तरिक चरित्र-पक्षों को उद्घाटित किया जाता है। मनोविश्लेषण क्रिया-कलापों का आयोजन, पूर्ववृत्त, स्मृति आदि इसी शैली के अन्तर्गत प्रयुक्त की जाने वाली कुछ विधियाँ हैं जिनका प्रयोग गोदान में भी भरपूर और सशक्त रूप में हुआ मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए:—

(१) "सिल्लो निःसज्ञ सी भूमि की ओर ताक रही थी। धरती क्यों नहीं फट जाती कि उसमें समा जाये। इतना अपमान! ·····बरसा क्या? अमृत के

बदले विष और सिलिया के रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आयीं ······सिलिया को यहाँ एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो। वह कुछ न पूँछ सकी।"

(२) "आज उसकी आँखों में वह हीरा न था जिसने उसकी जिन्दगी तल्ख कर दी थी, बल्कि वह हीरा था जो बे माँ-बाप का छोटा सा बालक था। बीच के ये पच्चीस-तीस साल जैसे मिट गये, उनका कोई चिन्ह भी न था।'

(३) "·····मेहता से जो उसे श्रद्धा थी, उसे एक धक्का सा लगा, मानो कोई शिष्य अपने गुरु को कोई नीच कर्म करते देख ले : उसने देखा, मेहता की बुद्धि-प्रखरता प्रेमतत्व को पशुता की ओर खींचे लिये जाती है और उसके देवत्व की ओर से आँखें बन्द किये लेती है, और यह देखकर उसका दिल बैठ गया।"

इसी प्रकार होरी का धनिया पर और धनिया का झुनिया पर क्रोध करना, गोबर का घर की स्थिति देखकर पश्चात्ताप करना, मेहता का पठान के वश में नाटक करना, मालती का रात-रात भर झुनिया के पुत्र की सेवा करना तथा रायसाहब का पुत्री-पुत्री की स्थिति को देखकर व्यथित होना आदि क्रिया-कलाप द्वारा चरित्रांकन किये जाने के कुछ प्रमाण हैं।

कहीं-कहीं, लेखक ने **भावात्मक विधि** का भी बड़ा काव्यात्मक तथा मर्म-स्पर्शी प्रयोग किया है। एक सशक्त प्रमाण देखिए—

"तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझ पर विश्वास करते हो, और मुझे भरोसा है कि आज अवसर आ पड़े तो तुम मेरी रक्षा प्राणों से करोगे। तुम में मैंने अपना पथ-प्रदर्शक ही नहीं, अपना रक्षक भी पाया है। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ तुम पर विश्वास करती हूँ और तुम्हारे लिये कोई ऐसा त्याग नहीं है जो मैं न कर सकूँ ······मुझे क्या आदेश देते हो ?"

नाटकीय शैली—नाटकीय शैली में पात्रों के कथन (स्वगत और पारस्परिक दोनों ही प्रकार के), डायरी, पत्र तथा आंगिक अभिनयादि के संकेत आदि से चरित्रांकन किया जाता है। गहराई से देखें तो पात्रों की सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाएँ, आचार-विचार, संकल्प-विकल्पादि, चरित्र के नाना आंतरिक पक्ष आदि इसी शैली के द्वारा अपेक्षाकृत अधिक सरलता और प्रभावमयता के साथ मुखर हो जाते हैं। 'गोदानकार' ने इस शैली के अन्तर्गत, संवाद और अभिनय-संकेतों का भरपूर और सशक्त प्रयोग करते हुए पात्रों का चरित्रांकन किया है। निम्नलिखित कुछ प्रमाण देखिये—

(i) **स्वगत कथन**—"······नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा।·····गोबर दूध के लिये तरस-तरसकर रह जाता है। दो सौ से कम की कोई न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सवेरे-सवेरे गऊ के दर्शन हो

जायें तो क्या कहना। न जाने कब, यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आएगा।"

× × × ×

चुपके से गाय लाकर बाँध देता तो चकरा जाती। लगती पूँछने, किसकी गाय है? कहाँ से लाए हो?...उसे घर की चिन्ता रहती है...गोबर जरा आलसी है।...मैं भी दादा के सामने मटरगस्ती ही किया करता था...लेकिन सिर पर बोझ पड़ते ही मैंने ऐसा चोला बदला कि लोग देखते रह गये।...धनिया का क्या दोष था? बेचारी जब से घर में आई, कभी तो आराम से नहीं बैठी। वह इतनी सीधी, गमखोर, निर्छल न होती तो आज सोभा और हीरा जो मूँछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख माँगते होते।"

(ii) पारस्परिक संवाद—

" दौलत के पुजारी तो गली-गली मिलेंगे, मैं सिद्धान्त के पुजारियों में हूँ।"

"मैं इसे दंभ कहती हूँ।"

"आपकी इच्छा।"

"धन की आपको परवा नहीं है?

"सिद्धांतों का खून करके नहीं।"

"तो आपके पत्र में बिदेशी वस्तुओं के विज्ञापन क्यों होते हैं?..."

× × × ×

"बहन तो मालती ही की है।"

"...मालती को आपने जाना नहीं, और न जानने की परवा की।...वह आग में पड़कर चमकने वाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते।"

इस भाँति, आँखें तरेर कर, गला फाड़कर, नाक सिकोड़ कर, आस्तीन चढ़ाकर, ऊँचे स्वर में, चीखते हुए, उन्मादिनी की भाँति जैसे नाना संकेत अभिनयात्मक निर्देशों के परिचायक हैं।

चरित्र चित्रणगत विशेषताएँ—शास्त्रीय दृष्टि से, 'गोदान' की चरित्र-योजना एकदम गुणसम्मत बनी मिलती है। प्रमाण? कई हैं सर्वप्रथम गोदान के चरित्र एकदम कथा-प्रसंगानुकूल, सजीव, स्वाभाविक और आवश्यकतानुसार बन पड़े हैं। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द प्रायः उपयोगितावादी रहे हैं जैसा कि डॉ० नगेन्द्र ने भी स्वीकार किया है—"प्रेमचन्द के साहित्य पर सर्वत्र शिव का शासन है, सत्य और सुन्दर शिव के अनुचर होकर आते हैं।" मेहता, होरी, मालती, धनिया, आदि प्रमुख पात्रों से लेकर जंगली युवती जैसा गौण चरित्र तक इसी के सशक्त प्रमाण हैं। सभी पात्रों के अन्तर्बाह्य का लेखक विभिन्न शैलियों की सहायता से, यथाआवश्यकता प्रकटीकरण कराता है वह भी इस प्रकार कि चरित्र, काल्पनिक होने पर भी एक-

दम यथार्थ, सत्याभास कराने में सक्षम तथा सप्राण बना नजर आता है। उसकी पगे-पगे अंकित मानवीय संवेदनाएँ एक ओर उसको स्वाभाविकता प्रदान करती हैं तो दूसरी ओर पाठक-मन का उससे पूर्णरूपेण तादात्म्य स्थापित कर देती हैं। पाठक उसी के साथ-२ हँसने-रोने लगता है। निःसन्देह, इन पात्रों की वैयक्तिकता और क्रिया-प्रतिक्रियाएँ आदि ने इनको एकदम मौलिक भी बना दिया है। सच तो यह है कि प्रेमचन्द की मानव-मनोविज्ञान में गहरी पैठ है और इसी से उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से मानव-मन और उसके विभिन्न अच्छे बुरे पहलुओं को एकदम स्वाभाविक और यथार्थपरक बनाकर उकेरा है—अनेकानेक पात्रों और प्रायः सभी प्रचलित विधियों से।

लेखक की एक महत्वपूर्ण सफलता रही है—**सार्थक पात्र-योजना**। गहराई से देखें तो विभिन्न वर्गों और प्रकारों के पात्र लेकर उन्होंने 'गोदान' में ग्राम्य, अर्ध-नगरीय और नगरीय—तीनों ही समाजों का पूरा-पूरा अंकन कर दिया है। प्रमाणार्थ ग्राम्य-समाज को ही लीजिए। होरी और उसका परिवार ग्राम्य प्रचलित सम्मिलित परिवार के विभिन्न पक्षों (विभिन्न सम्बन्धों यथा पति-पत्नी, भाई-भाई, पिता-पुत्र-पौत्र, पिता-पुत्री, सास-बहू, जिठानी-देवरानी, देवर-भाभी आदि) को अपनी समग्रता में उद्घाटित कर देता है तो भोला अहीर, पं० दातादीन-मातादीन, दुलारी सहुआइन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरीसिंह, नोहरी, सिलिया, दमड़ी बसोर आदि विभिन्न ग्राम्य-जाति-वर्गों की स्थिति को। रायसाहब अमरपालसिंह का जमीदार-रूप भी इसी श्रेणी में आता है। इसी भाँति रायसाहब को नगरीय मित्रमंडली और नगर में बसने पर गोबर के संगी-साथी नगरीय समाज के विभिन्न वर्गों को मुखर करने वाले हैं।

एकदम सच तो यह है कि 'गोदान' के प्रायः सभी **चरित्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं**। भारतीय किसान होरी, नयी पीढ़ी का गोबर, सामतवादी वर्ग के रायसाहब, पूँजी-पति व्यापारी का मि० खन्ना, बुद्धिवादी वर्ग का प्रो० मेहता, नवयुग की साक्षात् मालती, पंडित वर्ग के दातादीन, पत्रकार वर्ग के ओंकारनाथ, निम्नवर्ग की चुहिया और जंगली युवती आदि इसी के कुछ प्रमाण हैं। निःसन्देह, 'गोदान' में, "प्रेमचन्द ने हर क्षेत्र से पात्र लिये हैं। इनमें शोषित-पीड़ित किसान, उन्हें सताने वाले जमीदार साहब; महाजन, साहूकार, हरिजन, दस्तकार, क्लर्क, पाण्डे-पुरोहित, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, सरकारी अफसर और उनकी जी-हजूरी करने वाले सभी तरह के लोग मौजूद हैं।"

एक नवीनता और। यह है—**खलनायक की मौलिक कल्पना**। वाह्यतः 'गोदान' में शोषक वर्ग का एक पूरा-पूरा गिरोह है—अलग-अलग जाति, अलग-अलग स्तर और अलग-अलग रूपों में शोषण करने वाला। फिर भी, यदि गहराई से देखें तो शोषण यह वर्ग या पात्र नहीं वरन् इनके द्वारा परिचालित की जाने वाली

व्यवस्था है। दूसरे शब्दों में, गोदान में प्रेमचन्द ने किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष को नहीं "समाज को, समूह को, व्यवस्था, परम्परा और रूढ़ियों को खल-नायक बनाया है। यह नग्न खलनायक कथा के नायक को उसका स्नेह और विश्वास प्राप्त करके छलता है, पीड़ित करता है, शोषण करता है। जीवन-संघर्ष में जो नई स्थिति उत्पन्न हो रही है, व्यक्ति और समूह की टकराहट के जो नये धरातल उभर रहे हैं, उन्हीं का यह संकेत है।"[1]

प्रेमचन्द ने प्रमुख पात्रों पर ही नहीं, **गौण पात्रों पर भी पूरा-२ ध्यान** दिया है और उनका भी आवश्यकतानुकूल पूरा-२ चरित्रांकन किया है। ये पात्र केवल स्कैची या काम चलाऊ नहीं, चेतना से युक्त हैं तथा पूरा-पूरा व्यक्तित्व और वर्ग-प्रतिनिधित्व का गुण रखते हैं। जंगली युवती, चुहिया, झुनिया, नोखेराम, भोला, तंखा, ओंकारनाथ, सिलिया, हरखू, दातादीन, मिर्जा खुर्शेद आदि प्रायः सभी गौण पात्र इसी के प्रमाण हैं।

कुछ कमियाँ—'गोदान' के चरित्र-चित्रण में कुछ कमियाँ भी मिलती हैं। **सर्वप्रथम** लेखक ने कुछ पात्रों को वर्ग-प्रतिनिधि बनाने के साथ-२ अपना 'माउथ पीस' भी बना दिया है। इसका सर्वोत्तम प्रमाण है—प्रो० मेहता जो अपनी बात कम और लेखक की अभिव्यक्ति अधिक करते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० सुरेन्द्रनाथ तिवारी ने ठीक ही कहा है, "प्रेमचन्द अपने किसी पात्र को विकसित करते समय स्वयं को उससे अलग नहीं रख पाते। वे अपने पात्रों के साथ सम्पृक्त रहते हैं तथा उन्हें अपना दृष्टिकोण अवश्य प्रदान करते हैं।"[2] **दूसरे**, गोदान में गौण पात्र अपेक्षाकृत अधिक हैं जिनसे एक ओर तो अनावश्यक कलेवर बढ़ा है और दूसरी ओर उनको रखे बिना भी कथा-विकास हो सकता था। रूपा का पति, चुहिया, मिर्जा खुर्शेद ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं। **तीसरे**, कहीं-२ लेखक ने पात्र को अपेक्षाकृत अधिक आदर्शमय बना दिया है। मालती और मेहता ऐसे ही पात्र हैं।

उपसंहार—वस्तुतः 'गोदान' विस्तृत फलक और समाज-चित्रण पर आधृत उपन्यास है जिसमें लेखक ने वर्ग-संघर्ष और उसके परिणाम-दुष्परिणामों को व्यापकता और गहनता के साथ अंकित किया है। निःसंदेह, उसकी यही व्यापकता चरित्रों पर भी चरितार्थ होनी ही थी। फिर भी, द्रष्टव्य और उल्लेखनीय बात यह है कि लेखक ने विपुल चरित्रों की कल्पना करके उनको, विविध-सशक्त चित्रण शैलियों का प्रयोग करते हुए और एकदम गुण-सम्पन्न बनाते हुए, अपने-२ स्वतन्त्र अन्तर्वाह्य पक्षों के साथ, उद्घाटित किया है, वह भी इतने कौशल-पूर्वक कि पाठक यह मानने को बाध्य सा हो जाता है कि "प्रेमचन्द चरित्र-चित्रण में उस्ताद थे।"

---

१. त्रिलोकीनाथ खन्ना : गोदान-एक नव्य परिबोध : पृ० १०९–१०
२. प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास : पृ० २३५

विवेच्य प्रश्न

१. उपन्यास-रचना में चरित्र-चित्रण की आवश्यकता पर बल देते हुए 'गोदान' के चरित्र-चित्रण का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिये ।

२. चरित्र-चित्रण विषयक प्रेमचन्द की धारणाओं के परिप्रेक्ष्य में 'गोदान' के चरित्र-चित्रण को स्पष्ट कीजिये ।

३. "चरित्र-योजना उपन्यास की एक महती आवश्यकता है"—इस कथन की समीक्षा करते हुए 'गोदान' की परीक्षा कीजिये ।

४. 'गोदान' के पात्रों का वर्गीकरण करते हुए उनके चरित्रांकन की समीक्षा कीजिए तथा तत्सम्बन्धी गुण-दोषों का निर्धारण कीजिए ।

५. चरित्र-चित्रण की प्रचलित शैलियों को स्पष्ट करते हुए बताइये कि 'गोदान' में उनका प्रयोग किस रूप-मात्रा में मिलता है ?

६. 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विशेषताओं का सप्रमाण परिचय दीजिये ।

७. 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द की चरित्र-चित्रण-कला को सप्रमाण स्पष्ट कीजिये तथा उसकी महत्वपूर्ण विशेषताओं का निर्धारण भी कीजिये ।

८. 'गोदान' की पात्र-योजना का युक्तियुक्त विवेचन कीजिये ।

९. चरित्र-शिल्प का आशय स्पष्ट करते हुए 'गोदान' की समीक्षा कीजिये ।

१०. "प्रेमचन्द जी चरित्र-चित्रण में उस्ताद थे ।" प्रस्तुत कथन की सार्थकता 'गोदान' के आधार पर सिद्ध कीजिये ।

११. "मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है"—प्रेमचन्द के प्रस्तुत कथन के परिप्रेक्ष्य में बताइये कि 'गोदान' में उन्होंने इस मूल तत्व का निर्वाह किस रूप-मात्रा में किया है तथा उसमें उनको कहाँ तक सफलता मिली है ?

१२. "गोदान चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त सबल है"—सिद्ध कीजिये ।

———

होरी का परिचय :

स्वतन्त्रता-पूर्व का अवध प्रान्त और इसी का एक सामान्य, उपेक्षित और साधारण सा गाँव-बेलारी। इसी का सामान्य सा निवासी है—होरीराम महतो जो प्राय: अपनी विपन्नावस्था के कारण 'होरी' के नाम से पुकारा जाता है। यूँ, कभी अतीत में उसने मटरगश्ती भी की थी और आराम से पसर कर 'सोने' का सुख भी भोगा था, नयी-ब्याहता पत्नी से हँसी-ठट्टा किया था और उसके पीछे-पीछे मनुहार करते हुए ससुराल भी जा पहुँचता था किन्तु 'मात्र पाँच बीघे की खेती', सम्मिलित और बाद में अपने ही अपेक्षाकृत बड़े परिवार की जिम्मेदारियों तथा उससे भी कहीं अधिक चहुँदिशी के निरन्तर के शोषण-उत्पीड़न ने 'चालीसे' तक पहुँचते-पहुँचते ही उसकी स्थिति यह कर दी थी कि "गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे" वाले होरी को लगने लगा था कि "साठ तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी, ...इससे पहले ही चल देंगे।" यूँ, वह "दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई" देखकर "उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल" मानता है किन्तु निरन्तर का शोषण, रोज का उत्पीड़न और सुरसा की भाँति मुँह फाड़कर आती हुई समस्याओं-परिस्थितियों से घिरा फँसा, "तार-तार कम्बल, फटी हुई मिर्जई और गीली पुआल के बिस्तर" की जमा-पूँजी का उपयोग करते-करते तिल-तिल कर 'मरता' रहता है और अन्ततः एक दिन शोषणजन्य निर्धनता में, लू लगने मात्र से, चिकित्सा के अभाव में दम तोड़ देता है— एक मात्र गाय की लालसा को मन में ही संजोये हुए।

'गोदान' में चित्रित अपनी इस जीवन-कथा में होरी मुख्यत. **'अर्थ' और 'धर्म' के द्वन्द्व का माध्यम** है जिसमें 'धर्म' तो परास्त नहीं होता किन्तु 'अर्थ' दारिद्रय बनकर उसे निगल लेता है, लाख चेष्टाओं के बावजूद भी होरी उससे बच नहीं पाता।

होरी का चरित्रांकन :

एक व्यक्ति के रूप में, होरी **किसान** है (और बाद में उसी का समवर्गीय मजदूर)। किसान की सारी अच्छाई-बुराई उसकी नस-नस में व्याप्त है। "हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में **भी गऊ की लालसा** चिरकाल से सचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी।" यूँ, वह अपने को इतने पर ही सौभाग्यशाली या भाग्यवान मानता है कि "..... खेतों में

काम करने वाले किसान उसे देख-देखकर राम-रामकरते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे ......सब उनका आदर करते हैं ......यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।[2]"

सामान्यतः, वह एक निर्धन किसान है और उसकी सीमाओं को जानता-समझता है। उसे अपने अधिकारों की नहीं, **कर्त्तव्यपालन** की ही चिंता रहती है और इसी में अंत तक वह खटता रहता है—एक असामी, एक पति, एक भाई, एक पिता, एक श्वसुर के रूप में। "होरी का अपना मनोवैज्ञानिक स्तर है, उसके कार्य करने की विशिष्ट प्रणाली है, उसकी प्रतिक्रियाएँ भी 'टिपिकल' हैं जो केवल होरी जैसे व्यक्ति में ही सम्भव है।"[1] एक सामान्य किसान की तरह, असामी होने और अपनी गर्दन फँसी होने के कारण रायसाहब की जी-हजूरी करना, शगुन देने के आदेश को सिर झुकाकर स्वीकार करना, धनुष-लीला में माली का काम पाकर ही अपने आप को धन्य और बड़ा महत्वपूर्ण मान बैठना आदि ही या पंचों द्वारा निर्धारित किये गये डांड-दण्ड को, तन-पेट काट कर भी भरना, हुक्का-पानी बन्द और बिरादरी-बाहर किये जाने की आशंका मात्र पर भयभीत हो जाना, दरोगा जी को बतौर रिश्वत छिपाकर रुपये देना आदि काम उसके इसी सामान्य स्तर के परिचायक हैं। इसी प्रकार 'गाय' के आने की संभावना मात्र पर 'गोबर को दूध मिलेगा' से लेकर 'द्वार की शोभा बढ़ेगी', तक की कल्पनाएँ करना, धनिया की पूर्व स्थिति को याद करके उसके प्रति दयार्द्र हो उठना, भाई हीरा का एकदम नाजायज पक्ष लेते हुए झूठा ब्यान देना, हीरा के पलायन करने के उपरान्त उसकी पत्नी पुनिया की पूरी-पूरी सहायता करना, निराश्रिता झुनिया को आश्रय देना तथा सोना-रूपा के विवाह की निरन्तर चिंता करते हुए जैसे-तैसे इस कर्त्तव्य को भी सम्पन्न करना आदि उसके सभी कार्य उसकी कर्त्तव्यशीलता के ही साक्षी हैं।

होरी **धर्म-भीरू और धर्म-सहिष्णु** है। अपनी वर्तमान विपन्नावस्था को पूर्व जन्म का परिणाम मानना, 'रायसाहब को मालिक' और 'राजा' मानना, घर आये भोला का सत्कार करना, हीरा-शोभा की आलोचनाओं और दुष्कर्मों को न सुन पाना, बाँस वाले से सौदा करते-करते भी भयभीत बने रहना, तथा सोना-विवाह पर 'कुश-कन्या देकर किसे मुँह दिखायेगा' की चिन्ता में ग्रस्त रहना उसके उसी भीरूपन के परिचायक हैं।

इसी धर्मभीरूता की एक गुणमयी प्रतिक्रिया है—होरी की **ईमानदारी** जो उसके शील का मूल्य-मान बनी मिलती है। भोला द्वारा बैल खोलकर ले जाने पर भी वह अपने कष्टों को तो बढ़ा लेता है किन्तु झुनिया को नहीं निकालता। इसी प्रकार क्रोधित हीरा द्वारा 'पिता के रुपये दबाये जाने की बात' उसके अन्तःस्तल को चीर जाती है और वह उल्टे धनिया पर ही बरस पड़ता है।

---

१. श्री कोमल कोठारी : प्रेमचन्द के पात्र : पृ० १६४

होरी अति का सहनशील है—सच में तो कायरता की सीमा तक। गाँव का समस्त शोषक वर्ग-दातादीन, परमेसरी, भोला, सहुआइन आदि–की ही नहीं, स्वयं के भाइयों तथा पत्नी-पुत्र के वाक्‌वाणों को भी वह चुपचाप झेल लेता है। कभी असह्य बातों पर क्रोध भी करता तो "झुंझलाहट हुई, क्रोध आया; खून खौला, आँख जली, दाँत पीसे, लेकिन बोला नहीं।" हाँ, धनिया से वह मार-पीट अवश्य करता है किन्तु आवेश समाप्त होते ही पश्चाताप करता है या सामान्य-दब्बू बनकर झेंप भरी हँसी-मजाक करने लगता है।

होरी में सामान्य किसान की कुछ दुर्बलताएँ भी हैं यथा उधार को मुफ्त का माल समझना, ऋण चुकाने के अवसर पर झूठ बोल देना, निर्लज्ज बनकर सब-कुछ अत्याचार सहते रहना, स्वार्थ-सिद्ध करना, संस्कारों में गिरे-फँसे रहकर 'गाड़ी धकेलते' रहना तथा व्यवहार कुशलता के नाम पर 'जैसे भी हो' काम-निकालना आदि। गहराई से देखें ये सभी दुर्बलताएँ या तो उसकी गरीबी की देन (स्वाभाविक प्रतिक्रियाएँ) हैं या फिर उसका निरन्तर उत्पीड़ित-शोषित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला आशंकाजन्य भय का परिणाम। वस्तुतः "ये सारी दुर्बलताएँ एक भारतीय किसान की दुर्बलताएँ हैं।" धनिया को कभी-कभी पीट देना, परिस्थिति-वश चालाकी से काम लेना गाय प्राप्त करने के लालच में भोला का झूठा आतिथ्य करना, उसके लिये रिश्ता ढूंढने का झूठा आश्वासन देना, धनिया से भोला की झूठी प्रशंसा करना, भाई के हिस्से के बाँस बेचकर पैसे बचाना, सन गीला करना आदि उसके कार्य इसी श्रेणी में आते हैं।

वस्तुतः, "होरी भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र" अथवा "एक जाति पात्र यानि टिपिकल चरित्र है। जाति-पात्र वह होता है जो अपनी जाति की सभी विशेषताओं, सभी स्थितियों व अवस्थाओं, समस्याओं व कठिनाइयों, परम्पराओं व संस्कारों, रीति-रिवाजों और सुविधाओं का प्रतिनिधित्व करे।"[1] कहना न होगा कि 'गोदान' में होरी की यही स्थिति है, वह आद्योपान्त यही करता है। कहा तो यहाँ तक गया है कि "गोदान होरी के भगीरथ परिश्रम की गाथा है"[2] तथा "होरी के चरित्र में भारतीय कृषक जीवन का मूक इतिहास है।"[3]

दूसरी ओर, होरी, वर्ग-प्रतिनिधि होने के साथ-साथ, अनेक वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त होकर स्वतन्त्रत व्यक्तित्व का अधिकारी भी है। उसका अति का भ्रातृ-प्रेम, सन्तान-प्रेम, पत्नी धनिया के प्रति व्यवहार, पगे-पगे करुणाजन्य दुरावस्था और उसका डटकर सामना करता हुआ (विरोध करता हुआ नहीं) उसका अदम्य साहस सटीक, हलकी-फुलकी हास्यवृत्ति तथा भावुकता और एकदम मर्म-

१. वही : पृ० १९५
२. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द उनका युग : पृ० १३१
३. कोमल कोठारी : प्रेमचन्द के पात्र : पृ० १९७

स्पर्शी पश्चाताप आदि इसी के प्रमाण हैं। कुछ सटीक और मर्मस्पर्शी स्थल देखिये—

(i) "बेटा, लड़ाई झगड़ा तो जिन्दगी का धरम है। इससे जो अपने हैं, वह पराये थोड़े ही हो जाते हैं। जब घर में चार आदमी रहते हैं, तभी लड़ाई-झगड़े होते हैं। जिसके कोई है ही नहीं, उससे कौन लड़ाई करेगा ?'

(ii) होरी ने रुपये लिये तो उनका हाथ काँप रहा था।...आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि .. वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है—भाइयों ! मैं दया का पात्र हूँ। मैंने नहीं जाना कि जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीर कर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है—कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ.. और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम।"

(iii) "उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे कि मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।"

वास्तव मे, अपने कृषक और व्यक्ति दोनों ही रूपों में होरी अत्यन्त सजीव और यथार्थ पात्र है। विभिन्न तत्वों से निर्मित "कभी उसका व्यक्तित्व समाज के नियमों से विद्रोह करता है, कभी संस्कारों में उलझ जाता है तो कभी वर्ग के निर्मम शोषण के कारण वह परिस्थिति की आँधी में उड़ सा जाता है, लेकिन होरी के चरित्र की एक महानता उससे कभी नहीं छूटती कि वह मनुष्य है।"[1] निःसन्देह होरी आले में रखी धार्मिक सामग्री नहीं और न लेखक की हवाई कल्पना है, वह न तो कोरा व्यक्ति है, न कोरा आरोपित वर्ग-प्रतिनिधि। वह किसी भी देश के आम मानव-समाज का, किसी भी देश काल की आम जनता का, किसी भी परिस्थिति में जूझने वाले, शिकार होने वाले आम आदमी का प्रतिरूप है जिसको लेखक ने पूरी-पूरी करूणा देकर, अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति देकर प्रस्तुत किया है। 'गोदान' से वह इतना अभिन्न है कि 'गोदान होरी की जीवनी अधिक बन गया है, उपन्यास कम। यूँ, "होरी एक साधारण व्यक्ति है और अपना नेतृत्व स्वयं करता है। उसकी हार में भी विजय का उल्लास है। जीवन-मार्ग पर वह स्वयं अप्रतिहत गति से चलता रहता है।"[2]–एकदम रवीन्द्र ठाकुर के 'एकला चलो रे के नायक की भाँति।'

एक बात और। कुछ आलोचकों ने ही नहीं, स्वयं प्रेमचन्द के सुपुत्र श्री अमृतराय एवं अर्धांगिनी श्रीमती शिवरानी देवी तक ने 'होरी को प्रेमचन्द का निजी-आत्मीय स्वरूप' बताया है। दोनों की विपन्नावस्था, कुछेक चारित्रिक विशेषतायें (यथा पति-पत्नी की नोक-झोंक, सरलता, सादगी, निश्छलता, अर्थ-संकट तथा

---

१. कोमल कोठारी : प्रेमचन्द के पात्र : पृ० १९१

२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ

पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा विघटन आदि) तथा क्रिया-कलापादि को इसकी पुष्टि हेतु प्रमाणार्थ बताया भी गया है। होरी का चरित्र भी निःसन्देह प्रेमचन्द की ही रचना है जिसमें जाने-अनजाने कई साम्य आने स्वाभाविक ही हैं। फिर भी, यदि गहराई से देखें तो होरी का सामाजिक धरातल, कृषक-वर्ग का प्रतिनिधित्व, आजीवन का शोषित रूप तथा व्यापक सन्दर्भों में व्यवस्था का शिकार एवं अति की कायरता-सहनशीलता आदि उसको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान कर देती हैं। दूसरे, होरी में प्रेमचन्द की न तो वैचारिकता है, न कर्म-सम्पन्नता (निःसन्देह प्रथम पक्ष का प्रतिनिधित्व प्रो० मेहता डटकर करते हुए मिलते हैं। फलतः "गोदान के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता है।"[1] अधिक से अधिक वह प्रेमचन्द के कुछ अंशों का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।

वस्तुतः होरी मुख्यतः "भारतीय किसान की समष्टि आत्मा का प्रतीक है।"[2] गहराई से देखें तो 'गोदान' अपनी समकालीन सामन्तवादी व्यवस्था और उसके सामाजिक आर्थिक और धार्मिक शोषकपरक रूप पर लेखक द्वारा किया गया नगा व्यंग-शब्दचित्र है जिसका मूल माध्यम है--- ग्राम्यपक्षीय कथा। निःसन्देह, इस कथा का प्रधान पात्र है—होरी जो, शास्त्रीय परम्परागत गुणों न तो नायक नहीं, किन्तु 'नायक' शब्द के व्युत्पत्तिक अर्थ में नायक अवश्य है। पाश्चात्य विधान की दृष्टि से देखें तो 'गोदान' Hero verses society श्रेणी की दुखान्तकी Tregedy) है और इसका शिकार बना पात्र (अर्थात् नायक) है—होरी जिसका "अन्त सकरूण अवश्य है लेकिन करूणोदात्त नायक के औदात्य को वह अपने व्यक्तित्व में आत्मसात नहीं कर सकता है।"[3] फिर भी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि "प्रेमचन्द के जीवन की (और साथ ही साथ भारतीय जन-जीवन की भी) सारी करूणा होरी के चरित्र में साकार हो उठी है। सादा-सदासे, आँसूओं में जीवन बिताने वाली भारत की किसान प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में होरी प्रेमचन्द की अमर सृष्टि है।" निष्कर्षस्वरूप कह सकते हैं कि "हिन्दी उपन्यास साहित्य में होरी जैसे नायक का निर्माण न पूर्ववर्ती उपन्यासकार कर सके, न परवर्ती। अभी बीसवीं शती का सर्वश्रेष्ठ नायक यही होरी है।"[4]

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' के आधार पर होरी का चरित्र-चित्रण कीजिए तथा उपन्यास में उसका स्थान निर्धारित कीजिए।

---

१. डॉ॰ रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग : पृ० १२९
२. रामकृष्णन मिश्र : गोदान-सौंदर्य और समीक्षा : पृ० ११३
३. वही : पृ० १२४
४. कोमल कोठारी : प्रेमचन्द के पात्र : पृ० १९०

२. होरी का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसकी चारित्रिक विशेषताओं को सप्रमाण उद्घाटित कीजिए।

३. क्या 'गोदान' उपन्यास है या होरी की जीवनी ? तर्कपूर्ण स्पष्ट उत्तर दीजिए तथा होरी का चरित्रगत विशिष्टत्व भी प्रतिपादित कीजिए।

४. "होरी भारतीय कृषकों का प्रतिनिधि चरित्र है" सिद्ध कीजिए।

५. "गोदान होरी के भागीरथ परिश्रम की गाथा है।" होरी-चरित्र के आधार पर प्रस्तुत कथन की पुष्टि कीजिये।

६. "होरी के चरित्र में भारतीय कृषक जीवन का मूल इतिहास है।" गोदान के आधार पर इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

७. क्या होरी प्रेमचन्द का प्रतिरूप है ? अपने मत-समर्थन में उपयुक्त प्रमाण देते हुए तर्कसम्मत उत्तर दीजिए।

८. होरी के चरित्राधार पर सिद्ध कीजिए कि वह "भारतीय किसान की समष्टि आत्मा का प्रतीक है।"

९. होरी के चरित्र का विश्लेषणात्मक परिचय देते हुए उसके नायकत्व का परीक्षण कीजिए।

१०. "होरी प्रेमचन्द की अमर सृष्टि है" गोदान के आधार पर सिद्ध कीजिए।

९ धनिया का चरित्रांकन

छत्तीसवें साल में ही पके हुए केश, झुर्रियों से भर जाने वाला मुख, ढलती हुई देह, सुन्दर गेहुँआ किन्तु साँवला पड़ गया रंग तथा कम सुझायी देने वाली नेत्र-ज्योति—यह है एक सच्चा शब्द-चित्र, गोदान के उस नारी-पात्र का जो अपनी विपन्नता, असहायता और व्यवस्था की शिकार बनी अवस्था में भी सर्वाधिक सबल, सर्वाधिक मुखर और सर्वाधिक सहानुभूति की पात्र है। यह है—धनिया, (ग्राम्य कथा के नायक) होरी की पत्नी जिसकी चिरस्थायी जीर्णावस्था ने आत्मसम्मान को उदासीनता का और निरन्तर के उत्पीड़न ने मन और जुबान को विद्रोह से भरे हुए होने का रूप दे दिया है।

होरी की पत्नी धनिया, निम्नवर्गीय नारी होने पर भी, पतिव्रता है—पगे-पगे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप-व्रत से अपने पति को अभयदान देने वाली और विपन्नता के अथाह सागर को सुहाग-तृण के सहारे ही पार करते रहने वाली। वह पति के हर सुख-दुःख की साथी ही नहीं, कंधे से कंधे मिलाकर साथ-२ सक्रिय बनी रहने वाली, उसको पग-पग पर प्रेरित-संचालित करती रहने वाली भी है। गहराई से सोचें तो वह "होरी के अन्तर्मन की विरोध-विद्रोह भरी भावना", "होरी के मन में दबी हुई क्रांति की सजीव अभिव्यक्ति है" और "होरी के निःशेष पहलू का परिचय है।" वस्तुतः "होरी और धनिया······एक ही इकाई के दो भिन्न व्यक्ति हैं।······धनिया उस निःशेष असहयोगी भावना की प्रतीक है, जो 'होरी पन' की ओट में प्रत्येक आघात के साथ अपने को प्रबलतर बनाती रहती है।" प्रारम्भ से ही वह अपने सच्चे पातिव्रत्य का परिचय देती हुई मिलती है। अत्यन्त विपन्नावस्था में भी होरी के संयुक्त परिवार के लिये तिल-तिल समर्पण करते रहना, सोभा और हीरा जैसे देवरों और पुत्री जैसी देवरानी को पुत्र-पुत्रीवत् मानकर पालना-पोसना, स्वयं फटा-पुराना पहनकर भी देवरानी को चाँदी के आभूषण बनवाना, होरी की पग-पग पर सहायता-सेवा करना आदि ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं। इतना ही नहीं, निम्नवर्गीय और अति की विपन्न होने पर भी "कभी किसी ने उसे किसी की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़छाड़ की थी। उसका ऐसा मुँह तोड़ जवाब दिया कि आज तक नहीं भूले।" स्वयं होरी तक के मुख से वह ऐसी असंगत बात सुनने को तैयार नहीं "कुराह चले तुम्हारी बहन, मैं क्यों कुराह चलने लगी?" वह तो स्पष्टतः यही मानती है—"सुख लिया है तो उसी के साथ, दुःख

भोगा है तो उसी के साथ। अब तो चाहे अच्छा है या बुरा, अपना है।" होरी का मृत्यु-दृश्य तो इसी की एकदम मर्मस्पर्शी और अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति है।

एक माँ के रूप में भी धनिया में मातृत्व भाव कूट-कूट कर भरा है—जिसकी अभिव्यक्ति देवर-देवरानी से लेकर पुत्र-पुत्रियों और फिर पोते (गोबर के पुत्र) तक के प्रति हुई मिलती है। इसका सबलतम प्रमाण है—गर्भवती, घर आयी झुनिया के प्रति दिखाया गया व्यवहार—"तू चल, घर में बैठ, मैं देख लूँगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेंगे, अपने गहने ले लेंगे फेंक देना उतार कर।" यहीं से, वह दातादीन से लेकर पंचायत और हुक्का-पानी बन्द करने से लेकर डाँड भरने के दंड तक का खुला विरोध ही नहीं करती, सबके प्रति विद्रोह तक भी करती है किन्तु झुनिया की पूरी-२ सहायता करती है—"धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी दोनों लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी, जिससे सारा गाँव सुन ले। आज यह पहला मौका था कि ऐसे शुभ अवसर पर बिरादरी की कोई औरत न थी। ......लेकिन धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।" इसी मातृत्व से भरा धनिया का एक रूप देखिए—'बच्चे की माँ तो झुनिया थी पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता था।...उसका सूना खटोला देखकर वह रो उठती। ... गोबर के लिये अब भी उसके मन में वही ममता थी।"

धनिया अति की साहसी, निर्भीक और निडर स्त्री है। "वह जिस बात को ठीक समझ ले, फिर समाज, बिरादरी, नियम, कानून, किसी बात की परवाह नहीं करती, उसे कर डालती है।.. अपने अदम्य साहस और कर्मशीलता के कारण वह कई बार गाँव भर का नेतृत्व करती हुई दीख पड़ती है।" हीरा-पुनिया का विरोध हो या स्वयं होरी का झुनिया के प्रश्न पर जात-बिरादरी हो या पंच-परमेश्वर, पुलिस-दरोगा हो या शोषक दातादीन और जमीदार, वह सभी के प्रति निडर है, सबकी कलई खोलकर अपनी निडरता-निर्भीकता का परिचय देती है और आद्योपांत कष्ट पर कष्ट सह-सहकर भी अपने साहस को बनाये रखती है।

धनिया की यही निर्भीकता और साहस अभिव्यक्ति पाते हैं—उसकी स्पष्ट-वादिता के गुण से। धनिया लगा-लिपटी की, दिखावे-व्यवहार की, स्वार्थ-मोह की बात नहीं करती वरन् दो टूक बात कहती है—चाहे क्रोध की उत्तेजना में कहे या सामान्य व्यवहार में। प्रमाणस्वरूप, उसके भिन्न परिस्थितियों के कहे गये दो कथन देखिये—

(i) "तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूँछती।... उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये।... तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जायेगी।"

(ii) "मैं एक दाना न अनाज दूँगी, न कौड़ी डांड। जिसमें बूता हो, चल कर मुझसे ले।......हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुति न हो जायेगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।"

धनिया के चरित्र का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है—उसका **अति का तेज और स्वाभिमान**। हीरा द्वारा रुपया दबाये जाने का आरोप उसको सीधे-सीधे अपनी चारित्रिक पवित्रता पर चोट लगता है और वह बिफर उठती है—"मैं अभी जाकर पूँछती हूँ न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये......और अब हम बेईमान है......।" झुनिया को शरण दिये जाने पर दातादीन और भोला, डांड लगाये जाने पर पंच, शहर चले जाने पर झुनिया और गोबर यहाँ तक कि अति की अपनी नम्रता और भाई (हीरा) का पक्ष लेने पर स्वयं पति परमेश्वर होरी भी उसके तेज-स्वाभिमान पर चोट करके या उसकी भ्रांति मात्र उत्पन्न करके धनिया के विष भरे वाक्वाणों के शिकार बनते हैं। इसी भाँति होरी द्वारा रायसाहब के यहाँ जाने और तलुए सहलाने को वह सर्वथा अनुचित मानती ही नहीं, उसका विरोध भी करती है—"...जब हमने जमींदार के खेत जोते हैं तो वह लगान ही लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलुवे क्यों सहलायें?" इस प्रकार, वस्तुतः "धनिया के (इस) विद्रोह में समस्त किसानों का (अन्तर्मन में छिपा और चिरकांक्षित) विद्रोह मूर्तिमन्त हो उठा है। धनिया का यह विद्रोह अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता की फूटती हुई चिंगारी के रूप में पूरे गाँव का विद्रोह है।" निःसंदेह, धनिया "अन्याय के विरुद्ध पाठक और लेखक की भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है।"

धनिया अति की **क्रोधी है**—एकदम खून-खराबा करने को उतारू, छाती ठोक कर मरने-मारने को तैयार, गाली-गलौच करने में माहिर और बदजुबान या जबानदराजी करने वाली। ग्राम्य-कथा के प्रायः सभी प्रमुख पात्र, कभी न कभी उसके क्रोध के शिकार बनते हैं—हीरा, पुनिया, चौधरी, दातादीन, भोला, झुनिया और गोबर ही नहीं, स्वयं होरी तक और निःसन्देह कोई भी उसके (सत्याधारित) क्रोध का सामना नहीं कर पाता। 'होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी' मगर धनिया "बिगड़ती है तो चण्डी हो जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं।" अकेले हीरा से विरोध होते-२ वह "चौमुखी लड़ाई लड़ने के लिये तैयार हो जाती है, होरी को बुरा-भला तो कहती ही है, गोबर तक को लड़ाई में शामिल करने का आह्वान कर बैठती है—"कहाँ है गोबर? अब किस दिन काम आयेगा? तू देख रहा है, बेटा, तेरी माँ को जूते मारे जा रहे हैं।" और तुरन्त ही "......सहसा धनिया ने सिंहनी की भाँति झपट कर हीरा को इतने जोर का धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और वह बोली—'कहाँ जाता है, जूते मार, मार जूते, देखूँ तेरी मरदूमी।" इसी प्रकार, होरी द्वारा पीटे जाने पर भी वह तुर्की-ब-तुर्की उससे भिड़

जाती है—"होरी धनिया को मार रहा था, धनिया उसे गाली दे रही थी······ ···घर में आग लगा दूँगी, सारी गृहस्थी में आग लगा दूँगी······तू अपने बाप का बेटा होगा तो आज मुझे मार कर तब पानी पिएगा। "पापी कहीं का, हत्यारा।" अपने इसी क्रोध के कारण धनियां दरोगा के शब्दों में 'दिलेर' बनती है तो पटेश्वरी के शब्दों में 'कर्कशा।' वस्तुतः "धनिया······दुर्गा रूप में हमारे मन में जहाँ संभ्रम जगाती है, वही दूसरी ओर अपनी जीवन की दुःखपूर्ण परिस्थितियों के कारण करुणा भी, यद्यपि सम्पूर्ण प्रसंग पर धनिया का दुर्गा रूप ही छाया हुआ है।" वास्तव में, धनिया का सारा क्रोध, सारा आक्रोश, सारी खीज और सारा विद्रोह उसकी परिस्थितियों की देन है—दुर्बल मानव-मन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया। "धनिया सामाजिक रूढ़ियों की दलदल से उभरता हुआ एक विवश विद्रोह नारी-पात्र है, दैन्य उसकी नियति है और विवशता उसकी मजबूरी।"

धनिया में नारी-विशेषतः सामान्य ग्राम्य नारी-की कुछ अन्य चारित्रिक दुर्बलताएँ हैं यथा सास रूप में झुनिया के प्रति ईर्ष्या भाव, जिठानी के रूप में पुनिया से आदर कराने की कामना, स्व-प्रशंसा सुनते ही (भोला की) सहायता करने को तत्पर हो जाना, आदि।

होरी के शब्दों में, धनिया "सीधी, गमखोर तथा निश्छल" है तथा साथ ही साथ वह "सेवा और त्याग की देवी, जबान की तेज पर मोम जैसा हृदय, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार" रहने वाली नारी है। अपनी जवानी में 'रूपवती' और 'रानी सी लगने वाली' धनिया को वास्तव में उसकी निरीहता भरी परिस्थितियों ने ही 'अखरोट या 'बादाम' बना दिया था—ऊपर से अत्यन्त कठोर किन्तु अन्तर से एकदम मुलायम-कोमल और रस भरी। अन्ततः उसके चरित्र में "कोमलता और परुषता का अद्‌भुत संमिश्रण" हो जाता है। यही उसको "यथार्थता" प्रदान करता है।" धनिया आले में रखा देवी पात्र नहीं है। वह यथार्थ के धरातल पर, जीवन के कठोर संघर्षों में झूलने वाला (और उनसे जूझने वाला) मानवीय पात्र है।" उसके "व्यक्तित्व का निर्माण परम्परा-भजक अणुओं से हुआ है।" कामायनी की श्रद्धा की भाँति वह निराशा-हताशा भरे होरी का साथ पगे-पगे देती है, शोषित और उपेक्षित का पक्ष-समर्थन करती है और स्वयं तिल-तिल मिटते हुये अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व से पाठक-मन को वाणी देती है और समग्रतः अपने धन्या धनिया) नाम को सार्थक करती है।

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' के आधार पर धनिया का चरित्र-चित्रण करते हुए उसकी चारित्रिक विशेषताओं को सप्रमाण उद्‌घाटित कीजिए।

२. "धनिया होरी के निःशेष पहलू का परिचय है।" धनिया के चरित्रांकन के आधार पर प्रस्तुत कथन की समीक्षा कीजिये।

३. "धनिया अन्याय के विरुद्ध पाठक और खक की भावनाओं को व्यक्त करने का एक माध्यम है।" प्रस्तुत कथन की सार्थकता को स्पष्ट कीजिए।

४. 'धनिया सामाजिक रूढ़ियों की दलदल से उभरता हुआ एक विवश पर विद्रोही नारी-पात्र है।" सिद्ध कीजिये।

५. धनिया का परिचय दीजिए और उसकी चारित्रिक विशेषताओं (गुण-दोषों) का सम्यक् मूल्यांकन कीजिये।

६. "धनिया 'गोदान' का एक सशक्त और महत्वपूर्ण नारी-चरित्र है जिसमें अपने वर्ग की अच्छाई या बुराइयाँ बड़े स्वाभाविक रूप में मिलती हैं।" सिद्ध कीजिये।

७. धनिया का चरित्रांकन करते हुए उसके महत्व का प्रतिपादन कीजिये।

———

मनुष्य की आर्थिक सामाजिक स्थिति का सर्वाधिक असर उसके नाम पर होता है'' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला, पूरा नाम गोबरधन महतो होने पर भी मात्र 'गोबर' नाम से पुकारा-जाना जाने वाला, १६ वर्षीय साँवला, लम्बा-इकहरे बदन का गोबर, होरी-धनिया का इकलौता नवयुवा पुत्र है—गरीब किसान-परिवार का होने से एकदम अनपढ़ किन्तु "प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह" का भाव लिये हुए जेठ की भयंकर लू-गर्मी में अनथक कार्य करने वाला। अपनी इस प्रथम झलक में गोबर कुछ खास प्रभाव नहीं छोड़ता, सिवाय इनके कि वह एक निम्नवर्गीय, निर्धन और कृषक परिवार का सामान्य सा युवा है।

शीघ्र ही उसका उजड्ड जबान का दबंगपन और विद्रोह भरा आक्रोशी रूप प्रकट होने लगता है—पिता होरी की विवशता भरी जी-हजूरी और जमींदार अमरपालसिंह की कथनी-करनी के वैपरीत्य पर व्यंग्य करने में—"यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेकार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।" बाद में भी, अंटी में दो सौ रुपये की गर्मी आते ही वह गाँव वालों पर फट पड़ता है—"उनकी यह मजाल कि मेरे द्वार पर से बैल खोल ले जाये। वह डाका है, खुला हुआ डाका। सारा घमंड तोड़ दूँगा।" उसका यही विद्रोहात्मक आक्रोश स्पष्टवादिता की ही नहीं बदतमीजी तक की सीमा को छूता सा प्रतीत होता है जबकि वह अपने ही पिता होरी से कहता है—"तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है", रायसाहब के लिये वह स्पष्ट घोषणा करता है—"यह सब धूर्त्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है," दातादीन पर करारा वाक्-वाण छोड़ता है—"···जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो···इतनी कमाई से पेट नहीं भरता ?" यहाँ तक कि आवेश में तो वह धनियाँ को माँ ही मानने से इनकार कर देता है। वस्तुतः "वह गाँव के अन्धविश्वासी और रूढ़िग्रस्त जीवन में फूटने वाला नया स्वर है। अधिकारों के प्रति जागरुक और अत्याचार के प्रति असहिष्णु युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है, अपने नाम के विपरीत गुण और स्वभाव धारण करने वाला

"...जो होरी की तरह: जमींदार की इच्छा-पूर्ति के लिये ईंधन बनने को तैयार नहीं।"[1]

मगर, दूसरी ओर वह सक्रिय नहीं है क्योंकि उसमें बाधाओं का सामना करने की न अक्ल है, न क्षमता। वह तो वाचाल मात्र बन कर ही मानो विरोध-कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठता है। दूसरे शब्दों में, वह कायर है—मात्र मन ही मन या जबानी जमा-खर्च करने में माहिर और अवसर करने पर एकदम भीरू और पलायन करने वाला। वह पहली ही भेंट में झुनिया के हत्थे चढ़ जाता है, प्रथम प्रेमालाप में ही न जाने कैसे-कैसे ढेर सारे वायदे कर लेता है और गर्भवती झुनिया को अपने घर लाते-लाते ही भयवश पीछे रह जाता है, छिपकर माता-पिता की प्रतिक्रियाये देखता है और उनके द्वारा झुनिया को शरण दिये जाते देख तुरन्त गाँव छोड़कर भाग खड़ा होता है।

एक पुत्र के रूप में उसमें अपने माता-पिता के प्रति आदर और बहिनों के प्रति प्यार है। पिता द्वारा माता को पिटते देख उसमें उग्रता तो आती है किन्तु वह कहता यही है—'अच्छा दादा, बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूँ, मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊंगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।" इस प्रकार झुनिया को शरण दिये जाते देख वह माता-पिता के प्रति मन ही मन श्रद्धावनर हो जाता है, तो शहर से घर लौटने पर वह पिता के लिये धोती-चादर, माँ-बहिनों और झुनिया के लिये एक-एक जोड़ी साड़ी, सोना के लिये तेल की शीशी, चप्पल, रूपा के लिये जापानी चूड़ियाँ और झुनिया के लिये पिटारी आदि नाना चीजे ले जाता है।

शहर में आते आते वह चतुर और व्यवहार कुशल बन जाता है पैसे की कद्र समझता जाता है और अपनी उन्नति के लिये जोड़ तोड़, जीह-जूरी से लेकर नेतागिरी तक सीख जाता है। गाय के मूल्य पर होरी को दी गई सलाह, मित्रों की सहायता से शहर में पैर जमाना, तथा खन्ना-मिल की हड़ताल में भाग लेना इसी के कुछ प्रमाण हैं। गाँव पहुँचने पर तो वह अपने वाक्-कौशल से खार खाये बैठे भोला तक को पटाने में सफल हो जाता है। यहाँ तक कि "संध्या के लिये गोबर यहाँ से चला तो गोई उसके साथ थी और दही की दो हाँडियाँ लिये जंगी पीछे-पीछे आ रहा था।"

शहरी गोबर एकदम काइयां है। प्रमाण ? अपने आश्रयदाता मिर्जा को भी वह अपने रुपये नहीं देता किन्तु आजीवन ब्याज को बुरा मानते हुए उसके कष्ट-प्रद साये में पला-बड़ा होने वाला गोबर, उन रुपयों को ब्याज पर तुरन्त उठा देता है। इस समय तक वह पैसे का महत्व समझता ही नहीं, समझने वाला भी बन चुका है। धनिया से वह स्पष्टत: कहता है—"मेरा व्याह क्यों नहीं हुआ ? बोलो। इसलिये कि घर में रोटी न थी। रुपये हों तो न हुक्के पानी का काम है, न जात-

१. श्री त्रिलोकी नाथ खन्ना : गोदान—एक नव्य परिबोध : पृ० २०

बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।" वह शहर जाने का भी मूलोद्देश्य यहीं मानता है—"वह सवा सौ की थैली लेकर घर आये तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुँह खोल सके। यही दातादीन और यही पटेसरी आकर उसकी हाँ में हाँ मिलायेंगे।"

इसी पैसे की गर्मी से गोबर कुछ **अवगुणों** को भी पाल लेता है। मदिरा-पान, झुनिया को अय्याशी का साधन मान लेना और आये दिन उस पर हाथ छोड़ना तथा पड़ोसी के झगड़ों में खामखाह पड़ना उसके लिये सामान्य दिनचर्या सी बन जाती है। वास्तव में तो, केवल एक साल में ही, वह सीधा-सादा ग्रामीण युवक नहीं रहता। स्वयं लेखक के अनुसार, "मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दाँत से पकड़ता है स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गई है।" यही हवा गाँव में होली के हुडदग और अपने थोथे आत्मप्रदर्शन में प्रदर्शित करता है।

'गोदान' में गोबर के वस्तुतः **तीन रूप** हैं—पुत्र, प्रेमी और पति। तीनों ही रूपों में वह विकासोन्मुख या कहिये परिवर्तनशील चरित्र की झलक प्रस्तुत करता है। यह परिवर्तन ही उसको यथार्थपरक रूप प्रदान करता है। पुत्र रूप में उद्धत-उद्दंड और व्यवस्था-विरोध, प्रेमी रूप में अबोध और कायर तथा पति-रूप में एक सामान्य ग्रामीण युवक गोबर अन्ततः आदर्शोन्मुखी बन जाता है जबकि झुनिया की अनथक सेवा देख कर वह झुनिया से क्षमा याचना करता है और मन हीमन प्रायश्चित के लिये व्याकुल ही नहीं होता, तय भी कर लेता है कि "अब उसके जीवन का रूप बिलकुल दूसरा होगा जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता।" इसी की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति वह गाँव जाकर होरी आदि के सम्मुख करता है यहाँ तक कि 'अपने शील-स्नेह से सारे गाँव को मुग्ध कर लेता है, हर घर में अपने मीठे व्यवहार की याद छोड़ता है, यहाँ तक कि भोला तो भावोद्रेक से भर कर उसके पैरों पर ही गिर पड़ते हैं।

वस्तुतः गोबर "होरी के बाद की पीढ़ी का विकासोन्मुख अंकुर है"[1] "नई पीढ़ी के असंतोष का प्रतीक।"[2] "वह नए जमाने की रोशनी देख चुका है। चाहे गाँव में खेती करे, चाहे शहर में मजदूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं है। होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिये एक चुनौती की तरह जीवित रहता है।"[3] वस्तुतः, "गोबर नई पीढ़ी का ऐसा युवक है जिस पर परम्परागत संस्कारों का प्रभाव अत्यल्प है।"[4] यूँ, उपन्यास में, गोबर एक निर्बल पात्र है—जाति-पात्र और व्यक्ति-पात्र के बीच का असंतुलित चरित्र।

१. डॉ० शैल रस्तोगी : प्रेमचन्द और उनका गोदान : पृ० ६५
२. गोपालकृष्ण कौल : हिन्दी के गौरव ग्रन्थ : पृ० ५५
३. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग : १३२
४. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान-पुनर्मूल्यांकन : पृ० २०५

न उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही ठीक तरह से उभर पाया है, और न किसान-वर्ग के महाकाव्य की कथा में सामूहिक उद्देश्य के निमित्त वह अपने अस्तित्व द्वारा कुछ विशेष योगदान ही दे सका है।'[5] उसका समस्त तथाकथित पौरुष, सारा विद्रोह, एवं आद्योपात के क्रिया-कलाप या तो मात्र लफ्फाजी हैं, प्रतिक्रियात्मक आवेश और आक्रोश की उपज या फिर पिटे हुए, हारे व्यक्ति की चीख-पुकार। एक पुत्र, प्रेमी, पति, किसी भी रूप में वह समर्थ सिद्ध नहीं होता। फलतः वह सामूहिक वर्ग की चेतना का प्रतीक नहीं, एक दुर्बल व्यक्ति मात्र हैं।''[6]

फिर भी, इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि, "गोबर के चरित्रांकन में प्रेमचन्द ने पूर्णतया स्वाभाविक और यथार्थपरक दृष्टिकोण ही अपनाया हैं।''[7] वस्तुतः, प्रेमचन्द गोबर के माध्यम से नयी पीढ़ी के आक्रोश भरे मन को, प्रतिक्रियात्मक असंतोष और व्यवस्था के शिकार, अकर्मण्य बनने को विवश हुए, युवा ग्रामीण का अंकन करते हैं जो सन् छत्तीस में ही नहीं, आज भी स्वउन्नति या रोटी-पानी के जुगाड़ के लिये नगरोन्मुखी हो रहा है। निष्कर्षतः, कह सकते हैं कि "अपने रचनाकाल की नयी पीढ़ी का तो वह प्रतिनिधि है ही,—५० वर्ष व्यतीत होने पर भी लघु किसानों की आर्थिक दुरावस्था में विशेष परिवर्तन न आने कारण वह आजकल की भी नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है।''[8]

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' के आधार पर गोबर का चरित्र-चित्रण कीजिये तथा उपन्यास मे उसका स्थान बताइये।

२. गोबर की चारित्रिक विशेषताओं का सप्रमाण परिचय दीजिये।

३. "गोबर" असहिष्णु युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि हैं" समीक्षा कीजिये।

४. "गोबर होरी के बाद की पीढ़ी का विकासोन्मुख अंकुर है।" प्रस्तुत कथन की सार्थकता स्पष्ट करो।

५. "गोबर नई पीढ़ी का ऐसा युवक है जिस पर परम्परागत संस्कारों का प्रभाव अत्यल्प है।" प्रस्तुत कथन वे सन्दर्भ में गोबर का चरित्रांकन कीजिये।

६. "गोबर 'गोदान' का एक निर्बल पात्र हैं" इस कथन के पक्ष/विपक्ष में अपना मत दीजिये।

७. "गोबर गोदान का यथार्थवादी पात्र है जिसके चरित्रांकन में प्रेमचन्द ने पूर्णतया स्वाभाविक और यथार्थपरक दृष्टिकोण अपनाया है।" सिद्ध कीजिये।

८. 'गोदान' के गोबर का चरित्र प्रस्तुत करते हुए बताइये कि वह किसानों की नई पीढ़ी का कहाँ तक प्रतिनिधित्व करता है?

———

५. तारा सापट : देखिए-प्रेमचन्द के पात्र (कोमल कोठारी) : २०४

६. वही : पृ० २०६

७. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान-पुनर्मूल्यांकन : पृ० २१०

८. वही : पृ० २१५

११ प्रो० मेहता का चरित्रांकन

भूमिका :—

श्री प्रेमचन्द ने एक स्थान[1] पर कहा है, "अँधेरी गर्म कोठरी में काम करते-करते जब हम थक जाते हैं, तब इच्छा होती है कि किसी बाग में निकलकर निर्मल, स्वच्छ वायु का आनन्द उठायें। इसी कमी को आदर्शवाद पूरा करता है। वह हमें ऐसे चरित्र से परिचित कराता है जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार-कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है·· ऐसे व्यावहारिक ज्ञानविहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनन्द होता है।····· उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद् व्यवहार और सद् विचार से पाठक को मोहित कर लें।" यही जान-मानकर प्रेमचन्द ज़ी ने अपने प्रायः हर एक उपन्यास में एक न एक पात्र इसी प्रकार का अवश्य रखा है। अपने एक पत्र में उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है—"मैंने अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है। उसमें मानवीय भावनायें और गुण भी हैं, लेकिन है वह आदर्शवादी ही।"[2] ज्ञानशंकर (प्रेमाश्रम). सूरदास (रंगभूमि), चक्रधर (कायाकल्प) तथा अमरकान्त (कर्मभूमि) ऐसे ही कुछ चरित्र हैं। इसी परम्परा का सर्वोत्कृष्ट चरित्र है—'गोदान' के प्रो० मेहता।

प्रो० मेहता का परिचय और चरित्रांकन :—

रायसाहब अमरपालसिंह के सहपाठी और अभिन्न मित्र, पेशे से विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर, फ्राँस तक से पुरस्कृत दर्शन-ग्रन्थ के लेखक, एकदम छड़े अर्थात् अविवाहित, प्रो० मेहता **भव्य व्यक्तित्व के स्वामी** हैं—अपने अन्तर्वाह्य से दर्शक को प्रथम दृष्टि में ही आकृष्ट या मोहित कर लेने वाले। दर्शक चाहे ग्रामीण जंगली कलूटी हो या मालती जैसी शहरी तितली, रायसाहब जैसा बाल-सखा हो या मि० चन्द्रप्रकाश खन्ना जैसा रसिक व्यापारी। कसरती, स्वस्थ और सुन्दर शरीर के स्वामी प्रो० मेहता ने, स्वयं लेखक के वर्णनानुसार, " ···अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी। ···उनकी मांसल और चौड़ी छाती और मछलीदार जाँघें किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अंगों की भांति उनके पुरुषार्थ का परिचय" देती थीं। इतना ही नहीं वरन् "उनके मुख पर परिश्रम की लाली के साथ तेज है" तथा

---

१. कुछ विचार : पृ० ५०-५१

२. देखिए : डा० इन्द्रनाथ मदान : प्रेमचन्द-एक विवेचन : पृ० १५१

"गोरा, चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों में चमकती हुई नीली अचकन, चूड़ीदार पायजामा, सुनहरी ऐनक, सौम्यता के देवता से लगते है"—प्रो० बी० मेहता।

प्रो० मेहता वाह्यतः विविधमुखी हैं अर्थात् विभिन्न विरोधी शौकों के आदी यानी अभ्यस्त। पुस्तक-लेखन, भाषण, अभिनय बहुरूपियापन, भाषणबाजी, तर्क-वितर्क, कुश्ती, कबड्डी, डिबेट, हाकी, ग्राम्य-संगठन, शिकार आदि से लेकर शादी के नैवैद्य की तैयारी और निःसंकोच मदिरापान तक उनके शौक और कार्यों का क्षेत्र व्याप्त है। काम करने का उन्हें नशा है। प्रमाण ? "आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वे कहीं न कहीं से समय निकाल लेते थे।"

मेहता जी मुँहफट की सीमा तक स्पष्टवादी हैं यद्यपि उनका एक-एक कथन तर्कसंगत और बुद्धिसम्मत होता है, न्याय की तराजू पर कसा-तौला गया। निःसंदेह, इसके कारण वे बक्शते किसी को नहीं, चाहे अभिन्न मित्र रायसाहब और मि० खन्ना आदि हों या फिर उनकी अति की प्रशंसिका 'तितली मालती'। इसमें भी एक विशेषता यह है कि मेहता अपनी बात को, आलोचना को, बिना किसी आवेश के, एकदम शांतिपूर्वक किन्तु सपाटबयानी के रूप में कहते हैं—अपने एक विशेष अंदाज में। निम्नलिखित प्रमाण देखिये—

(i) "अगर आपकी धारणा है कि कृषकों के साथ रियायत होनी चाहिए तो पहले आप खुद शुरू करें मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं है जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी मगर जीवन है रईसों का सा, उतना ही विलासमय उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।" (रायसाहब से)

(ii) तुम सब कुछ कर सकती हो······लेकिन प्रेम नहीं कर सकतीं।"

× × × ×

"उसका अपमान करके तुम अपना सम्मान नहीं बढ़ा सकतीं, मालती।"

(मालती से)

(iii) "आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गंदे बदबूदार बिलों में जहाँ आप एक मिनट भी रह जायें तो आपको कै हो जाये·· आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं।"

श्री त्रिलोकीनाथ खन्ना ने तो, मेहता के इस गुण में, प्रेमचन्दीय व्यक्तित्व को ही देखा है, "मेहता का स्पष्टवक्ता के रूप में बिना किसी लाग लपेट के सत्य को उजागर करने का प्रयत्न प्रेमचन्द की ही इच्छापूर्ति है और उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्बित रूप है।"[1]

---

१. गोदान—एक नव्य परिबोध : पृ० ३२

मेहता की एक चारित्रिक विशेषता है—**विनोदप्रियता** जो उनकी जिन्दादिली का खुला दस्तावेज है। उनकी यह विनोदप्रियता मदिरापान करके भी उमड़ती मिलती है और सामान्य वार्तालाप में भी पठान का अभिनय करना हो या वस्त्र उतार, केवल अंडरवियर पहन कर कबड्डी खेलना इसी के कुछ उदाहरण हैं।

निरभिमान और सेवा-परोपकार की भावना तो मेहता में कूट-२ कर भरी हुई है। मानवतावादी विचारों के मेहता सामान्यत: गंभीर प्रकृति के हैं। विश्व-विद्यालय में एक हजार मासिक वेतन (जो आज के राष्ट्रपति के वेतन के बराबर है) पाकर भी निरन्तर अर्थसंकट में फँसे रहना, यहाँ तक कि अपने फ्लैट का किराया तक न चुका पाना, एक ही अचकन में सारा जाड़ा काट लेना और सेवा को ही स्वार्थ मानते रहना यदि उनकी परोपकारी प्रकृति के कुछ प्रमाण हैं तो विश्वविख्यात स्तर का विद्वान-लेखक होने पर भी सामान्य लोगों में घुल-मिल जाना (यथा कबड्डी का खेल, कलूटी-प्रसग, गोबर के पुत्र मंगल के प्रति वात्सल्य-प्रदर्शनादि) उनके निरभिमानी रूप का। गोविन्दी-प्रसग तो इसका सर्वोत्तम और अत्यन्त मर्म-स्पर्शी प्रमाण है। वे तो यही मानते (और व्यवहार में अधिकाधिक लाते भी) हैं कि "मेरे लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है जिनमें मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूँ" इतना ही नहीं, "गुप्तदान की राशि को भेजना वे अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं मालती ने जब तीसरे महीने में तीन सा की बचत दिखायी, तब वह उससे कुछ बोले नहीं मगर उनकी दृष्टि में उसका गौरव कुछ कम अवश्य हो गया। उनकी दृष्टि में आत्म-सेवा से बड़ा कोई अन्य अपराध नहीं था।"

मेहता **बात के धनी** हैं, बात चाहे वादा निभाने की हो या किसी की सहा-यता करने की। गोविन्दी के संकेत मात्र पर मदिरा-पान का त्याग करना और खन्ना को मालती के प्रभाव से मुक्त कराने का प्रयास करना, उनकी इसी बात के साक्ष्य हैं।

मेहता उच्चकोटि के **चिन्तक और दार्शनिक** हैं—बुद्धि और विचारों से ही नहीं, मालती के शब्दों में तो, शक्ल-सूरत और व्यवहार-आदतों से भी उनका अप-रिग्रह, धन की इच्छा या परवाह न करना, आवश्यकता से अधिक आय होने पर भी असंतुलित व्यय करते रहने के कारण सदा अर्थ-संकट में फँसे रहना, पहनावे या खानपान पर पर्याप्त ध्यान न देना, अति की स्पष्टवादिता, जिन्दादिली, इन्द्रिय-निग्रह नारी के सम्मुख झेंपने की प्रवृति, अपने विषय का अगाध ज्ञानार्जन और लेखन, सामान्य से सामान्य चर्चा-व्यवहार में भी दार्शनिक लहजे और सामान्यीकरण नियम-रूप में कथ्य को प्रस्तुत करना तथा नाना प्रश्नों—सामाजिक समस्याओं पर अपनी सुनिश्चित धारणायें रखना आदि उनके इसी गुण के परिचायक हैं। मालती ने उनके विषय में एकदम सही कहा है—'सच कहती हूँ, आप सूरत से ही फिलास-फर मालूम होते हैं।" इसी संदर्भ में यह तथ्य भी द्रष्टव्य है कि "दर्शनशास्त्र प्रेमचन्द

के भी बी० ए० के विषयों में से एक था" तथा उन्हीं के पुत्र श्रीपतराय के शब्दों में, "एक भविष्य द्रष्टा होने के कारण प्रेमचन्द अपने युग से बहुत आगे बढ़ आये थे, सम्यक् वर्तमान से बहुत आगे तक देख सकते थे। अपने जीवन-काल में ही वे पुरानी मध्यवित्तीय मान्यताओं का खोखलापन समझ चुके थे और अपने को उनसे मुक्त कर चुके थे। वह तात्विक निर्भ्रान्तता, जो आज का बौद्धिक चमत्कार है, उसे वे उस समय अनुभव कर चुके थे, जब औरों के लिये उसे समझना तक दुष्कर था।"[1] द्रष्टव्य है कि प्रो० मेहता की भी यही स्थिति है और 'गोदान' में वे आद्योपान्त "प्रेमचन्द के विचारों के वाहक या मुख-पात्र हैं।"

मेहता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है—**प्रेम**। इसका एक सशक्त पक्ष है—**प्रकृति-प्रेम** जिसका निर्वाह वे अपने बंगले में देशी-विदेशी फूलों से भरे बाग से लेकर, गाँव की पिकनिक में प्रकृति-सौन्दर्य में खोकर तथा स्वयं की स्पष्ट स्वीकारोक्ति तक से करते हुए मिलते हैं—"मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ" तथा "प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझमें नया जीवन सा आ जाता है, नस-नस में स्फूर्ति छा जाती है। एक-एक पक्षी, एक-एक पशु जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानो भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो। यह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता, मालती·· जैसे अपने आप को पा जाता हूं, जैसे पक्षी अपने घोंसले में आ जाए।"

उनके इसी गुण का एक पक्ष है—**बाल-प्रेम** (वात्सल्य) जिसकी एक सशक्त झलक गोबर के पुत्र मंगल के प्रति किये गये उनके व्यवहार में मिलती है तो नारी के मातृत्व की महानता का मुख्याधार इसी को मानने में वैचारिक स्तर में यथा—

"···मेहता को भी शायद मूँछे उखड़वाने में मजा आया था, क्योंकि वह प्रायः दो-एक बार रोज उससे अपनी मूँछों की रस्साकशी करा लिया करते थे।··· (द्रष्टव्य—प्रेमचन्द जी भी मोटी-मोटी मूँछे रखा करते थे) जब से मंगल को चेचक निकल आयी थी, मेहता को भी बड़ी चिन्ता हो गयी थी। अकसर कमरे में जाकर मंगल को व्यथित आँखों से देखा करते। उसके कष्टों की कल्पना करके उनका कोमल हृदय हिल जाता था। उनकी दौड़-धूप से वह अच्छा हो जाता, तो पृथ्वी के उस छोर तक दौड़ लगाते, रुपये खर्च करने से अच्छा होता तो चाहे भीख ही माँगना पड़ता, वह उसे अच्छा करके ही रहते।" (स्वयं प्रेमचन्द को भी बच्चों से अत्यधिक प्रेम था[2]।

---

१. उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द : पृ० ३२

२. अमृतराय : वही :—"घर में, उनसे अधिक प्रेमी पति और वत्सल पिता कम ही मिलेंगे।·· वह मेरे सबसे प्यारे दोस्त थे · बाप-बेटे में इतनी सहज, गहरी मैत्री, बराबर के दोस्त जैसी, कम ही देखने में आती है। हर छोटी-बड़ी बात में यही मैत्री दिखाई देती थी।"—'मेरा बाप' निबन्ध : पृ० २५–२६.

(ii) "...यह वात्सल्य मालती को उनकी दृष्टि में न जाने कितना ऊँचा उठा देता है।"

× × × × × ×

"...मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व ससार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है।"

मेहता की यही प्रेम-भावना मुखर हुई मिलती है—**मजदूर-प्रेम** में जो निःसंदेह वैचारिक स्तर पर ही मुखर हुआ है किन्तु बड़े सबल और ओजस्वी रूपों में। राय साहब और मि० खन्ना से श्रमिक विषयक वाद-विवाद और उनमें मेहता की स्पष्टोक्तियाँ इसी की परिचायक हैं।

कभी-कभी, भावुकता के क्षणों में मेहता स्वयं भी **प्रेमी-जीव** बन जाते हैं यद्यपि उनकी प्रेम-भावना भावुकता से कम और बौद्धिकता से अधिक परिचालित रहती है। मालती के प्रति उनका समस्त व्यवहार और स्थान-स्थान पर स्पष्टतः स्वीकार भी किया गया विचार इसी की साक्षी देता है। निम्नलिखित कथन देखिए—

(i) "मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं रख सकता। मुझसे कोई स्त्री प्रेम का स्वांग नहीं कर सकती। मैं उसके अन्तःस्तल तक पहुँच जाऊँगा। फिर उससे अरुचि हो जायेगी। मेरे लिए रग-रूप और हाव-भाव और नाजो-अन्दाज का मूल्य उतना ही है, जितना होना चाहिए। मैं वह भोजन चाहता हूँ जिससे आत्मा की तृप्ति हो। उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे जरुरत नहीं।"

(ii) "प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं खूख्वार शेर है जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता।"

वास्तव में प्रो० मेहता **उच्चकोटि के बुद्धिजीवी** हैं जिनका एक सुनिश्चित, तर्क और बुद्धिसम्मत चिन्तन है और एक दृढ़-सशक्त विचार-धारा। कुछ विशेष स्थल देखिये—

(i) 'भाई, मैं प्रश्नों का कायल नहीं। मैं चाहता हूँ कि हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो।"

(ii) "...हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूँ।"

(iii) मैं समझता हूँ, मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बन्द कर देता है।"

(iv) "विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न तो पुरुष को है, और न स्त्री को।"

(v) "काश, ये (किसान-ग्रामीण श्रमिक) आदमी ज्यादा और देवता कम होते तो यूँ न ठुकराये जाते।"

(vi) "मैं इस सिद्धान्त का समर्थक हूँ कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे, और उन्हें हमेशा रहना चाहिए।"

(vii) "मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं।"

(viii) "सच्चा आनन्द सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उदगम है।"

(ix) "...प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है।"

(x) "जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छन्द, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या, और जलन के लिए स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब-कुछ है। ...जहाँ जीना है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है, मोक्ष है। ...वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नही है, कोल्हू है।"

[विशेष उल्लेखनीय यह है कि मेहता के उपयुक्त सभी उद्‌गार वस्तुतः प्रेमचन्द के अपने उद्‌गार हैं।]

मेहता का नारी और उससे सम्बन्धित बातों पर एक निश्चित दृष्टिकोण है। वीमेन्स क्लब में दिया गया विस्तृत भाषण, मालती से किये गये नारी विषयक तर्क-वितर्क और उनके अन्तर्गत कही गयी उनकी स्पष्टोक्तियाँ तथा मिसेज खन्ना के प्रति उनका अतिशय श्रद्धा-आदरभाव तथा उसका कारण आदि इसी के सशक्त प्रमाण हैं।

सामान्यतः, मेहता "बिन ब्याहे थे और नवयुग की रमणियों से पनाह माँगते थे। पुरुषों की मंडली में खूब चहकते थे, मगर ज्योंही कोई महिला आयी और आप की जबान बन्द हुई स्त्रियों से शिष्ट व्यवहार तक करने की सुधि न रहती थी।" कारण ? "वे आधुनिकाओं के प्रति अपने मन में उपेक्षा और अवहेलना के भाव संजोये रहते हैं जिससे उनका अवचेतन मन आधुनिकाओं की उपस्थिति में अनजाने ही विद्रोह क ता हुआ उनके व्यवहार को शिष्ट शालीन नहीं रहने देता।"[1] 'तितली बनी मालती' की भर्त्सना करके और गोविंदी के सम्मुख पूज्य नारी का गुणगान करते हुए "मिस मालती में वह बात नहीं है" कहकर वे अपने इसी रूप का परिचय देते हैं। मिर्जा खुर्शेद से वे स्पष्टतः कहते हैं कि "ससार में जो कुछ सुन्दर है, उसकी प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूं", "मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है", 'स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है।" वे तो स्पष्टतः घोषित करते हैं, "पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है,

१. डा० राजपाल शर्मा : गोदान—पुनर्मूल्यांकन : पृ० १६२

नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा बन जाती है।" दूसरे शब्दों में, मेहता तथाकथित नारी-स्वातन्त्रय, उसकी तथाकथित आधुनिकता तथा समानावस्था वाले अधिकार के एकदम विरोधी हैं। वे चाहते, आदर देते, हैं—भारतीय परम्परा की पत्नी को—"मैं ऐसी औरत चाहता हूँ जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।" मातृत्व आदि नाना गुणों से विभूषित गोविंदी इसी से उनकी दृष्टि में श्रद्धेय है और इसी कसौटी पर खरी पाकर वे मालती के प्रति आदर-प्रेम भाव प्रदर्शित करते हैं। यहाँ तक कि सेवा, परोपकार, त्यागादि से परिपूर्ण कलूटी जैसी सामान्य नारी भी, उनकी दृष्टि में, आदृत और प्रशंसनीय है। दूसरी ओर, मेहता विवाह के भी विरोधी हैं और विवाहोपरान्त तलाक के भी। नारी अर्थात् पत्नी पर वे पति का एकाधिकार मानते हैं और उसके प्रेम को वे केवल पति-सेवा तक सुरक्षित। कहना न होगा कि प्रो० मेहता की उपर्युक्त सभी धारणायें स्वयं प्रेमचन्द के विचारों-मान्यताओं से मेल खाती हैं।

मेहता : प्रेमचन्द का प्रतिरूप :—मेहता की उपर्युक्त चारित्रिक विशेषताओं और विचारों का प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और विचारों से अत्यन्त साम्य देखते हुए माना जाने लगा है कि मेहता प्रेमचन्द के ही प्रतिरूप हैं तथा "उनके चरित्र की दो-तिहाई विशेषतायें निश्चय ही उनके जनक प्रेमचन्द की निजी चारित्रिक विशिष्टताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[1] इसके लिए मेहता का दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर होना, लेखक होना, प्रकृति-प्रेम, ईश्वर पर अविश्वास, मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखने का आग्रह, निरभिमान, विनोद-प्रियता और जिंदादिली, सिद्धान्तों के प्रति अति की निष्ठा, प्रेम-नारी विषयक विचार एवं मेहता की समग्र विचारधारा आदि को बतौर साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है।

मेहता : प्रेमचन्द के विचारवाहक :—समग्रतः मेहता "प्रेमचन्द की धारणाओं के वाहक हैं"[2] क्योंकि लेखक ने अपना समस्त बौद्धिक पक्ष इन्हीं के मुख से अभिव्यक्त कराया है। यूँ चारित्रिक साम्य भी इसी को बल प्रदान करता है। प्रेमचन्द की भाँति ही "मेहता में अपने वातावरण के प्रति अध्ययन सिद्ध सस्कृति की स्वीकृति और विद्रोह दोनों हैं"[3] और इसी की खुली अभिव्यक्ति करने वाला सर्वाधिक पात्र होने से "मेहता प्रेमचन्द की बौद्धिकता का"[4] तथा "प्रेमचन्द का मुखपात्र"[5] (Mouth piece) बन गया है।

---

१. वही : पृ० १७८
२. रामकृष्ण मिश्र : गोदान-सौन्दर्य और समीक्षा : पृ० १७७
३. वही : पृ० १७७-७८
४. डा० त्रिलोकी नाथ खन्ना : गोदान—एक नव्य परिबोध : पृ० ३२
५. डा० राजपाल शर्मा : गोदान—पुनर्मूल्यांकन : पृ० १६०।

कुछ कमियाँ (शिकायतें) :—डा० कोमलसिंह सोलंकी[1] को, मेहता से कुछ शिकायतें भी हैं जिनका मूल कारण है—उनकी कुछ चारित्रिक कमियाँ या असंगतियाँ। ये हैं—कहीं-कहीं मेहता के व्यक्तित्व का अशरीरी हो जाना, उसका लोक जीवन की न होकर मानसिक सर्जना की प्रतिमूर्ति होना, आदर्शाधिक्य और तटस्थ रूप, दूसरे लोक का पात्र लगना, प्रेमविषयक परस्पर विरोधी, बेमेल और तर्कहीन परिभाषायें रखना, ईश्वर-मोक्ष-प्रकृति-काल-पाश्चात्य भोगवाद आदि पर उनके विचारों का मात्र अध्येता वाला होना, भुक्तभोगी वाला न होना, मालती के प्रति उसका पौरुषहीन समर्पण आदि। इन्हीं से उनको "मेहता ऊपर से चिपकाये हुए पोस्टर की भाँति आरोपित पात्र"[2] लगते हैं।

निःसन्देह, डा० सोलंकी की अधिकांश शिकायतें निराधार और अतिशयोक्तिपरक हैं। गहराई से देखें तो मेहता का बुद्धि पक्ष प्रबल है किन्तु साथ ही एक व्यक्ति के रूप में भी वह एकदम सजीव और जिंदादिल पात्र है जिसमे बुद्धि और हृदय का कलात्मक और प्रभावोत्पादक समन्वय मिलता है। औपन्यासिक कर्त्तव्य ही नहीं, अपने चरित्रगत वैशिष्ट्य से भी वह सभी को प्रभावित करते हैं। सच तो यह है कि वे यदि समग्रतः भी नहीं तो कम से कम बुद्धिपक्ष से तो प्रेमचन्द का प्रतिनिधित्व करते ही हैं। मेहता को प्रेमचन्द का प्रतिरूप न मानने वाले एकमात्र आलोचक डा० रामविलास शर्मा तक भी इतना अवश्य स्वीकार करते हैं, "गोदान के किसी एक पात्र को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता, लेकिन अगर मेहता से होरी को जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत-कुछ प्रेमचन्द से ही मिलता-जुलता होगा। मेहता म यदि उन्होंने (प्रेमचन्द ने) अपने विचार डाले हैं तो होरी मे बराबर परिश्रम करते रहने की दृढ़ इच्छा शक्ति।"[3]

उपसंहार :—उपन्यास के विभिन्न पात्रों ने भी मेहता के सम्बन्ध में अपनी-अपनी प्रतिक्रियायें व्यक्त की हैं। पं० ओंकारनाथ उन्हें "छुटे सांड की तरह समझते हैं जिसका काम दूसरों के खेत में मुँह मारना है" तो खन्ना की दृष्टि में "वे चरित्र के अच्छे नहीं हैं", रायसाहब ने एक जगह उनको "मनोरंजन की वस्तु" माना है तो मालती ने "छिछोरा"। द्रष्टव्य यह है कि पं० ओंकारनाथ और खन्ना मालती के कारण उनके विरोधी हैं तो रायसाहब और मालती की प्रतिक्रियाएँ क्षणिक भावावेश। प्रमाण ? अन्यत्र रायसाहब ने मेहता को "सच्चा और निष्कपट आदमी" तथा "खुशमिजाज और मिलनसार" कहा है तो स्वयं खन्ना तक ने मेहता की बात

---

१. साहित्य के आयाम : पृ० ६५
२. वही : पृ० ७०
३. प्रेमचन्द और उनका युग पृ० १२९

में चरित्र, अध्ययन और सद्भाव की शक्ति'' मानते हैं। मालती तो उनकी परम प्रशंशिका है ही—''इनका हुक्म कैसे टाल सकती ? पुरुष देवता ठहरे। ...मैंने पुरुष का जो रूप अपने परिचितों की परिधि में देखा था, उससे यह कहीं सुन्दर है'' तथा ''तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो...अपने जीवन के साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो।'' मिसेज खन्ना के मत में ''जितने आदमियों से उसका परिचय था, उनमें मेहता का स्थान सबसे ऊँचा था'' तो, केवल एक बार की भेंट में मिलने और एक ही अल्पकालिक परिचय में आने वाली कलूटी तक के लिये मेहता ''श्रद्धा के पात्र'' हो गये थे। ''बुद्धि से साफ-सुलझे, स्यादवादी तथा हृदय के स्पष्टवादी''[1] प्रो० मेहता अपने अद्भुत चरित्र और विचारों से, एक ओर यदि उपन्यास के अन्य पात्रों के लिये प्रशंसनीय-आदरणीय बन जाते हैं तो दूसरी ओर स्वयं लेखक (प्रेमचन्द) के प्रतिरूप या विचारवाहक होकर अत्यन्त अभिन्न, तीसरी ओर वे समग्र नगर-कथा के नायक बने मिलते हैं तो चौथी ओर पाठक-आलोचक वर्ग के आदृत-प्रिय अनुकरणीय पात्र। इस प्रकार निःसन्देह मेहता 'गोदानकार' की लेखनी से प्रसूत एक अमर पात्र बन गये हैं।

विवेच्य प्रश्न

१. गोदान के आधार पर 'मेहता' का चरित्र-चित्रण कीजिए।

२. प्रो० मेहता का परिचय देते हुए उनकी चरित्रगत विशेषताओं को सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।

३. ''मैंने अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है।'' प्रेमचन्द के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'गोदान' के आदर्श पात्र का निर्धारण करते हुए उसका चरित्रांकन कीजिए।

४. ''मेहता प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का ही प्रतिनिधित्व करता है'' उपयुक्त प्रमाण देते हुए इस कथन की सम्यक् समीक्षा कीजिये।

५. ''मेहता प्रेमचन्द के विचारों के वाहक (या मुख पात्र) हैं'' सिद्ध कीजिए।

६. ''मेहता प्रेमचन्द के ही प्रतिरूप हैं'' समीक्षा कीजिये।

७. ''मेहता प्रेमचन्द की धारणाओं के वाहक हैं'' उपयुक्त धारणाओं का साम्य-उल्लेख करते हुए प्रस्तुत कथन का विवेचन कीजिये।

८. ''मेहता में अपने वातावरण के प्रति अध्ययन सिद्ध संस्कृति की स्वीकृति और विद्रोह दोनों हैं।'' मेहता के चारित्रिक परिप्रेक्ष्य में इस कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिये।

९. ''मेहता प्रेमचन्द की बौद्धिकता का साक्षी है।'' गोदान से उपयुक्त प्रमाण देते हुए इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना मत-प्रतिपादन कीजिये।

---

१. जगदीश पाण्डेय : शील निरूपण—सिद्धान्त और विनियोग : पृ० ३२

१०. "मेहता बुद्धि से साफ-सुलझे, स्यादवादी तथा हृदय के स्पष्टवादी व्यक्ति हैं" उनकी चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर प्रस्तुत कथन की समीक्षा कीजिए।

११. "मेहता प्रेमचन्द का एक अमर पात्र है।" उसका सम्यक् चरित्रांकन करते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिये।

१२. 'गोदान' के आधार पर प्रो० मेहता के चरित्र का गुण-दोष-विवेचन कीजिये तथा उपन्यास में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

———

१२ मिस मालती का चरित्रांकन

परिचय :

संयुक्त प्रान्त का नजाकत-नफासत वाला नगर लखनऊ और वहीं के निवासी मि० कौल की सबसे बड़ी सन्तान थी। मालती जो इंग्लैंड में डाक्टरी की ऊँची शिक्षा और उसी के साथ-साथ पाश्चात्य भोगवाद में रमा-डूबा मन लेकर भारत वापिस आयी और नयी-नयी प्रेक्टिस शुरू की थी। अति के अपव्ययी, कबाबी-शराबी और अपंग पिता किन्तु देवी तुल्य माँ की सन्तान मालती पर ही घर का सारा दायित्व आ पड़ा था—सरोज और वरदा नामक दो-दो जवान बहिनों और कर्जे में डूबे माता-पिता का भी। मालती के चार-पांच सौ में तो क्या होता, हाँ, बढ़ते हुए कर्जे और दिखावे की रईसी से बाहरी चमक तो रहती ही थी, रखनी भी पड़ती थी। इस पर भी मालती जीवट की युवती थी—"कमल की भाँति खिली, दीपक की भाँति दमकती, स्फूर्ति और उल्लास की प्रतिमा सी निश्शंक-निर्द्वन्द्व। उसका वाह्य रूप-परिचय ! स्वयं लेखक के वर्णनानुसार, " जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए है और जिनकी मुख-छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं।··· आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गात कोमल पर चपलता कूट कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप सा हो गया।" अपने इस प्रथम परिचय में ही मालती एक विशिष्ट छाप छोड़ती है जो अन्त तक बरकरार ही नहीं रहता, बढ़ती भी जाती है। स्वयं लेखक के अनुसार उसका चरित्र-सूत्र है—"मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी" जिसका गत्यात्मक चरित्र-विकास मुख्यत: तीन रूपों में देखा जा सकता है।

मालती का चरित्र-विकास और रूप—'गोदान' की नगर कथा की प्रधान पात्रा मालती के चरित्र का विकासात्मक अध्ययन उसके अंकित किये गये तीन रूपों (या स्थितियों) में करना समीचीन है। ये हैं—

(१) तितली रूपा मालती

(२) मानवी मालती

(३) मधुमक्खी रूपा मालती

तितली रूपा मालती —'गोदान' में मालती का प्रवेश अपने इसी रूप में हुआ मिलता है—पाश्चात्य रंग-ढंग में रमी-बसी, अति की उच्छृखला, निर्लज्जता की सीमा तक वाचाल, एकदम संकोचशून्य, पुरुष-समाज में चहकने-चमकने वाली तितली की भाँति फूल-फूल पर मँडराने और रस चूसने वाली, अपने वाह्य रूप और व्यवहार से रसिकों का मन-बहलाव करने वाली, उनमें प्रेम की भ्रांति पैदा करने वाली, मुँह-फट-बेबाक और लगभग अय्याश सी लगने वाली, काल गर्ल या सोसाइटी गर्ल की भाँति प्रभाव छोड़ने वाली नवयुवती जो एकदम 'आधुनिका' है और 'मिस' भी। उसकी वाचालता और मजाक के प्रथम लक्ष्य बनते हैं—प्रो० मेहता जिनसे वह प्रथम भेंट में 'शेकहैन्ड' करते ही, फिकरा कस देती है कि 'फिलासफर हमेशा मुर्दा-दिल होते हैं' और 'क्वाँरे रहने का रोग सभी फिलासफरों में होता है।' पत्रकार ओंकारनाथ को शराब पिलाकर शर्त जीतना हो या पठानवेशी मेहता की इश्किया हरकतों में मजा लेना इसी के कुछ प्रमाण हैं। पूँजीपति खन्ना तो बाल-बच्चेदार होकर भी, उसका 'दीवाना' ही नहीं बनता, अपना माल भी खुले हाथों लुटाता है। स्वयं उसी की आत्मस्वीकृति है, "जब उसका रुक्का पहुँचा मैंने तुरन्त रुपये भेजे। मेरी कार आज भी उसकी सवारी में है। उसके पीछे मैंने अपना घर चौपट कर दिया। ···मालती मुझे उसी तरह नचाती थी जैसे मदारी बन्दर को नचाता है और मैं खुशी से नाचता था। ···मैं पतंगे की भाँति उसके मुख-दीप पर प्राण देता था" और परिणाम ? स्वयं मालती के शब्दों में, "मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहने वालों में से एक हो। वह मेरी कृपा थी कि मैं···तुम्हारी सामान्य से सामान्य चीजें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी।" वह तो वस्तुतः मनचली है जिसको अपने चारों ओर रसिकों का जमघट चाहिये। पं० ओंकारनाथ ने मालती के इसी रूप को उजागर करते हुए कहा है—"··· मालती जो बहत्तर घाटों का पानी पीकर भी 'मिस' बनी फिरती है। शादी नहीं करेगी, इससे जीवन बन्धन में पड़ जाता है ······जीवन का पूरा विकास इसी में है कि दुनिया को लूटे जाओ और निर्द्वन्द्व विलास किये जाओ।" और मिसेज खन्ना के शब्दों में, ,'····· जो औरों को सीधे उस्तरे से मूँडता है, उसे वह उलटे छुरे से मूँडती है। ·· ···मेरी दृष्टि में वह वेश्याओं से भी गयी-बीती है।" तथा "भौंरे तो (उसे) हमेशा घेरे रहते हैं।" निःसन्देह, यह मालती ईश्वर और विवाह दोनों की विरोधी और नारी स्वतन्त्रता की पक्षधर है जैसा कि मेहता के सम्मुख वह स्वीकार ही नहीं करती, बलपूर्वक अपनी मान्यताओं को स्थापित करके सिद्ध भी कर देती है : स्वयं लेखकीय टिप्पणी के अनुसार, इस समय (पठान-काण्ड, तक तो मालती की स्थिति यह थी कि "······ इस काण्ड में उन्हें (मालती को) मनचलेपन का आनन्द आ रहा था। उसका हृदय कुछ देर तक इन नर-पुंगवों के बीच में रहकर उसके बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिये ललचा रहा था। ·· आज अक्खड़, अनघड़ पठानों के उन्मत्त प्रेम के लिये

उनका मन दौड़ रहा था।" उसका उन्मुक्त मदिरापान और रायसाहब वाली सोसाइटी में किये गये प्रायः सभी कार्य इसी सत्य के उद्घाटक हैं कि "मालती में स्वतन्त्र प्रकृति की ऐसी स्त्री का चित्रण है जो तितली है।"[1]

मानवी मालती—पठान-प्रसंग से ही मालती का आकर्षण मेहता में होने ही नहीं, बढ़ने भी लगता है और इसी का विकास होता है—शिकार प्रसंग में—विशेषतः कलूटी के संदर्भ में। वस्तुतः यहीं से मालती एक सामान्य नारी रूप में प्रकट होती मिलती है। पुरुष सामीप्य को अधिकता से पाती रहने वाली मालती के नारीत्व को सच्चा पौरुष सर्वप्रथम मेहता में ही दिखता है और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अनुसार मेहता के प्रति बढ़ती हुई आकर्षणमयी प्रेम भावना मालती के तितलीत्व को कम करती जाती है, वह क्रमशः अपने आप को मेहता की भावनाओं-विचारों के अनुकूल ढालने लगती है। इसी प्रक्रिया में उसका सामान्य मानवी रूप मुखर होने लगता है यथा मेहता के प्रति आकर्षण, प्रेमोद्गारों का प्रकटीकरण, स्वामीत्व की भावना तथा सरल प्रणयोक्तियाँ एव सर्वाधिक सशक्त प्रतिक्रिया—कलूटी के प्रति सौतिया डाह तो मेहता के प्रति नाज-नखरों का प्रदर्शन जो कभी-कभी तो टुच्चेपन तक उतर आये लगते हैं : प्रमाणार्थ निम्न कथन देखिये—

(i) "तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।...तुम्हारे पास ही मरूँगी आज सता लो, जितना सताते बने, मैं भी कभी समझूँगी...अच्छा बताओ, मेरे विषय में तुम्हारा क्या ख्याल है ?

(ii) "वह देवी है, मैं मान गई। उसके वक्ष में उभार है, नितम्बों में भारीपन है, देवी होने के लिए और क्या चाहिये ?"

(iii) "ऐसी ही लौंडियां मर्दों को पसन्द आती हैं, तुम उसके चरणों की पूजा करके पीछे आना।" तथा, "तो आज आप उसके मेहमान हैं। शायद रात को भी यहीं रहने का विचार होगा। रात को शिकार भी तो अच्छे मिलते हैं।"

इस प्रकार मालती के मानवी रूप में एक ओर यदि सामान्य प्रेमिका का रूप झलकता है तो दूसरी ओर लोभ, वाचालता और सौतिया डाह जैसे दुर्गुण भी।

मधुमक्खी मालती—वस्तुतः मालती के "व्यक्तित्व में सन्तोन्मुखता की ऐसी प्यास है जो उसे मानवीत्व से देवीत्व की ओर अग्रसर रखती है।"[2] गहराई से देखें तो "उसकी वेशभूषा और वाह्य व्यवहार में तो आधुनिकाओं जैसा दिखावा है और तड़क-भड़क है किन्तु अपने अन्तर्मन से वह अधिकांशतः भारतीय नारियों के संस्कारों की ही पुजारिन है। मेहता के संसर्ग में उसके ये गुण और विकसित हो उठते हैं"—विशेषत वीमेन्स क्लब में दिये गये मेहता के नारी विषयक भाषण के पश्चात से।

१. डा० रामरतन भटनागर : प्रेमचन्द—एक अध्ययन : पृ० १५१
२. डा० राजपाल शर्मा : गोदान-पुनर्मूल्यांकन : पृ० १७६

वास्तव में, "वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।"

मालती **कर्त्तव्यपरायणा** है जिसका सशक्त प्रमाण वह अपंग पिता के ऐबों की पूर्ति से लेकर उसके परिवार का पालन करने, बहिनों को उच्च शिक्षा दिलाने, गोविंदी और मंगल की निष्काम सेवा, होरी के ग्राम में घर-घर जाकर और सामान्य स्त्रियों की सहायता करने तक देती है। वह स्पष्टत: घोषित करती है कि "मैं खन्ना को अपनी जूतियों की नोंक के बराबर भी नहीं समझती।" इसी प्रकार मेहता के बजट को संतुलित करना और उधर यथाशक्ति अपनी बहिनों को उन्नति की ओर अग्रसर कराते रहना भी उसकी इसी कर्त्तव्यपरायणता के साक्षी हैं।

मालती में एक और परिवर्तन आता है—**निरभिमानता**। तितली रूप में बड़ों-बड़ों के कान काटने वाली और मानवी रूप में कलूटी जैसी सामान्य नारी से सौतिया डाह रखने वाली मालती अब ग्राम्य की सामान्य नारियों को भी 'त्याग और श्रद्धा की देवियाँ' मानने लगती है। यहाँ तक कि "उनकी श्रद्धा देख-देखकर उसके मन में सेवा की प्रेरणा और भी प्रबल हो रही थी। इस त्यागमय जीवन के सामने वह विलासी जीवन कितना तुच्छ और बनावटी था। आज उसके वह रेशमी कपड़े, जिन पर जरी का काम था, और वह गंध से महकता हुआ शरीर और वह पाउडर से अलंकृत मुख-मण्डल, उसे लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर बन्धी सोने की घड़ी जैसे उसे अपलक नेत्रों से घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नेकलैस मानो गला घोट रहा था। इन त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी दृष्टि में नीची लग रही थी।"

एक **प्रेमिका** के रूप में भी वह आदर्शोन्मुख बन जाती है। वह स्वयं मेहता से स्पष्टत: कहती है, "प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुन्दर को सुन्दर।... मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूं। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है। ...वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं, उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।" निःसदेह उसकी यह प्रेमोपासना स्वयं उसको भी उपास्य बना देती है—कम से कम मेहता की दृष्टि में। इसी से वे सोचते हैं, "मालती नारीत्व के उस ऊँचे आदर्श पर पहुँच गयी थी, जहाँ वह प्रकाश के एक नक्षत्र सी नजर आती थी। अब वह प्रेम की नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी।"

मालती में सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट नारी-गुण विकसित होता है—अपार **मातृत्व** का जिसका खुला परिचय वह झुनिया के बालक मंगल की निष्काम सेवा, अनथक सुश्रुषा और उसके प्रति अपनी वात्सल्य भावना से देती है। जिस चेचकग्रस्त बच्चे को रोता छोड़ स्वय झुनिया 'पैर पसार कर सोती रहती थी और प्रो० मेहता जैसे आदर्श भरे व्यक्ति के हाथ भी जिसे 'छूते हुए कांपते थे', उसी मंगल को मालती 'कोमल हाथों से उठाकर, कंधे से लगाकर सारी-२ रात बहलाती-पुचकारती रहती है। परिणाम ? स्वयं मेहता तक मानने लगते हैं कि "मालती केवल रमणी

नहीं, माता है और ऐसी-वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने माता-पन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से लुटा रही हो। उसके अंग-अंग से मातृत्व फूटा पड़ता था मानो यही उसका यथार्थ रूप हो।"

इतना ही नहीं वरन् अब तो मालती में सामान्य व्यवहार-विचार और दिन-चर्या तक में आशातीत परिवर्तन और उन्नयन हो चुका था। वह मालती "जो खुद कभी अपने जूते न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, विलास और विनोद ही जिसका जीवन था", अब अपने हाथों से खाना पकाती है, मरीजों से मृदु व्यवहार करती है और गरीबों के घर अक्सर बिना फीस लिये ही जाने लगती है, सच्चा आत्मालोचन करती है और स्वयं अपने और अपनी पूर्वस्थिति पर सपाट रूप से सच्ची २ बातें कहती-स्वीकारती है। समग्रतः वह "मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा' बन जाती है।

मालती के इस विकासोन्मुख-परिवर्तित रूप, स्वरूप और चरित्र-शील का प्रभाव उपन्यास के विभिन्न पात्रों पर पड़ता है। खन्ना जैसा रसिक और असफल प्रेमी (?), उसकी लाख बुराइयां करते हुए भी, स्वीकार करता है कि "उसने मुझे कभी मुंह नहीं लगाया, यह मैं स्वीकार करता हूँ। उसने मुझे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, यह भी सत्य है।" मेहता तो उसके लिये अनेकानेक विशेषणों का प्रयोग ही नहीं करते, भाव-विभोर होकर उसके पैरों तक का स्पर्श कर लेते हैं। निःसन्देह, 'मेहता का चरित्र 'गोदान' में अत्यन्त आदर्श चरित्र है और स्वयं मेहता जिसके समक्ष आत्म-समर्पण कर बैठे, पराभूत हो गये, वह मालती सचमुच 'गोदान' के अद्वितीय चरित्रों में से एक है।"[1]

वस्तुतः "बुद्धिमती, चतुरा, प्रतिमावान, दयालु, चंचल, स्वाभिमानी, त्याग, निष्कपट सद्भावना, सहानुभूति," स्पष्टवक्तृत्व सम्पन्नता, वाचालता, परोपकार, जन-सेवा, प्रेम और मातृत्व आदि नाना गुणों और परस्पर विरोधी चारित्रिक विशेषताओं से परिपूर्ण मालती वाह्यतः तितली की भाँति विलासिनी और रसिका होते हुए, सामान्य नारी वाले गुण-अवगुणों का संचय-त्याग करते हुए, निरन्तर देवत्व या आदर्शोन्मुख बनी रहती है। ठीक एक मधुमखी की भाँति वह भी जीवन में गुण-मधु का सचय-विकास करती है, तितलीवत् रूप से मधुमय सच्चरित्रता तक को बनाये रखती है और समग्रतः नारीत्व के उच्चादर्श पर पहुँच जाती है। 'इस प्रकार प्रेमचन्द ने विलासिनी (तितली) मालती को मानवता के उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है जहाँ पर पहुँच कर वह संसार के निवारण में अपने को उत्सर्ग कर देती है।...मालती का यह चरित्रगत परिवर्तन अस्वाभाविक नहीं।"[2] अन्ततः, मेहता

१. रामगोपालसिंह चौहान : प्रेमचन्द और उनका गोदान : पृ० १८२
२. शीला गुप्ता : प्रेमचन्द और उनका साहित्य : पृ० २३६-४०

के विवाह-प्रस्ताव को अस्वीकार कर, उसकी आत्मा को 'मुक्त' छोड़, उसको संसार हित में 'तल्लीन' कर मालती अपने चरित्र की चरम महानता का भी परिचय दे देती है। मालती के चरित्र की देह से मन, स्थूल से सूक्ष्म, भोग से ज्ञान और तितली से मधुमक्खीत्व वाली ऊर्ध्वमुखी यह यात्रा उसे प्रेम की (ही) वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु'', ''पूर्ण नारी'' और ''मंगल, पवित्रता, त्याग की प्रतिमा'' सिद्ध कर देती है। श्री जयशकर प्रसाद के शब्दों में निष्कर्षत: कह सकते हैं—

''इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं, इतना ही सरल झलकता है।[3]

विवेच्य प्रश्न

१. ''मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी।'' प्रेमचन्द के इस कथन के सन्दर्भ में मालती के चरित्र का विश्लेषण कीजिये।

२. मालती का चरित्रांकन करते हुए सिद्ध कीजिये कि ''उसमें बीज रूप में कुछ ऐसे गुण विद्यमान हैं जो आगे चलकर विकसित होते हैं।''

३. ''मालती केवल रमणी ही नहीं माता भी है।'' प्रस्तुत कथन की सार्थकता मालती के चरित्राधार पर सिद्ध कीजिये।

४. मालती-चरित्र के विविध रूपों-पक्षों के क्रमिक विकास का सप्रमाण परिचय दीजिये।

५. ''मालती के व्यक्तित्व में सतोन्मुखता की ऐसी प्यास है जो उसे मानवीत्व की ओर अग्रसर करती है।'' मालती के चरित्र के आधार पर प्रस्तुत कथन की समीक्षा कीजिये।

६. ''आधुनिका के परदे में मालती भारतीय नारी के संस्कारों की पुजारिन है।'' विवेचन कीजिये।

७. ''यह नारी है या मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा।'' मालती के विषय में कहे गये मेहता के इस कथन की सार्थकता को, मालती के चरित्र विकास के परिप्रेक्ष्य में, पुष्टि कीजिये।

———

३. कामायनी : लज्जा सर्ग : पृ० १०५

१३ रायसाहब (अमरपाल सिंह) का चरित्रांकन

दोहरा, गठा हुआ शरीर, लम्बा कद और ऊँचा माथा, गोरा रंग और तेजस्वी चेहरा'—यह है एक झलक क्षत्रियवंशीय अमरपालसिंह की जो सेमरी-बेलारी गाँव के जमींदार हैं। अपने वाह्य जीवन में उनका दखल राजनीति से लेकर साहित्य-संगीत तक और बुद्धिजीवियों से विभिन्न प्रश्नों-समस्याओं पर वाद-विवाद या तर्क-वितर्क करने से लेकर अफसरों की जी-हजूरी करने तक व्याप्त है। सत्याग्रह संग्राम में भाग लेकर जेल जाना, राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्कामों से मेल-जोल बनाये रखना और इसके लिये रिश्वत के सभ्य साधनों-डाली, दस्तूरी, तोहफा, भेंटादि का निःसंकोच प्रयोग करना से लेकर चुनाव में जीत कर मंत्री बनने तक राजनीति उनका शगल है। दूसरी ओर, वे "साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकिन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक अच्छे निशानेबाज" और इन्हीं सब में, गत दस वर्षों से, अपने विधुर जीवन को हंस-बोलकर, बिता रहे थे। यूं "रायसहाब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे, दर्जनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई···रियासत से सबसे वसीके बँधे हुये थ। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।"

और स्वयं रायसाहब की स्थिति ? स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिये। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार।···हमारे नाम बड़े हैं, पर दर्शन थोड़े। हम इतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है।" निःसन्देह रायसाहब **स्पष्टवक्ता** हैं—सब-कुछ साफ-२ कह देने वाले, दूसरों की ही नहीं, स्वयं अपनी, अपने परिवार की और अपने वर्ग की खुली आलोचना करने वाले सुनने वाला चाहे होरी जैसा निरक्षर असामी हो या प्रो० मेहता जैसा बुद्धिजीवी।

यह स्पष्टवादिता रायसाहब का केवल बाहरी खोल है, दिखावा या कवच मात्र। अपने अन्तर्मन में और सच्चे व्यवहार में वे एकदम **अर्थेच्छुक** और उसकी प्राप्ति के लिये डटकर **शोषण करने वाले** भी हैं। हाँ, प्रायः वह राजी से, ऊँचे-ऊँचे आदर्शों से लेकर अपनी व्यक्तिगत दुर्दशा (?) का रोना तक रोकर अपना उल्लू सीधा करते हैं (यथा होरी से और उसके गाँव के अन्य असामियों से धनुष-लीला के

नाम पर पैसा बरतना, शगुन प्राप्त करना), दूसरी ओर, मजदूरों द्वारा बेगार करने से इन्कार किये जाने का समाचार सुनते ही, उनका रूप बदल जाता है—"चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है, और इस मजूरी पर काम करना होगा, सीधें करे या टेढ़े।" एकदम सच तो यह है कि रायसाहब **द्विमुखी व्यक्तित्व** के धनी हैं—हाथी के दाँत, खाने के और दिखाने के ओर। "दरअसल, वे जो हैं, उससे वे अपने को भिन्न प्रदर्शित करना चाहते हैं। जो हैं, उसे छिपाते हैं। जो नहीं हैं, उसे प्रदर्शन के मोह में आरोपित कर चलने का भ्रम पैदा करते हैं। उनका यह भ्रम, उनकी यह दुर्बलता, एक हद तक उनकी मूर्खता को भी उजागर कर देती है। साहित्य, संगीत और कला में उनकी कोई गति नहीं, फिर भी वे साहित्य, संगीत और कला के प्रति अपनी विशेष रूचि का प्रदर्शन करते चलते हैं। शिकार करना उनका व्यसन है। पशु तो उनके शिकार होते ही हैं, उनकी प्रजा भी उनका शिकार होती है। ऐसे स्थलों पर उनका व्यक्तित्व उपहासास्पद हो जाता है।"[1] उनके चरित्र की इस वास्तविकता को होरी, धनिया और गोबर जैसे निरक्षर शिकार से लेकर रायसाहब की निकटस्थ मित्रमंडली—प्रो० मेहता, मालती, खन्ना, ओंकारनाथ और तंखा आदि—तक, सब समझते-जान लेते हैं।

रायसाहब वस्तुत : एकदम **स्वार्थी और धनलिप्सु** हैं। अपना उल्लू सीधा करने के लिये वे होरी जैसे असामी से अपना दुखड़ा रो सकते हैं, धनुष लीला का स्वांग रचाकर शगुन इकट्ठा कर सकते हैं, रिश्वत, चन्दा और दान दे सकते हैं। यहाँ तक कि पुत्री और पुत्र के असंगत विवाह-सम्बन्ध तक करा सकते हैं। मृत पत्नी के भाई की सम्पत्ति पाने के लिये मुकदमा खड़ा करना हो या बेटे रूद्रपालसिंह का विवाह सम्बन्ध सूर्यप्रतापसिंह की पुत्री से कराने को उद्यत होना हो, उनके धनलिप्सु रूप के ही सशक्त प्रमाण हैं। वे तो स्पष्टत: घोषित करते हैं, "हम अपनी असामियों को लूटने के लिये मजबूर हैं।...बस, हमारी दशा उन बच्चों की सी है जिन्हें चम्मच से दूध पिला कर पाला जाता है—बाहर से मोटे, अन्दर से दुर्बल; सत्वहीन और मुहताज।' तथा "कौन ऐसा ताल्लुकेदार है जो असामियों को थोड़ा-बहुत नहीं सताता। कुत्ता हड्डी की रखवाली करे तो खाये क्या ?"

रायसाहब धूर्त्तता की सीमा तक **व्यावहारिक प्राणी** हैं। उनका हर कदम, हर कथन, हर कार्य, हर योजना बड़े फूंक-फूंक कर क्रियान्वित किये जाते हैं। धनुष-लीला पर होरी की प्रशंसा करते हुये उसको विश्वास में लाना, मेहता आदि मित्रों को अपनी वर्गीय दुरावस्था और विवशता दिखाते रहना, स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेने से लेकर मंत्री-पद तक पाना, उनके प्राय: समस्त क्रिया-कलाप इसी के

---

१. रामकृष्ण मिश्र : गोदान-सौन्दर्य और समीक्षा : पृ० १३६

सबल परिचायक हैं । वास्तव में, "रायसाहब उन हिंसक पशुओं में से हैं जो गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोलना सिख गये हैं" तथा "....वे किसान को गुड़ से मारना जानते हैं।" स्वय लेखक ने उनके विषय में सही टिप्पणी दी है—"रायसाहब सभा-चतुर आदमी थे । अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से सहने का उन्हें अभ्यास था।"

उनकी एक विशेषता है—**वाक् चातुर्य**। होरी जैसा निरक्षर असामी हो या मेहता जैसा बुद्धिजीवी या फिर शेष शहरी मित्र-मंडली, सभी के सम्मुख वे बात-बात में अपनी इस विशेषता को प्रकट करते हुए मिलते हैं। यहाँ तक कि उनकी यह वक्तृक्ता प्रलाप की सीमा का स्पर्श करती प्रतीत होती है। मौके-बेमौके, अपनी प्रशंसा स्वयं करते रहना हो या फिर अपने वर्ग की निन्दा करते रहना इसी का प्रमाण है । सच तो यह है कि "...सबके साथ आपके प्रलाप की साँस टूटती नहीं दीख पड़ती । उनके प्रलाप में एक प्रकार के बकचारू की अनुभूति होती चलती है, जिसमें तथ्यों की पुनरावृत्ति से पाठकों को एक-रसता की शुष्कता ही हाथ लग पाती है।"[1] उनका एक ऐसा ही कथनांश देखिये—

"मेरे स्वर्गवासी पिता असामियों पर इतनी दया करते थे कि पाले या सूखे में कभी आधा और कभी पूरा लगान माफ कर देते थे। अपने बखार से अनाज निकालकर असामियों को खिला देते थे। घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद देते थे। मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो करूँ, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूँ।" तथा "मुझे क्या अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का रक्त चूसूँ और अपने परिवार वालों की वासनाओं की तृप्ति के साधन जुटाऊँ, मगर करूँ क्या?" उनकी यही आत्मश्लाघा पुत्री को भरसक दहेज देने, इलेक्शन लड़ने के निश्चय और पुत्र-विरोध करने में मुखर हुई मिलती है।

वस्तुतः अपनी अच्छाई और बुराई दोनों में ही रायसाहब **'पतनोन्मुखी सामन्ती व्यवस्था के प्रतीक'** और **'समकालीन जमींदार-वर्ग के सशक्त प्रतिनिधि'** हैं। उनमें भरा हुआ दंभ, अति का क्रोध, शासन करने की सबल भावना, अहंकार-जन्य स्वाभिमान, बात पर अड़े रहना, असामियों का शोषण और हुक्मरानों के तलुवे चाटने की प्रवृत्ति, निरन्तर पान चबाते रहना, मदिरापान करना, तरह-तरह के आयोजन कर-करके अपने तथाकथित गौरव को बनाये रखना, ढोल की पोल वाली आर्थिक स्थिति तथा सबसे अधिक स्वयं के छोटे से परिवार (पिता, पुत्र-पुत्री) में भी अत्यन्त उपेक्षित, असफल और मनोव्यथा से भर टूटन घुटन भरा जीवन यापन करना आदि सभी बातें इसी की परिचायक हैं। दरअसल वे एक गर्हित व्यवस्था की पराकाष्ठा के प्रतीक हैं।"...अन्ततः वे अपनी ही व्यवस्था की न्याय-हिंसा के शिकार बन जाते हैं और इन सबके लिये वे पाठकों की उपहासात्मक सहानुभूति को ही अर्जित कर पाते हैं।" उनके निकटस्थ मित्र प्रोफेसर

१. वही : पृ० १४१–४१

मेहता ही नहीं, स्वय लेखक भी उनकी 'ढोल की पोल' खोलता हुआ मिलता है और उनको सामन्ती व्यवस्था के विद्रूपता भरे पात्र के रूप में ही अंकित करता है।

विवेच्य प्रश्न

१. राय साहब अमरपालसिंह का परिचय देते हुए उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का सप्रमाण उद्घाटन कीजिये।

२. 'गोदान' के आधार पर रायसाहब का चरित्र-चित्रण कीजिए।

३. "रायसाहब द्विमुखी व्यक्तित्व के धनी हैं जिनकी कथनी-करनी में अन्तर है।" प्रस्तुत कथन के परिप्रेक्ष्य में रायसाहब के चरित्र का उद्घाटन कीजिये।

४. "रायसाहब पतनोन्मुखी सामंती व्यवस्था के प्रतीक हैं" सिद्ध कीजिये।

५. "अमरपालसिंह विचारों से प्रगतिशील, कर्म से प्रतिक्रियावादी तथा वास्तव में घोर पाखण्डवादी हैं।" प्रस्तुत कथन की सारगर्भित समीक्षा कीजिये।

१४ गोदान : संवाद-समीक्षा

संवाद-योजना: आशय और औपन्यासिक आवश्यकता

संस्कृत भाषा की 'वाक्' धातु में 'सम' उपसर्ग लगकर बने शब्द 'संवाद' का व्युत्पत्तिक अर्थ है—सम्यक् कथन या वार्ता। कथन और उसके प्रत्युत्तरस्वरूप कहे गये उपकथन के शृंखलित रूप के आधार पर इसी को 'कथोपकथन' भी कहा जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से, संवाद वह तत्व है जिसका प्रयोग कथा को विकसित या गतिशील करने, पात्रों के चरित्र को उद्घाटित करने, रचना-कथ्य को प्रस्तुत करने तथा वातावरण को यथार्थता और स्वाभाविकता प्रदान करने आदि के लिये किया जाता है। यही संवाद-योजना के मूल लक्ष्य हैं और यही कर्त्तव्य। कथा-पात्र-देशकालानुकूलता चरित्र-प्रकाशन-क्षमता, उद्देश्यमयता, सजीवता, स्वाभाविकता, तथा सम्बद्धता आदि इसके आवश्यक गुण माने गये हैं तो संक्षिप्त और दीर्घ अथवा पारस्परिक और स्वगत इ के प्रकार। अपने इन्हीं रूप गुणों में, मूलतःनाट्य क्षेत्र से ग्राह्य, संवाद को उपन्यास का एक आवश्यक तत्व माना जाता है और उपन्यास-रचना में प्रयुक्त भी किया जाता है।

प्रेमचन्द और संवाद योजना:—कथाकार होने के साथ-साथ प्रेमचन्द नाट्य क्षेत्र और उसी के आधुनिक रूप फिल्म क्षेत्र से भी सम्बन्धित थे। फलतः अपने उपन्यासों की संवाद-योजना पर विशेष ध्यान दिया जाना उनके द्वारा स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं, व स्वयं भी उपन्यास में संवादों की अधिकता या महत्व को स्वीकार करते थे, जैसाकि उनके इस कथन से स्पष्ट भी होता है—"उपन्यास में वार्तालाप (संवाद) जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रसमी नहीं होना चाहिये। प्रत्येक वाक्य को—जो किसी चरित्र के मुंह से निकले-उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिये। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल,सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।[1]" कहना न होगा कि अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द ने संवाद योजना का आयोजन इसी को दृष्टि में रखते हुये किये हैं जिसका सर्वोत्तम प्रमाण है—'गोदान' और उसकी संवाद-योजना।

'गोदान' की संवाद-योजना: एक समीक्षा

संवाद के प्रकार और गोदान:—'गोदान' का श्रीगणेश ही यदि होरी-धनिया के वार्तालाप से होता है तो अंत भी होरी-धनिया और धनिया-दातादीन की वार्ता से

२. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ७०

होता है। समस्त कथा-प्रसंग और घटनाचक्र में भी संवादों का समावेश भरपूर मात्रा में किया गया मिलता है। निःसन्देह, प्रकार और आकार की दृष्टि से, ये संवाद अत्यन्त **संक्षिप्त** (एक-दो शब्दों के) हैं तो अत्यन्त **दीर्घ** (दो-दो पृष्ठों के) भी। संक्षिप्त संवाद एकदम सटीक, क्रियाविहीन संक्षिप्त वाक्य और अन्य अनेक शास्त्रीय गुणों से युक्त बन पड़े हैं तो अपेक्षाकृत अधिक दीर्घ संवादों में अतिशय बौद्धिकता, विश्लेषण, दार्शनिकता और निरसता की भरमार हो गयी है और ये अच्छे खासे 'भाषण' से बन गये हैं। झुनिया-गोबर का प्रथम प्रेमालाप यदि संक्षिप्त संवाद-श्रेष्ठता का प्रमाण है तो मेहता-रायसाहब, मेहता-मालती और रायसाहब तथा उनकी मित्र-मंडली के मध्य हुये तर्क-वितर्क-बहसादि द्वितीय प्रकार से। डा० शीला गुप्त ने इस संदर्भ में ठीक ही कहा है, "गोदान में होरी और रायसाहब, मेहता और मालती आदि के संवाद, भाषण और प्रेमचन्द के अपने विश्लेषण ही प्रतीत होते हैं। ऐसे लम्बे कथोपकथनों को विधायक तत्व की दृष्टि से कथोपकथन कहना समुचित नहीं लगता है।"[2] हाँ, संक्षिप्त संवाद प्रायः सर्वत्र ही सफल बन पड़े हैं यथा निम्नलिखित प्रमाण देखिये:—

(i) **संक्षिप्त संवाद** "**:** चले आना, मैं अपने पिछवाड़े मिलूंगी।"

"और जो न मिली ?"

"तो लौट आना।"

"तो फिर मैं नहीं आऊँगा"

"आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूँ।"

"तुम भी वचन दो कि मिलोगी"

"मैं वचन नहीं देती।"

"तो मैं भी नहीं आता।"

"मेरी बला से।"

× × × × × ×

(ii) **दीर्घ संवादः**—झुनिया गोबर (पृ० ४२-४३), रायसाहब-मेहता (छठा-परिच्छेद), भोला-धनिया (पृ० १२८-२९), मालती मेहता (१५ परिच्छेद), ओंमकार नाथ-रायसाहब (१६ परिच्छेद), मेहता-गोविंदी (१८ वां परिच्छेद) आदि।

कहीं-कहीं **नाटकीय शैली के संवादों** का भी प्रयोग किया गया है। सशक्त सरल शब्दावली, व्यंगात्मकता, उत्सुकतावर्धन, चरित्र या स्थिति का उद्घाटन और सूक्तिपरकता आदि नाना विशेषताओं से युक्त इन संवादों ने नाटकीयता को उत्पन्न करके प्रभावोत्पादकता को बढ़ा दिया है यथा :—

"मैंने सुना है, चरित्र का अच्छा नहीं है।"

"बेफिक्री में चरित्र अच्छा रह ही कैसे सकता है।..."

---

२. प्रेमचन्द और उनका साहित्य : पृ० २४७

"मालती न जाने क्या देखकर उस पर लट्टू हुई जाती है।"

"मैं समझता हूँ, वह केवल तुम्हें जला रही है।"

"मुझे वह क्या जलायेगी, बेचारी ! मैं उन्हें खिलौने से ज्यादा नहीं समझता।"

इसी वर्ग में भाव-भगिमाओं के निर्देशयुक्त संवादों को रखा जा सकता है यथा आंखें तरेरकर, आंखें मटकाते हुये, गला फाड़कर, नाक सिकोड़कर, आस्तीन चढ़ाकर, चीख-चीखकर, मुट्ठी बांधकर आदि निर्देशों वाले संवाद।

दूसरी ओर, चिन्ता भरे प्रसंगों में **स्वगत कथन** भी अत्यन्त मार्मिक, अभिव्यजंक, सक्षिप्त और पात्र-प्रसंगानुकूल आदि बन पड़े हैं। होरी और रायसाहब के चिन्ताग्रस्त क्षणों से स्वगत इसी वर्ग में आते हैं। इसी प्रकार बौद्धिकता, विवेचन, विश्लेषण, दर्शन और जीवन-सत्यों से युक्त बने **चिन्तन भरे संवाद** (यथा मालती-मेहता-संवाद) तथा प्रगाढ़ता, हार्दिकता, भावुकता, आदि से मुक्त **भावात्मक या काव्यात्मक संवाद** (यथा होरी-धनिया का मजाक, होरी-महुआइन के मजाक, झुनिया-गोबर का प्रेमालाप, होरी-धनिया के झुनिया विषयक संवाद) देखे जा सकते हैं। एकदम सच तो यह है, "गोदान में संवादों के विविध रूप सामने आते हैं। उनके संवादों में कहीं भावात्मक है तो कहीं दार्शनिकता। कहीं उनके संवाद विचार प्रधान हो गये हैं तो कहीं काव्यात्मक। कहीं सवादों में नाटकीयता है तो कहीं मर्मस्पर्शिता।"

शास्त्रीय कर्त्तव्यों के निर्वाहक :—गोदान के संवाद अपने शास्त्रीय कर्तव्यों का भी पूरा-पूरा निर्वाह करने में सक्षम हैं :—

कथा-विकास में सहायक :—सर्वप्रथम आइये **कथा-विकास में सहायक** होने पर। निःसन्देह प्रत्येक उपन्यास में, बहुत सी घटनायें ऐसी होती हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता है या तो वे भूतकाल में हो चुकी होती हैं अथवा ऐसे स्थान और परिस्थिति में होती हैं जिनका उपन्यास से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु उपन्यास के कथानक की पूर्णता और चरम विकास की दृष्टि से उनका वर्णन करना आवश्यक होता है तो उपन्यासकार स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिये किसी ऐसे पात्र द्वारा उनका वर्णन करा देता है जो उस घटना से परिचित होता है और इस प्रकार घटनाक्रम आगे बढ़ जाता है। गोदान में भोला-होरी-संवाद तथा धनिया-होरी सवाद इसका सुन्दर उदाहरण हैं यथा निम्नांश देखिये :—

"धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं।···घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते ?···तुम्हारे सुझाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है ऐसा मर्द ही नहीं देखा···"

"आदमी वही है जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे···"

"···बस सज्जन वही है जो दूसरों की आबरु को अपनी आबरु समझे।"

"...औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो! कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।"

× × × × × ×

"और जो मैं इसी तरह तुझे मारूँ?"

"क्या कभी मारा नहीं है जो मारने की साध बनी हुई है?"

"इतनी बेदर्दी से मारता तो तू घर छोड़कर भाग जाती।..."

"ओहो! ऐसे ही तो बड़े दरद वाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा, दुलार करना सीखा ही नहीं।"

"अच्छा रहने दे · तू ही रूठ-रूठकर नैहर भागती थी। जब महीनों खुशामद करता था, तब जाकर आती थी।"

"जब अपनी गरज सताती थी, तब मनाने जाते थे, लाला! मेरे दुलारे से नहीं जाते थे।"

चरित्र-उद्घाटक :—संवाद कहने, सुनने और सम्बन्धित, तीनों की प्रकार के पात्रों के चरित्र-पक्ष का उद्घाटन करते हैं। कहने-सुनने वाले के चरित्र का उद्घाटन करना प्रत्यक्ष विधि कहलाता है तो सम्बन्धित (अनुपस्थित) पात्र का चरित्र उद्घाटन करना परोक्ष विधि। निःसन्देह 'गोदान' में दोनों ही प्रकार से चरित्र उद्घाटित करने वाले संवाद बहुतायत से मिलते हैं। होरी-धनिया, होरी-रायसाहब, होरी-भोला-सवाद यदि प्रथम विधि-प्रयोग के परिचायक हैं तो भोला-झुनिया के सम्बन्ध में होरी-धनिया की वार्ता, जमींदारों-अधिकारियों सम्बन्धी मेहता-रायसाहब की वार्ता, तथा गोबर से सम्बन्धित मालती-मेहता की वार्ता द्वितीय के। कहीं-कहीं लेखक ने दोनों ही विधियों का समन्वित रूप भी प्रयुक्त किया है यथा मेहता-गोविंदी का निम्न संवादांश देखिये :—

"ऐसी औरत तो कहीं मिलती ही नहीं।"

"क्यों? मिस मालती नहीं हैं? सुन्दरी, शिक्षित, गुणवती, मनोहारिणी और आप क्या चाहते हैं?"

"मिस मालती में वह एक बात भी नहीं है जो मैं अपनी स्त्री में देखना चाहता हूँ।"......

"तो आप स्त्री नहीं, कोई प्रतिमा चाहते हैं............मैं भी उसके दर्शन करती।"

"आप उसे खूब जानती हैं। वह एक लखपति की पत्नी है पर विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होती·····उसी देवी से बोल रहा हूँ।"

वातावरण-निर्माण में सहायक—साधारण हास-परिहास, प्रेम के भावमय क्षण, अन्तर्मन की स्वाभाविक स्थिति, अन्तस की समयोचित प्रतिक्रिया और वाह्य

स्थिति-परिस्थिति अर्थात् अन्तर्बाह्य वातावरण के निर्माण में भी 'गोदान' के संवाद पूर्णतया सहायक बने हैं। होरी-धनिया का पूर्वस्मृति सम्बन्धी हास-परिहास, गोबर-झुनिया का प्रथम प्रेमालाप, मालती मेहता की शिकार-प्रसंग की वार्ता, पठानवेशी मेहता के कथनादि इसी के कुछ प्रमाण हैं। निम्नलिखित संवाद देखिये —

"धनिया तो रो-पीट रही थी।"

"सचमुच तो रोती थी धनिया ?"

"इन्हें बकने दो तुम। पूछो, वह क्यों कागद छोड़कर घर से दौड़े आये थे ?"

"तुम्हें हीरा-हीरा कह कर रोती थी। अब लाज के मारे मुकरती है। छाती पीट रही थी।"

"पगली है और क्या ? अब न जाने कौनसा सुख देखने के लिये मुझे जिलाये रखना चाहती है।"

उद्देश्य-अभिव्यक्ति—कभी-कभी उपन्यासकार संवादों के अन्तर्गत पात्रों के मुख से रचना विषयक मन्तव्य प्रकट करता है या फिर किसी पात्र विशेष को ही अपना सवाहक (Mouthpiece) बना लेता है। प्रेमचन्द ने इन दोनों ही साधनों का खुला प्रयोग अपने प्रायः सभी उपन्यासों में किया है। 'गोदान' भी इसका अपवाद नहीं है। प्रो० मेहता का चरित्र इसका सर्वाधिक सशक्त उदाहरण है जिसके द्वारा लेखक ने अपनी विचारधारा और रचना-उद्देश्यों को पगे-पगे प्रकट कराया है। निम्न कथन देखिये—

(i) "···ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती। इसके लिये दुनिया के अच्छे से अच्छे पदार्थ चाहियें। जब तक समाज की व्यवस्था ऊपर से नीचे तक बदल न डाली जाये, इस तरह की मण्डली से कोई फायदा नहीं होगा।"

(ii) "···प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूंख्वार शेर है जो अपने शिकार पर किसी की आंख भी नहीं पड़ने देता।"

(iii) "खन्ना जी·····दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका सम्मान नहीं, उसकी दौलत का सम्मान है।"

(iv) "मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं रख सकता। मुझसे कोई स्त्री प्रेम का स्वांग नहीं कर सकती। मैं उसके अन्तःस्तल तक पहुँच जाऊँगा, फिर उससे अरुचि हो जायेगी।" इसी वर्ग में प्रो० मेहता की रायसाहब और अन्य मित्रों से की गयीं लम्बी-लम्बी बहसें, मालती से किये गये नारी विषयक तर्क-वितर्क तथा वीमेन्स क्लब में दिया गया भाषण आदि भी आते हैं। इसी भांति उपन्यास का मूलोद्देश्य (गोदान पर व्यंग्य) हीरा के मुख से कहलवाया गया है।

अन्य शास्त्रीय गुण :

पात्र और प्रसंग की अनुकूलता—रचना में स्वाभाविक और विश्वसनीयता

का समावेश करने तथा संवाद में यथार्थता और प्रभावोत्पादकता को लाने के लिये उसका पात्र—प्रसंगानुकूल होना परमावश्यक है। इसी से कहा गया है कि "Just as behaviour should proceed from character, so should speech.··· The dialogue should be neither desultory nor should it be an occassion for the author to air his views, it should serve to characterize the speaker and advance the story". इस दृष्टि से देखें तो 'गोदान' के संवाद एकदम सफल और गुणसम्पन्न बने मिलते हैं। प्रमाणस्वरूप होरी और प्रो० मेहता अथवा धनिया और मालती के कथन (और उनमें पाया जाने वाला भाषा-विचारगत अन्तर) यदि पात्रानुकूलता के प्रमाण हैं तो छोटे-सरल-गतिशील संवाद भावमय प्रसंगानुकूलता और मेहता-मालती या मेहता-रायसाहब के दीर्घ-सूक्ति भरे, दर्शन और बौद्धिकता से ओत-प्रोत कथन विचारप्रधान प्रसंगानुकूलता के साक्षी हैं। होरी, धनिया, भोला, झुनिया आदि के संवादों की ग्राम्य प्रचलित भाषा, मेहता के कथनों की बौद्धिकता-दर्शनपरकता, खन्ना के कथनों में रईसी अभिमान, तंखा के कथनों में उर्दू-प्रधानता और जिन्दादिली, ओंकारनाथ द्वारा मदिरा में धुत्त होने पर कहे गये कथनों में 'ने' का लोप, टूटी-बिगड़ी शब्दावली, व्यंजनपरक कोमल अक्षरों का बाहुल्य तथा पठान बने मेहता के कथनों में टूटी-फूटी, व्याकरण-दोषों से भरी हिन्दी की शब्दावली और उर्दू-फारसी शब्दों का खुला प्रयोग आदि अनेक बातें कथोपकथनों को एकदम पात्र-प्रसगानुकूल बना देती हैं।

स्वाभाविकता—गोदान के संवाद अधिकांशतः स्वाभाविक प्रतीत होते हैं और कथ्य को एकदम प्रभावशाली रूप में प्रकट कर देते हैं। एक उदाहरण देखिये—

"ऊख बेची है कि नहीं ?"
"हाँ, बेची है।"
"तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेचकर रुपया दूंगा।"
"हाँ, था तो।"
"फिर, क्यों नहीं देते और सब लोगों को दिये हैं कि नहीं ?"
"हाँ, दिये हैं।"
"तो मुझे क्यों नहीं देते ?"
"मेरे पास जो कुछ बचा है, वह बाल-बच्चों के लिये है।"

मर्मस्पर्शिता और रोचकता—पाठक को रचना की ओर आकृष्ट करने, भावपात्रादि को अभिव्यक्त करने और समग्रतः औपन्यासिक प्रभाव को बढ़ाने के लिये भी संवादों में मर्मस्पर्शिता और रोचकता का होना आवश्यक माना जाता है। 'गोदान' में, यदि मेहता जैसे पात्रों के कुछ बौद्धिकतापरक कथनों को छोड़ दें, तो निसन्देह अन्यत्र सभी स्थानों पर संवादों में ये गुण भी भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो

जाते हैं। होरी-धनिया के 'साठे-पाठे' वाले संवाद, झुनिया-गोबर का प्रथम प्रेमालाप, गाय विषयक धनिया-होरी के उत्सुकतापरक कथन, मेहता-गोविन्दी-संवाद, मेहता के पठानवेशी तथा ओंकारनाथ के मद्यपावस्था में कहे गये कथन इसी वर्ग के कुछ सशक्त प्रमाण हैं।

सरलता और सरसता—कहीं-कहीं विशेषतः हास-परिहास, व्यंग्य, भावमयता, प्रेमालाप आदि के प्रसंगों में प्रेमचन्द ने अत्यन्त सरल शब्दावली में और अत्यन्त सरस रूप में संवादों का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है। प्रमाणार्थ निम्नलिखित कथन देखिये—

"भाइयो! यह हम सब मर्दों की इज्जत का मामला है जिसके पास जो कुछ हो, सच्चे सूरमा की तरह निकाल कर रख दें। आपको इल्म की कसम! माशूक की अदाओं की कसम! अपनी इज्जत की कसम! पीछे कदम न उठाइये। भर दो! रुपये खर्च हो जायंगे, नाम हमेशा के लिये रह जायेगा।"

भावाभिव्यक्ति-क्षमता—प्रेमचन्द किस्सागो तो हैं ही, बात को संवादात्मक रूप में और अत्यन्त भाव-सक्षम बनाकर प्रस्तुत करना भी जानते हैं—अभिधा से लेकर व्यंजनात्मक और वक्रोक्ति से लेकर लाक्षणिकता तक। झुनिया-गोबर का एक संवाद देखिये—

"अब तुम काहे को यहाँ कभी आओगे।"

"अगर भिक्षुक को भीख मिलने की आशा हो तो वह दिन भर और रात भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।"

"तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।"···

"··तुम मुझसे भीख न माँग कर मुझे मोल ले सकते हो।·· और जानते हो, दाम क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाये देखूंगी, तो घर से निकाल दूंगी।"

कुछ दोष—'गोदान' के संवादों में कुछ दोष भी हैं। **सर्वप्रथम**, कहीं-कहीं संवाद **अपेक्षाकृत अधिक लम्बे** और **अतिशय बौद्धिकता या दर्शनपरकता** से भरपूर हैं जिसके फलस्वरूप एक ओर यदि नीरसता आती है तो दूसरी ओर कथ्य-विकास में भी बाधा पड़ती है। मालती-मेहता, मेहता-अमरपालसिंह, अमरपालसिंह-तंखा-ओंकारनाथ-सवाद ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं। इसी प्रकार, कहीं-कहीं सवादों में **ग्राम्यत्व या अश्लीलत्व** का दोष भी मिलता है यथा झुनिया चुहिया-संवाद की एक झलक देखिये—

"ले झुनिया, ···मेरे दूध आ गया।"

"तुम्हें दूध आ गया?"

"नहीं री, सच।"

"मैं तो नहीं पतियाती।"

"देख ले।"

"उसने अपना स्तन दबा कर दिखाया। दूध की धार फूट निकली।"...

"इधर तो तुम्हें कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ।"

"वही लड़की पेट-पोछनी थी। छाती बिलकुल सूख गयी थी।"

तीसरे, कहीं-कहीं **काव्यात्मकता या उपदेशपरकता** भी वाह्यतः आरोपित और अस्वाभाविक सी लगती है यथा मेहता-मालती के नारी विषयक संवाद, मिर्जा-मेहता के वेश्या-सुधार विषयक संवादादि।

चौथे, कहीं-कहीं पात्रों के **संवाद पात्र-विपरीत** भी लगते है, विशेषतः ग्रामीण कथा से सम्बन्धित पात्रों के कुछ कथन। इस सम्बन्ध में श्री गुलाबराय ने सशक्त उदाहरण देते हुए ठीक ही कहा है, "...गाँव के पात्र अपनी अवस्था से कुछ अधिक बुद्धिमान हैं और कहीं-कहीं पढ़े-लिखों की-सी बातें करते हैं। होरी के रायसाहब के घर जाने का जो धनिया और गोबर ने विरोध किया, उसमें आजकल के पढ़े-लिखे साम्यवादियों के वार्तालाप की झलक है। झुनिया का प्रेमालाप कुछ अधिक उग्र हो गया है जो प्रथम परिचय के लिये अस्वाभाविक है, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि झुनिया शहर में दूध बेचने के कारण इस विषय में पडिता हो गई थी।"[1] इसी प्रकार डॉ० इन्द्रनाथ मदान का यह कथन भी उल्लेखनीय है—"मध्यवित्त पात्रों के संवादों में न वैयक्तिकता है, न अपने वर्ग की विशेषता। कई पृष्ठों की लम्बाई के कारण कहीं-कहीं उनकी प्रकृति ही नष्ट हो गई है। कभी-कभी तर्क-वितर्कों से उनकी प्रवाहमयता को आघात पहुँचा है, और कभी तो उनमें व्यंग, परि-हास और तेज जरा भी नहीं रहा।"[2] यही बात रायसाहब, मेहता, मालती के लम्बे-लम्बे कथनों में आसानी से परिलक्षित हुई मिलती है।

निष्कर्ष—निःसन्देह 'गोदान' संवाद-योजना में पाये जाने वाले दोष अल्प हैं, दूसरे उनसे सम्बन्धित दोष होने के साथ-साथ अन्य कुछ गुण भी हैं दूसरी ओर, 'गोदान' की संवाद-योजना में हम पाते हैं कि उसमें प्रायः सभी प्रचलित संवाद-प्रकारों का भरा-पूरा समावेश है, वे प्राय. सभी आवश्यक शास्त्रीय कर्त्तव्यों की पूर्ति करने में सक्षम हैं तथा साथ ही साथ अनेकानेक शास्त्रीय गुणों से ओत-प्रोत भी हैं। सच तो यह है कि "कथोपकथन (या सवाद-संयोजन करने) में प्रेमचन्द जो को कमाल हासिल है।"[3] और अपने "समन्वित रूप में गोदान की सवाद याजना अनेक सराहनीय गुणो से ओत-प्रोत है।"[4]

१. प्रेमचन्द : उनकी कृतियाँ और कला : पृ० १२०
२. गोदान : पृ० १७१–७३
३. श्री विश्वम्भर मानव : प्रेमचन्द : पृ० १४०
४. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान––पृ० २६०

विवेच्य प्रश्न

१. संवाद-योजना से आप क्या समझते हैं तथा इस दृष्टि से 'गोदान' उपन्यास कैसा बन पड़ा है ? समुचित प्रमाण देते हुए बताइये।

२. "वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिये।" प्रेमचन्द के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उनके 'गोदान' की संवाद-योजना को स्पष्ट कीजिये ।

३. 'गोदान' में संवादों के कौन कौन से रूप प्रयुक्त मिलते हैं तथा उनकी क्या-क्या विशेषताएँ हैं ? उपयुक्त उद्धरण देते हुए बताइये ।

४. संवाद उपन्यास में क्या-क्या कार्य करते हैं तथा 'गोदान' के संवाद उनकी पूर्ति करने में कहाँ तक सफल सिद्ध हैं ? तर्कसम्मत उत्तर दीजिए ।

५. श्रेष्ठ संवाद-योजना के आवश्यक गुण बताते हुए 'गोदान' की समीक्षा कीजिए।

६. 'गोदान' के संवादों (कथोपकथनों का गुण-दोष-विवेचन करते हुए उनकी सफलता (दायक विशेषताओं का निर्धारण कीजिए ।

७. गोदान के आधार पर सिद्ध कीजिए कि "कथोपकथन में प्रेमचन्द जी को कमाल हासिल है।"

८. "समन्वित रूप में 'गोदान' की संवाद योजना अनेक सराहनीय गुणों से ओत-प्रोत है" प्रस्तुत कथन की समीक्षा कीजिए ।

९. 'गोदान' के संवाद-शिल्प का सप्रमाण परिचय दीजिए।

१० "गोदान के संवाद प्रेमचन्द की संवाद-योजना का पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व करते हैं।" सिद्ध कीजिए।

१५ 'गोदान' : देशकाल-समीक्षा

(महाकाव्यात्मक उपन्यास)

[ग्राम्य (भारतीय) जीवन का दर्पण, वातावरण-चित्रण, समकालीन परिस्थितियाँ, ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य, ग्राम्य जीवन की दुखांतिकी, एक अलोमहर्षक ट्रैजेडी राजनीतिक विचारधारा, महाजनी सभ्यता का इतिहास, आँचलिकता, युग-प्रतिनिधित्व, राष्ट्रीय उपन्यास।]

देशकाल-चित्रण और उपन्यास-रचना—देशकाल शब्द में देश (रचना के) 'स्थान' का द्योतक है और काल (रचना की कथा के घटित होने वाली) 'अवधि' का। उपन्यास-रचना में कथा-पात्र विषयक वाह्य वातावरण या पृष्ठभूमि का निर्माण करने, रचना को सन्याफास' से पूर्ण करने तथा उसमें प्रभावान्विति लाने के लिये ही देश-काल का चित्रण किया जाता है। इसी से, देशकालानुगत उपन्यासकार को अपने उपन्यास में विभिन्न वाह्य परिस्थितियों (यथा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक आदि) का अंकन करना लाभप्रद ही नहीं, आवश्यक भी होता है। शास्त्रीय दृष्टि से, वर्णन की यथार्थ-परकता, सूक्ष्मता या गहनता, आवश्यक संतुलन और प्रमाणपुष्टता आदि श्रेष्ठ देश-काल-चित्रण के अनिवार्य गुण बताये गये हैं।

देशकाल-चित्रण और प्रेमचन्द—प्रेमचन्द निर्विवाद रूप से युग-द्रष्टा और युग सृष्टा कोटि के साहित्यकार हैं जिन्होंने आँख खोलकर अपने युग को देखा ही नहीं, समझा और चित्रित भी किया है। इतना ही नहीं वरन् वे तो इसको साहित्यकार के लिये अनिवार्य और स्वाभाविक भी मानते हैं। स्वयं उन्होंने कहा है, "जब हम देखते है कि हम भांति-भांति के राजनैतिक, सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है, दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करूण क्रन्दन सुनायी देता है, तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे ?"[1] तथा "...जो वास्तविक जिन्दगी की गहराइयों में डूबा है...वही लेखक ऐसे उपन्यास रच सकता है, जिनमे प्रकाश, जीवन और आनन्द-प्रदान की सामर्थ्य होगी।"[2] सच में तो प्रेमचन्द ने सर्वाधिक महत्व दिया ही 'देश-काल, को है।...."साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिये उससे अविचलित रहना असभव हो जाता है। ..साहित्य ही सच्चा इतिहास है क्योंकि उसमें अपने देश और काल का जैसा चित्र होता है, वैसा कोरे इतिहास में नहीं हो सकता। साहित्य अपने देश-काल का प्रतिबिम्ब होता है।("[3] कहना न होगा कि अपने कृतित्व में प्रेमचन्द ने

१–३ प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ५३, ७१ तथा १००-१०१

अपनी इन्हीं मान्यताओं का पालन किया है, एकदम डटकर, जिसका सर्वोत्तम प्रमाण है—'गोदान'।

'गोदान' का देश-काल-चित्रण—'गोदान' का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९३६ में हुआ था और रचना-परिपक्वता की दृष्टि से यह प्रेमचन्द की प्रौढ़तम और दीर्घकाय रचना थी। समग्र प्रभाव में यह उपन्यास किसी समयावधि या अंचल (प्रदेश) विशेष तक सीमित नहीं है फिर भी इसमें लगभग लेखक का समकालीन देशकाल–विशेषतः सन् १९३०-३६ की अंकित है।

कथा और पात्राधार पर, 'गोदान' के देशकाल-अकन को दो वर्गों में रख सकते हैं—(१) ग्राम्य सम्बन्धी तथा (२) नगर सम्बन्धी।

(१) ग्राम्य सम्बन्धी देशकाल-चित्रण—गोदान की आधिकारिक या मूल कथा बेलरी ग्राम-निवासी होरी नामक किसान से सम्बन्ध है। उसी के इर्द-गिर्द है–बेलरी गाँव और उसके निवासियों की कथा। इस कथा के पात्र अपनी समग्रता में ग्राम्य समाज के विविध पक्षों और जन-जीवन के विभिन्न रूपों को उजागर करते हैं।

हर गाँव की भाँति बेलरी गाँव और उसके निवासियों के जीवन का मूल केन्द्र बिन्दु है—**आर्थिक पक्ष** जिसमें एक ओर होरी और उसके परिवार के लोग सामान्य कृषक-मजदूर के रूप में शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं तो दूसरी ओर जमींदार रायसाहब, पटवारी परमेश्वरी, कारिन्दा नोखेराम, शहरी महाजन के एजेन्ट झिंगुरीसिंह जैसे विविधपक्षीय एवं दातादीन-मातादीन जैसे धर्माधीश आदि शोषक वर्ग का। इस प्रकार एक ही गाँव में अर्थ-वैषम्य, वर्ग-संघर्ष और अर्थाधारित जीवन-स्तर सभी एकत्र हुए मिलते हैं। इन्हीं के द्वारा लेखक ने अपने युग की ग्राम्य महाजनीय सभ्यता एवं उसके शिकार होरी-परिवार की विपन्नता के बड़े सच्चे और प्रचलित चित्र उपस्थित किये हैं। शोषक वर्ग निरंकुश, अधिकार-सम्पन्न, वैभव-विलास में लिप्त तथा नाना तिकड़मों और अवगुणों से भरा है तो शोषित एकदम विवश, निरुपाय, हताश, व्यथित, नंगा-भूखा और विपन्नता की चरम सीमा तक जा पहुँचा हुआ जहाँ जीवन की एकदम साध-गऊ की लालसा की इतिश्री भी अंतिम, एकमात्र जमा पूँजी बीस आने के रूप में अधूरी ही नहीं रहती, छिन भी जाती है, या कहिये 'गोदान' की आड़ में छीन ली जाती है। इसी शोषक वर्ग के लिए कृषक नरम चारा है जिसको ये सब अंतिम साँस तक, मरणकाल तक में, चरते रहते हैं। वे इस किसान के श्रम को और श्रमजन्य उत्पादन को नहीं, कुल जमा पूँजी बीस आने तक को ले लेते हैं—कभी नजराने के नाम पर तो कभी लगान, डाँड या दान के नाम पर। सर्वाधिक सशक्त माध्यम या साधन है—ऋण देकर उसका ब्याज वसूलते रहता जो आखिरी साँस तक भी पूरा नहीं हो पाता। मूल तक तो बात ही नहीं आने पाती, शोषित विपन्न ब्याज चुकाने में स्वयं ही अपने मुँह का कौर इनको सौंप देता है—क्योंकि विवश है। होरी का एक-एक दाना दे देना, तथा शोभा-हीरा का ऋणग्रस्त रहकर गालियाँ खाना इसी के साक्ष्य हैं। इस पर भी "सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। पिसते थे, लुटते थे···खलिहानों में अनाज मौजूद

है पर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो···भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों (शोषकों) का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है।" फलतः ये शोषित (होरी) यही मानने-करने को विवश है कि "जब दूसरे के पाँवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है" पर व्यवस्थाजन्य विवशता कि 'कुशलता' मरते-मरते भी नहीं रह पाती—"आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और···बोली—महाराज, घर में गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।"

जहां तक प्रश्न है— गाँव की सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण का तो उसको भी लेखक ने बड़े व्यापक फलक पर और एकदम यथार्थमय रूप में अंकित किया है। 'गोदान' के प्रारम्भ में ही ज्ञात हो जाता है कि होरी परिवार संयुक्त था किन्तु लगभग टूट गया था। शोभा-हीरा विषयक होरी का प्रेम-भाव उसके बाहरी रूप से जुड़े होने का साक्षी है तो हीरा-धनिया का वाक्युद्ध, गाली-गलौज, हीरा विषयक धनिया के कथन, गाय आने पर धनिया की आशंकायें और हीरा द्वारा गाय को विष दिये जाने, बाँस विषयक विवाद आदि में तत्कालीन संयुक्त परिवार की वास्तविक स्थिति ही उजागर हुई मिलती है। इसी का एक कारण बनता है— होरी को छोड़ और अपनी पत्नी बच्चे को साथ लेकर किया गया गोबर का नगर-प्रस्थान (पलायन)। निःसन्देह, ग्रामीण वातावरण का समाज विषयक मूलस्तम्भ है—जाति-वर्ण-व्यवस्था और उसका कट्टरता भरा अनुकरण। यह व्यवस्था अर्थाधारित भी है और जन्माधारित भी। होरी का अर्थाभाव से ही निम्न स्तरीय होना प्रथम का तथा सिलिया-प्रसंग द्वितीय का सशक्त प्रमाण है। यूं, लेखक ने अर्थाधारित व्यवस्था के शोषक (रायसाहब और दातादीन आदि) तथा शोषित (होरी-परिवार) दोनों ही वर्ग लिये हैं तो साथ ही ब्राह्मण (दातादीन-मातादीन), क्षत्रिय (रायसाहब), वैश्य (दुलारी सहुआइन) तथा शूद्र (सिलिया) के साथ-२ अहीर (भोला-झुनिया) आदि जातिय पात्रों को भी। बिरादरी का भूत डसता तो सबको है किन्तु निम्न-शोषित वर्ग को अधिक। यूं, पं० दातादीन का लड़का मातादीन चमारिन से फँसा है, धर्मनिष्ठ पटेश्वरी विधवा कहारिन से, झिंगुरीसिंह एक ब्राह्मणी को घर में रखे हुए है तो कारिन्दा नोखेराम-नोहरी के अवैध सम्बन्ध भी ग्राम-विख्यात है जबकि धनिया और झुनिया एकनिष्ठ पति-प्रेम की उपासिका हैं। दूसरी ओर, जाति भेद के कारण ही गोबर-झुनिया सम्बन्ध पर रार ही नहीं मचती, भरी पचांयत में होरी को डांड (जुरमाना) का दण्ड भी भरना पड़ता है। धनिया का यह आक्रोश वस्तुतः कड़वा सत्य है कि "वही काम बड़े-बड़े (उच्च जाति या श्रेणी के) करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी 'मरजाद' बिगड़ जाती है।" इस पर भी छोटा आदमी (होरी) अपनी 'तथाकथित मरजाद' के लिये पिसता रहता है, कदम-कदम पर मरता और अंधानुकरण करता रहता है। वह आजीवन इसी भ्रम में (परम्परा या संस्कार

जन्य भय में) फँसा रहता है—"हम सब बिरादरी के चाकर हैं··बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे।" इसी प्रकार, पारस्परिक हँ ी (दुलारी-होरी)—झगड़े (धनिया-हीरा), हुक्का-पानी, बिरादरी-बाहर, डांड आदि प्रथायें, पचायत का एकाधिपत्य, अन्तर्जातीय वैध- अवैध सम्बन्ध, गऊहत्या, अशिक्षा, अन्ध-विश्वास, दहेज, अनमोल विवाह आदि विविध सामाजिक पक्षों के सच्चे चित्र गोदान में स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं।

ग्राम्य समाज का एक सशक्त पक्ष है—धार्मिक परिस्थिति। नि सन्देह, गाँव में सर्वाधिक आदर पाने वाला या कहिये स्वयं को आदर का पात्र समझने वाला ब्राह्मण वर्ग है जिसका प्रतिनिधित्व करते हैं—पं० मातादीन और उनका पुत्र दातादीन। घर आयी कुर्की को बचाना हो या मरणासन्न होरी से 'बीस आने की कुल पूंजी" का गोदान कराना या फिर खुले-खजाने सिलिया चमारिन से अवैध सम्बन्ध बनाये रखना, ग्राम्य-समाज में उनके लिये सब माफ है। यूं गोबर जैसे नवयुवक उनका मजाक उड़ाते हैं किन्तु कर कुछ नहीं सकते, बिगाड या रोक भी नहीं सकते। तथाकथिक धर्म-नियता बने ये लोग पंच-परमेश्वरों में भी हैं और पगे-पगे जजमानों का शोषण करने वालों में भी। हाँ, वाह्याडम्बरों में ये अवश्य उस्ताद हैं जिनसे इनके पाप भी पुण्य बन जाते हैं। बेगार कराना हो, असामियों को भड़काकर लड़वाला हो, दूसरों के झगड़ों में स्वयं पंच बन जाना हो या 'सारे गाँव को अपने आतंक से कंपाना हो' इस वर्ग के लिये आम बात या प्रिय शगल हैं। सामान्य वर्ग तो संस्कारों की मरजादा का निर्वाह करने, अन्धविश्वासों से डरने, टोने-टोटके या किंवदन्तियों में रमने और सब मिलाकर इनका 'भोजन' बनने के लिये ही विवश है—समाज के भय-वश और संस्कार के भय-वश, दोनों ही कारणों से। इसी से, होरी क्या मानो सारा ग्राम्य जनसमाज ही यह मानता है कि "छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं" हाँ, गोबर वाला नवयुवा इतना कहने का साहस अवश्य जुटा चुका है कि, "···कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो डाँड लगाकर उसका घर लूट लेते हो।" निःसन्देह, यह कहना भी वस्तुतः भड़ास निकालना ही है, सक्रिय विरोध करना नहीं। पुरुष वर्ग ही नहीं, गाँव का सामान्य नारी-समाज तो इससे भी कहीं आगे है, अन्धविश्वासों और भाग्य-वादिता से लदा-भरा—"देवी मैया तुझे लील जायें भगवान करे, तू कोढ़ी हो जाये।" या फिर "धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। ···भवानी उसके सिर आ गयी। फिर तो···उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोगा की मूँछे पकड़ कर उखाड़ लीं, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी।" यहाँ तक कि कुछ दिनों तक तो लोग उसके दर्शन करने आने लगे।

इसी ग्राम्य समाज की यथार्थता भरे विभिन्न दृश्यों, स्थितियों और जीवन-पक्षों को उद्घाटित करने में लेखक ने अन्य कई प्रकार से भी अपने चित्रांकन-कौशल का परिचय दिया है यथा पर्व (होली का हुड़दंग, झुनिया के पुत्र-जन्मोत्सव पर

धनिया का गीत गाना), टोटके (काला धागा और काला कपड़ा घर आयी गाय के बाँधना ताकि किसी की बुरी नजर न लगे), वेशभूषा (गाढ़े की लाल साड़ी, कमर में लंगोटी, गले में हंसुली और हुमेल, कानों में कर्णफूल, बालियाँ, चांदी के चूड़ें-कंगनादि आभूषण), खानपान (जौ की रोटी, अरहर की दाल, कच्चे आम, भाषा (विभिन्न गालियाँ, स्थानीय शब्द), वस्तुयें (यथा अंगोछा, खौंचा, बीड़ा, कांसे की थाली) कथा-स्थान (कच्ची पगडंडी, आमों के झुरमुट, ऊख के पौधों से घिरा कच्चा रास्ता, खलेटी, मण्डप) तथा प्राकृतिक वातावरण (यथा 'लू चल रही थी, बगुले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो") आदि ।

इस प्रकार, 'गोदान' में बेलारी के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपनी समकालीन ग्राम्य परिस्थितियों का एकदम यथार्थ, व्यापक, गहन, सूक्ष्म और विश्वसनीय चित्रण किया है । यहाँ तक कि स्वयं ग्राम्य समाज से सम्बन्धित रहने वाले प्रेमचन्द अपने इस चित्रण में मानो सम्पूर्ण भारतीय ग्राम्य जीवन का एक-एक कोना झाँक आये हैं । निःसन्देह, गोदान के गाँव में (अन्य तत्कालीन ग्रामों की भाँति ही), "···गाँव की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियां हैं, टूटी-फूटी झोंपड़ियाँ हैं, गांव की ऊबड़-खाबड़ धरती को अपने रक्त से सींचने वाले, अनवरत अनाचार-अत्याचार के शिकार, शोषण की चक्की में पिसने वाले नंगे, अधनंगे, बूढ़े-जवान, स्त्री पुरुष-बालक, फटेहाल, भूखे, अधमरे ग्रामीण हैं ।'[1] साथ ही है, शोषणकर्त्ता वर्ग और उसके विभिन्न प्रतिनिधि—अपने आप में प्रभुता-सम्पन्न, धन-ऐश्वर्य से परिपूरित, विलासिता-अनाचार-अत्याचार में लिप्त, आडम्बर और पाखंडों से भरे, असामियों को प्रत्यक्ष-परोक्ष नाना हथकंडों, चालों और समाज-प्रचलित भयों से आक्रांत करके, मरण-काल तक में लूटने-चूसने वाले । इनकी शोषित-शोषक की जीवन गाथा, वर्ग-वैषम्य, अर्थ-धर्म-संघर्ष की खुली-सच्ची तस्वीर है—'गोदान' जिसमें, "···शोषण और अभावों की चोट में आहत मानवता की मर्मान्तिक वेदना सहस्रोन्मुखी होकर···एक ऐसी तेज-रेखा खींचती है कि व्यक्ति (पाठक) स्तम्भित रह जाता है ।"[2] गहराई से सोचें तो यह समस्त अंकन महत्व प्रेरणा और उद्देश्य, युग-काल की समग्रता से परिपूण, गम्भीर, तीव्र प्रभावान्विति, सशक्त प्राणवत्ता तथा व्यापक-गहन पात्र-कथा-वातावरण चित्रण अर्थात् महाकाव्य के नाना तत्वों से ओत-प्रोत भी बन गया है । इसी से, किसी ने इसे "आधुनिक किसान-जीवन का महाकाव्य" कहा तो किसी ने 'एपिक (Epic) इतिहास", कभी इसे "भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का यथार्थ चित्र" माना गया तो कभी "भारतीय ग्रामीण जीवन का श्रेष्ठतम महाकाव्य" और कभी "ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य", "ग्राम्य जीवन की दुखांतिक", "एक अलोमहर्षक ट्रैजेडी" तथा "महाजनी सभ्यता का इतिहास ।" सारांश में, डॉ० त्रिभुवनसिंह के शब्दों में, "गोदान ग्रामीण जीवन के वास्तविक

१—२ डॉ० सुभद्रा : प्रेमचन्द साहित्य में ग्राम्य जीवन : पृ० १६८

पक्ष का गद्यात्मक महाकाव्य है।...गोदान में अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसव व्यथा भी।"[1] निःसन्देह, गोदान को "ग्रामीण संस्कृति का दस्तावेज, कृषक जीवन का दर्पण, ग्राम्य जीवन की गीता" आदि नाना सच्चे, सटीक विशेषण दिये जा सकते हैं।

(२) **नगर सम्बन्धी देशकाल चित्रण**—'गोदान' के देशकाल-चित्रण को व्यापकता और समाज-पूर्णता मिली है—नगरविषयक देशकाल-चित्रण से। जिसके अन्तर्गत लेखक ने मुख्यतः रायसाहब की मित्र-मंडली की नगरीय परिस्थितियों का अंकन किया है।

सर्वप्रथम आइये **आर्थिक परिस्थिति-चित्रण** पर। निःसन्देह, इसके अन्तर्गत भी लेखक ने वर्ग-वैषम्य और संघर्ष तथा तदजन्य विविध वर्गीय पात्रों की वैचारिक प्रतिक्रियाओं को ग्रहण किया है। मि० चन्द्रप्रकाश खन्ना जैसे मिल-मालिक शोषक वर्ग के प्रतिनिधि हैं तो उनके हड़ताली कर्मचारी चुहिया, गोबर आदि शोषित वर्ग के। हाँ, मध्य वर्ग की स्थिति का यहाँ एकदम अभाव है। वैचारिक पक्ष के उद्घाटक हैं मुख्यतः प्रो० मेहता और उनकी समर्थिका मालती। निःसन्देह शोषक (अर्थात् पूँजीपति या धनाढ्य वर्ग) में कुटिलता, आडम्बर, ऐशो-आराम, विलासिता, अन्याय-अत्याचार और अनीति की यहाँ भी प्रमुखता है। खन्ना इसका सर्वोत्तम प्रतिनिधि है—दस साल पहले का क्लर्क किन्तु आज का मिल मालिक, बैंक डायरेक्टर, पत्नी की उपेक्षा कर 'मालती का उपासक', अपने ही सिद्धांतों की हत्या करने वाला, पैसे के बल-बूते पर और पैसे के लिये ही हर अच्छा-बुरा काम करने वाला, नकली बाटों के प्रयोग से लेकर रायसाहब जैसे दोस्त तक को संकट में धोखा देने वाला। उधर शोषित वर्ग ? यहाँ भी वहाँ अर्थात् 'गंदे बदबूदार बिलों में रहने वाला, फटा-पुराना पहनने वाला, कुत्ते का पेट भरने वाला।' सच में तो, सभी नगरीय पात्रों में केवल मेहता, गोविन्दी और बाद में मालती इस वर्ग के हिमायती हैं लेकिन निःसन्देह मौखिक या बौद्धिक स्तर तक सीमित।

सामाजिक दृष्टि से नगरीय स्थिति निःसन्देह ग्राम्य स्थिति से कहीं अच्छी है—निःसंकोच जीवन-यापन, नारी-स्वातंत्र्य, आधुनिकता से युक्त उन्मुक्त परिवेश रहन-सहन और निर्बाध नर-नारी सम्बन्ध। किन्तु साथ ही गोविंदी जैसी घरेलू स्त्री (पतिव्रता) का उपेक्षा भरा जीवन तथा गपड् नामक कश्मीरी पंडित का एकदम स्वच्छन्द और उच्छृंखल परिवार। रायसाहब के पुत्र-पुत्री भी, इसी आधुनिकता के नाम पर, स्वच्छन्दता को भोगने वाले हैं। नारी की शहरी जिन्दगी का पूरा पूरा खाका मेहता के भाषण में देखा जा सकता है।

निःसन्देह, 'गोदान' में समकालीन **राजनीतिक परिस्थिति** अपेक्षाकृत कम है और जो है, वह भी मुख्यतः वैचारिक स्तर की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था की असफलता, साम्यवादी विचारों पर आधारित श्रमिक हड़ताल, वोट, रायसाहब-सूर्यप्रताप

१. देखिए—प्रेमचन्द (सं० ड़ॉ० सत्येन्द्र) : पृ० ११०

सिंह की निर्वाचन में प्रयुक्त हथकंडेबाजियाँ, आंग्ल सत्ताधारियों और अफसरों की अंधभक्ति, डाली, भेंट, रिश्वत, भ्रष्टाचार, उच्च वर्ग का (यथा रायसाहब और खन्ना का बतौर फैशन सत्याग्रह संग्राम में शामिल होना, यश-अर्थ-लोभ में जेल जाना आदि ऐसे ही कुछ संकेतक तत्व हैं। प्रो० मेहता और उनके मित्रों की राजनीतिक विषयों पर की गयी बहसें भी वस्तुतः तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं (मुख्यतः साम्यवाद, गांधीवाद) तथा मानसिक स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रो० मेहता तो एकदम गांधीवाद का ही प्रतिरूप हैं—वस्तुतः लेखकीय विचारधारा के उद्घाटक।

'गोदान' का कोई भी कथा-प्रसंग राजनीतिक से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित नहीं है यद्यपि कुछ सूच्य कथनों से रायसाहब, सूर्यप्रतापसिंह, खन्ना और मालती आदि का स्वतन्त्रता-संग्राम में जेल जाना तथा पहले दो का निर्वाचन में भाग लेने का पता अवश्य चलता है। वैचारिक स्तर पर देखें तो उस समय का ग्राम्य और नगर दोनों का ही उच्च अर्थात् शोषक-पूंजीपति वर्ग आंग्ल प्रभूओं और उनकी अफसरशाही की चाटुकारिता में लगा था—कभी भेंट-डाली देकर तो कभी चंदे में मोटी-२ रकमें (वस्तुतः रिश्वत) देकर। निःसन्देह, यह धनराशि गरीबों-शोषितों के खून से जुटायी जाती थी। स्वयं रायसाहब ही इस तत्कालीन स्थिति को प्रत्यक्ष कर देते हैं—"...जो हुक्काम के तलवे चाटता हो अपने अधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता।...साहब शिकार खेलने आएँ या दौरे पर, मेरा कर्त्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूँ—हम सिजदे करने को भी तैयार रहते हैं...अफसरों के सामने दुम हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपा-पात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है" तथा, "मैं उस वातावरण में पला हूँ, जहाँ ईश्वर है और जमींदार ईश्वर का मन्त्री।"

साम्यवादी विचारों के तथाकथित समर्थक भी इसी वर्ग के लोग हैं—निःसंदेह 'हाथी के दांत' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुये। इसी साम्यवाद की पोल मेहता खोल देते हैं—"आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। आप रूस की मिसाल देंगे। वहां इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारी का रूप ले लिया है। दूसरी ओर, मालती भी, उस समय के एक वर्ग—तथाकथित देशभक्त की पोल खोलती है—"आप बनते तो हैं आदर्शवादी और सिद्धांतवादी, पर अपने फायदे के लिये देश का धन विदेश भेजते हुये आपको जरा भी खेद नहीं होता।" वस्तुतः, मालती भी क्रमशः मेहता के मुख-स्वर ही कहती है जो आद्योपान्त गांधीवादी विचारों को मुखर करते रहते हैं, साथ ही साथ वोट, प्रजातन्त्र की असफलता, निर्वाचन का खोखलापन तथा श्रमिक वर्ग की हिमायत, अहिंसाजन्य आन्दोलन आदि तत्कालीन राजनीतिक पक्षों-स्थितियों को भी उजागर कर देते हैं।

महाजनी सभ्यता का इतिहास—वस्तुतः ग्राम्य और नगर दोनों की ही परिस्थितियों के सच्चे अंकन में लेखक ने सर्वाधिक और सर्वसशक्त रूप में 'अर्थ' पक्ष

को ही लिया है और समग्र रूप में समकालीन महाजनी सभ्यता का सच्चा चिट्ठा इतिहाससम्मत बनाकर प्रस्तुत किया है। गाँव का महाजन, धनिया के आक्रोश भरे किन्तु सच्चे शब्दों में, 'ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले सूद-ब्याज, डेढी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो" और लगभग यही स्थिति थोड़े सभ्य रूप में शहरी महाजनों (पूंजीपतियों) की है। प्रो० मेहता के शब्दों में, "आप उनकी गोटियाँ छीन कर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं।···जो अपनी जान खपाते हैं उनका हक उन लोगों से ज्यादा है जो केवल रुपया लगाते हैं।" निःसन्देह, समाजव्यापी विभिन्न प्रकार के महाजनों—जमींदार, ऋणदाता, पंच, सरकारी रिश्वतखोर पुलिस और कर्मचारी, पूंजीपति, तथाकथित बुद्धिजीवी (पत्रकार, वकील आदि) तथा पंडित वर्ग-के एक से एक हथकंडे, रहन-सहन, क्रिया-कलाप, विचारधारा आदि एव इनके सहायक प्रसारक तत्वों का 'गोदान' सच्चा दस्तावेज बना मिलता है।

आंचलिकता का समावेश—आंचलिकता का लाक्षणिक अर्थ है—जनपद या क्षेत्र विशेष जबकि आंचलिक उपन्यास उसे कहा जाता है जिसमें किसी स्थान या क्षेत्र विशेष का सम्पूर्ण जन-जीवन अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ सजीव रूप में प्रतिबिम्बित किया गया हो। ये विशेषतायें हैं—समसामयिक जन-चेतना एवं बोध की प्रचुरता, आंचलिक जीवन का यथार्थपरक अंकन, लोक-जीवन और संस्कृति का पुनरुत्थान, अंचल परिप्रेक्ष्य में निर्मित कथा, प्रसग और पात्र, अंचल-निवासियों की उत्थान-लालसा एवं सघर्षों का चित्रण, लोक भाषा, प्रकृति जीवन-मूल्यों की स्थापना तथा ग्राम सुधार एवं संस्कृति परिष्कार आदि।

इस कसौटी पर 'गोदान' को परखें तो निःसंन्देह यह एक आंचलिक उपन्यास प्रतीत होता है। अवध प्रान्त के दो समीपस्थ गांव-सेमरी और बेलारी एवं लखनऊ नगर गोदान की ग्राम्य-नगर कथाओं की भूमि हैं और समस्त क्रिया-कलाप और पात्रादि भी यहीं से सम्बन्धित हैं। निःसन्देह, प्रेमचन्द ने 'ग्राम्य जीवन का कोई भी पक्ष, कोई भी स्थिति, कोई भी वर्ग और कोई भी समस्या ऐसी नहीं छोड़ी है जिसको गोदान में स्थान न मिला हो। यह भी सच है कि उन्होंने इस जीवन को बड़ी व्यापकता, सूक्ष्मता, मर्मस्पर्शिता और सबसे अधिक यथार्थमयता से अंकित किया है। फलतः समसामयिक जीवन जन-चेतना, संस्कृति, संघर्ष, भाषा आदि से लेकर रहन-सहन, रीति-रिवाज तक 'गोदान' में बड़े विस्तार से और एकदम सच्चे रूप में मिलते हैं।

फिर भी, गहराई से देखें तो 'गोदान' शुद्ध आंचलिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। कारण? सर्वप्रथम तो 'गोदान' किसी स्थान या पात्र विशेष की ही गाथा नहीं है वरन् सम्पूर्ण भारतीय समाज का-विशेषतः ग्राम्य समाज का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार, उपन्यास की मूल समस्यायें, कथ्य, स्थापनायें आदि भी सर्वव्यापी हैं; उनको किसी सीमित परिवेश में ही बद्ध करके देखना एकदम गलत है।

वस्तुतः 'गोदान' में 'शुद्ध आंचलिकता' नहीं वरन् 'स्थानीय रंग' (Local Colour) है जो स्वाभाविकता और प्रभावात्मकता को उत्पन्न करने के लिये लाया गया है, मूल तत्व के रूप में नहीं, मात्र साज-सज्जा के रूप में। यह लेखक का कौशल ही कहा जा सकता है कि उसने यह स्थानीय रंग भी इतना चमकीला और गाढ़ा बनाकर प्रस्तुत किया है कि वह 'आंचलिकता' का सत्याभास कराने तक में अत्यन्त सफल बन गया है।

युग-प्रतिनिधित्व— स्तुतः "गोदान को उस युग की कलात्मक रिपोर्ट अथवा उस युग तक के विभिन्न विचारों का श्रेष्ठ कलात्मक समन्वय"[1] कहा जा सकता है। कारण "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, अपने आविर्भाव-काल से सन् १६३६ तक हिन्दी-उपन्यास ने जो-जो रूप धारण किये, उन सबकी चरमोपलब्धि गोदान में दृष्टिगोचर होती है और वह भी इस प्रकार कि 'गोदान' को हिन्दी-उपन्यास के इतिहास में सर्वप्रथम मील का पत्थर माना जा सकता है।"[2] अपने युग की आर्थिक सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति-परिवेश को ग्राम्य समाज की एक-एक तस्वीर को, मानव-जीवन के महत्व् प्रश्नों-समस्याओं को तथा समग्रतः समकालीन जीवन को प्रेमचन्द ने गोदान में डटकर प्रकाशित किया है; यहाँ तक कि यह रचना मात्र उपन्यास ही नहीं, इतिहास-ग्रन्थ भी बन गयी है। वस्तुतः "गोदान में देशकालानुकूल वातावरण-योजना उपन्यास की मूल आत्मा से इतनी तदाकार हो गयी है कि उपन्यास को पढ़ते हुये हम उसकी स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थता, सूक्ष्मतादि अनुभव करके उपन्यासकार की गहन अन्तर्दृष्टि के प्रति विस्मय-विमुग्ध हो उठते हैं। यह व्याख्या-विश्लेषण के स्थान पर अनुभवगम्य ही अधिक है।"[3] फलस्वरूप, अपनी समग्रता और व्यापकता में "गोदान आधुनिक भारतीय जीवन का दर्पण"[4] या 'एपिक इतिहास' बन गया है, संघर्ष-संग्राम, घात-प्रतिघात और कुरबानियों-बलिदानों से एकदम ट्रैजेडी, "ऐसी ट्रैजेडी जो आज सारे भारतवर्ष के, बल्कि सारी दुनिया के अभी तक के अजागरूक शोषितों की ट्रैजेडी है।"[6] निःसन्देह, "साहित्य में कभी-कभी ऐसी कृतियों का सृजन होता है जो युग जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं और साथ ही अपने प्रभाव से नये युग के द्वार भी खोलती हैं। प्रेमचन्द का 'गोदान' भी हिन्दी साहित्य में एक ऐसी ही युग-प्रवर्त्तक रचना है।"[7]

---

१. डॉ० सत्येन्द्र : प्रेमचन्द : पृ० ५१
२ डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास—उपलब्धियाँ : पृ० ३६
३. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान : पुनर्मूल्यांकन : पृ० ९४८
४. विश्वम्भर मानव : प्रेमचन्द : पृ० १०४
५. मन्मथनाथ गुप्त : प्रेमचन्द—उनकी कृतियाँ और कला : पृ० १०४
६. वही
७. श्री गोपाल कृष्ण कौल : हिन्दी के गौरव ग्रन्थ

राष्ट्रीय उपन्यास ?

गोदान न तो राजनीतिक उपन्यास है और न राष्ट्र-भक्ति या राष्ट्रीयता के किसी जयघोष को प्रकट करता है। इसमें न तो राष्ट्रव्यादी उत्थान-पतन को अंकित किया गया है न राष्ट्रीयता की भावात्मक एकतादि की पुष्टि की गयी है। अतः अपने शास्त्रीय रूप अथवा मान्य रूढ़िगत अर्थों में 'गोदान' दूर-दूर तक राष्ट्रीय उपन्यास नहीं कहा या माना जा सकता है। दूसरी ओर, 'गोदान' का कथ्य, प्रतिपाद्य परिस्थितियाँ, जीवन के विविध रूपों और क्षेत्रों में व्याप्त भयंकर समस्यायें तथा समकालीन भारतव्यापी चिन्तन आदि नाना विशेषतायें 'गोदान' को राष्ट्रव्यापी रचना अवश्य बना देती हैं। वस्तुतः, गोदान' का होरी पेशे से कृषक होने के साथ-२ अपने समय का एक आम भारतीय व्यक्ति है—सामान्य प्रजा या जनता का प्रतिनिधि जिसका पगे-पगे शोषण करते हैं—सत्ताधारी और उनके विभिन्न प्रतिनिधि यथा जमींदार, साहूकार, पूँजीपति, सूदखोर और पंडित जी आदि। व्यक्ति और समाज, शोषित और शोषक, निर्बल और समर्थ, श्रमिक और पूँजीपति, प्रजा और सत्ता का यहाँ सनातन संघर्ष और इसमें प्रचलित (सामंतीय) व्यवस्था के क्रूर हाथों का शिकार बना सामान्य जन गोदान' को राष्ट्रीय स्तर की रचना बना देता है, साथ ही साथ देश-कालातीत अर्थात् सर्वकालिक और सर्वजनीय भी। सच में तो 'गोदान' रामायण, महाभारत और गीता जैसी कालातीत कृतियों वाले वर्ग की रचना है। यह भारतीय संस्कृति के विराट फलक पर लिखा गया एक समर्थ साहित्यिक हस्ताक्षर है, लोक जीवन और परम्परा को समेटकर चलने वाले संघर्षरत किसान का तपस्या-चित्र है, काले हथकडों से आकंठ लदे-भरे शोषक वर्ग और उसकी महाजनी सभ्यता का सच्चा इतिहास है तथा मानव-जीवन के परिप्रेक्ष्य में आम आदमी की बड़ी कहानी है।

विवेच्य प्रश्न

१, उपन्यास-रचना में देशकाल (वातावरण) चित्रण का स्थान निर्धारित करते हुये इस दृष्टि से 'गोदान' की समीक्षा कीजिये।

२. 'गोदान' में अंकित समकालीन परिस्थितियों के चित्रण-परिप्रेक्ष्य में बताइये कि 'गोदान' युग-प्रतिनिधि-रचना है।

३. वातावरण (देशकाल) चित्रण विषयक प्रेमचन्द की धारणाओं को स्पष्ट करते हुये 'गोदान' में उनकी अभिव्यक्ति को स्पष्ट कीजिये तथा उसकी विशेषतायें भी निर्धारित कीजिये।

४. "गोदान ग्रामीण जीवन का महाकाव्य है।" समीक्षा कीजिये।

५. कुछ लोग 'गोदान' को आंचलिक उपन्यास कहना पसन्द करते हैं। आपका क्या मत है ? अपने पक्ष-समर्थन के लिये तर्क प्रस्तुत कीजिये।

६. "'गोदान' में प्रेमचन्द भारतीय ग्राम्य जीवन का एक-एक कोना झाँक आये हैं।" उपयुक्त प्रमाण देते हुये इस कथन की समीक्षा कीजिये।

७. "गोदान महाजनी सभ्यता का इतिहास (या सच्चा दस्तावेज) है।" सिद्ध कीजिये।

८. "गोदान एक युग-प्रवर्त्तक रचना है।" इसके युग-चित्रण के आधार पर प्रस्तुत कथन की व्याख्या कीजिये।

९. "गोदान ग्राम्य जीवन की दुखांतिकी है, एक अलोमहर्षक ट्रेजेडी है।" गोदान के ग्राम्य चित्रण के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिये।

१०. गोदान को 'राष्ट्रीय उपन्यास' की सज्ञा देना कहाँ तक ठीक है। टिप्पणी कीजिय।

११. गोदान में अंकित राजनीतिक विचारधाराओं का परिचय देते हुये उनका युग-साम्य निर्धारित कीजिये।

१२. सिद्ध कीजिये कि गोदान एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि उपन्यास और युगपरक महाकाव्य है।

१३. प्रमाणित कीजिये कि गोदान हमारे ग्रामीण जीवन के अंधकार पक्ष का एक महाकाव्य है।

१४. "गोदान आधुनिक भारतीय जीवन का दर्पण है।" सिद्ध कीजिये।

१५. "गोदान उपन्यास में लेखक ने अपने युग जीवन को युग-प्रतिनिधि रूप में अंकित कर दिखाया है।" प्रस्तुत कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिये।

१६. "गोदान भारतीय ग्राम्य देवता की करुण आत्म पुकार है, उसके शरीर और मन का यथार्थ चित्रण है।" प्रस्तुत कथन पर टिप्पणी कीजिये।

१६ 'गोदान' : उद्देश्य-समीक्षा

[मूल प्रतिपाद्य, कथ्य, सन्देश, रचना के कारण, लेखक का जीवन-दर्शन, लेखक की विचारधारा, गोदान की स्थापनाएँ]

उद्देश्य और उपन्यास-रचना :—

प्रत्येक उपन्यासकार अपनी उपन्यास-रचना का सृजन जिन मूलभूत कारणों से करता है, उनमें से प्रथम कारण है—'कुछ न कुछ कहना, पाठकों तक अपने 'कुछ' अर्थात् जीवन-दृष्टि को पहुँचाना। इसी को, रचना का उद्देश्य, प्रतिपाद्य या सन्देश कहते हैं और यही रचना-सृजन का मूलभूत कारण है। एक प्रश्न और ? यह है—रचना उद्देश्यों को निर्धारित करना। समस्या का कारण यह है कि उपन्यासकार अपने कथ्य को प्रत्यक्षत. (यथा भूमिका टिप्पणी, वर्णन आदि) तथा परोक्षतः (यथा कथा-प्रसंग, पात्रों के कथन, क्रिया-कलाप, संवाद और विचारादि एवं पृष्ठभूमि या वातावरण चित्रण) दोनों ही प्रकार से प्रकट करता है। समस्या तब खड़ी होती है जबकि कभी पात्र-कथ्यादि को लेखक का कथ्य मान लिया जाता है तो कभी लेखकीय कथ्य को पात्र का कथ्य। उचित और ग्राह्य यह है कि रचना के समग्राधार पर ही उसके उद्देश्यों का निर्धारण किया जाये। जहाँ तक प्रश्न है उद्देश्य के तात्विक महत्व का तो, "···इसे लेखक का जीवन-दर्शन अथवा उसकी जीवन दृष्टि, जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं (जो साहित्य मात्र का प्राणतत्व है)। ···जिन कृतियों में इस तत्व के अभाव की बात कही गयी है, उनमे भी वस्तुत: इसका अभाव नहीं होता।'[1] दूसरी ओर, सच तो यह है कि "उपन्यास में उद्देश्य का वही स्थान होता है जो जीव या शरीर म आत्मा का होता है। वस्तुत:, यदि वस्तुविधान को उपन्यास का शरीर और चारित्र-विधान को प्राण मानें तो नि:सन्देह उद्देश्य उपन्यास का प्राणतत्व है।"

प्रेमचन्द और उपन्यास-उद्देश्य :—

प्रेमचन्द इस सत्य को जानते थे कि "आधुनिक साहित्यिक विधाओं में उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा लेखक जीवन के महत्तर मूल्यों को विवेचित-विश्लेषित कर अपने पाठकों को नया प्रकाश दे सकता है।'[2] इसी से,

---

१. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश—भाग १ : पृ० १५२

२. डा० रामलखन शुक्ल : हिन्दी उपन्यास-कला : पृ० ६२

स्थान-स्थान पर प्रेमचन्द ने उद्देश्य के महत्व को स्वीकारा ही नहीं, स्वयं व्याख्यातित और रूपायित भी किया है। प्रमाणार्थ, उनकी निम्नांकित उक्तियाँ देखिये :—

(i) "साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है—कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।"[1]

(ii) "वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलम्बित हो।...इन्हीं की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है और बिना उद्देश्य के तो कोई रचना (उपन्यास भी) हो ही नहीं सकती।"[2]

(iii) "जब हम देखते हैं कि हम भाँति-भाँति के राजनैतिक, सामाजिक, बन्धनों में जकड़े हुए हैं तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी (साहित्यकार) का हृदय न दहल उठे। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों...अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायेगा।"[3]

(iv) "जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है।"[4]

एकदम सच तो यह है कि "प्रेमचन्द प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों का उपयोग समाज-जीवन की आलोचना के लिये किया है। उनका (उपन्यास) साहित्य देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि वह उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।...वस्तुतः वे एक ऐसे उपन्यासकार हैं जो अपने उपन्यासों में सोद्देश्यता को मानकर चलते हैं।"[5] ...इसका सर्वाधिक सशक्त और सफल प्रमाण है—उनकी प्रौढ़तम उपन्यास-रचना 'गोदान'।

'गोदान' और उसके उद्देश्य :—

सन् १९३६ में सर्वप्रथम प्रकाशित और कालक्रम से प्रौढ़ काल में रचित, अंतिम पूर्ण कृति, 'गोदान' वस्तुतः उस काल में रची गयी थी जबकि प्रेमचन्द बम्बई की फिल्मी-पूँजीवादी जिन्दगी को झेल और कड़वाहट भरे अनुभवों को प्राप्त कर चुके थे। निःसन्देह, इस काल में वे एक ओर तो स्वयं ऋण में आकंठ डूबे हुए थे, दूसरी ओर युग की परिस्थितियों और सामन्तवादी-साम्राज्यवादी द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका भरी पृष्ठभूमि में साँस ले रहे थे, देख-सोच और समझ रहे थे।

१-४, प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ५१, ५२, ५३ तथा ७१

५. हंसराज रहबर : प्रेमचन्द-जीवन कला और कृतित्व

तीसरी ओर, पारिवारिक कष्टों-संघर्षों से जूझ रहे थे और चौथी ओर स्वयं की जीवन-दृष्टि में भी तेज परिवर्तन महसूस कर रहे थे। इसी सब का परिणाम, प्रतिक्रिया, 'गोदान' के रूप में अभिव्यक्त हुई—अत्यन्त सशक्त, व्यापक और महत-उद्देश्ययी वैचारिकता के साथ। 'गोदान' के महत् उद्देश्य इसी के परिचायक हैं। और निम्नांकित हैं—

(१) वर्ग संघर्ष का व्यापक और विविधरूपी अंकन।
(२) समकालीन (ग्राम्य-नगर) जीवन का यथार्थ चित्रण।
(३) पूर्वी पाश्चात्य विचार-संघर्ष और उसमें पूर्व की विजय।
(४) विभिन्न समस्याओं का चित्रण और समाधान।
(५) उदात्त मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा।

(१) वर्ग-संघर्ष का व्यापक और विविधरूपी अंकन—"गोदान की रचना जिन दिनों हुई थी, उन दिनों धर्म और मोक्ष की मान्यतायें महत्वहीन हो गई थीं, व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में आर्थिक शोषण की इतनी अधिक पीड़ा परिव्याप्त थी कि उसके लिये उसके जीवन की वेदना ही चरम सत्य बन गई थी।"[1] गोदान में लेखक ने इसी पीड़ा और वेदना को वाणी दी है और इसी को विविधता, गहनता और व्यापकता के साथ कहने-दिखाने को रचना का मूल कथ्य या स्थापना बनाया है। निःसन्देह, इस पीड़ा का कारण है—शोषक वर्ग द्वारा सामान्य वर्ग का डट कर शोषण किया जाना—मुख्यतः गाँव में और शहर में भी, निम्न वर्ग और उच्च वर्ग में भी। होरी-कथा ग्राम्य शोषण की और नगर-पात्रों की कथा नगरीय शोषण को प्रस्तुत करने के साधन हैं और आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि इसके विविध पक्ष हैं। प्रमाण ? होरी और रायसाहब की कथायें जो क्रमशः ग्राम्य, अर्धनगरीय-नगरीय और इस प्रकार सम्पूर्ण समाज में व्याप्त शोषण का प्रतिनिधित्व करती हैं" गाँव के नायक होरी के जीवन में प्रेमचन्द ने 'अर्थ' और 'धर्म' के जिस द्वन्द्व की कहानी कही है, उसमें उसका धर्म तो पराजित नहीं होता, अर्थ 'दारिद्रय' बनकर उसे निगल लेता है। नगर के नायक रायसाहब के जीवन में 'अर्थ' और धर्म के द्वन्द्व में 'धर्म' निरन्तर पराजित होता चलता है और 'अर्थ' उनका साथ कभी नहीं छोड़ता।…इस विषमता को प्रदर्शित करना 'गोदान' के कथ्य की मूल स्थापना कही जा सकती है।"[2] गाँव के चारों साहूकार और पंडित दातादीन एवं शहर के मि० खन्ना जैसे पूँजीपति, शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं तो होरी-धनिया, गोबर और गोविंदी शोषित वर्ग का। इसी में प्रचलित सामंतीय व्यवस्था का घिनौना रूप और उसके शिकार वर्ग का दयनीय रूप भी मुखर हुआ है—पूरी-पूरी व्यापकता के साथ। निःसन्देह, शोषक-शोषित की यह गाथा चिरतन है और इसी सबलता के साथ इसको चित्रित करके लेखक इस उद्देश्य-पूर्ति में सफल हुआ है।

१-२ रामकृष्ण मिश्र : गोदान सौन्दर्य और समीक्षा : पृ० ३२४-२५

(२) **समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण**—कोई भी सजग उपन्यासकार अपने युगीन जीवन में अप्रभावित नहीं रह सकता, फिर प्रेमचन्द तो युग-द्रष्टा थे, साथ ही साहित्य-सृजन को लोकाधारित अर्थात् 'लोक का, लोक से, लोक के लिये के समर्थक। फलतः गोदान का अत्यन्त महत्तम रचना-उद्देश्य बना— समकालीन जीवन का यथार्थ-चित्रण वह भी इतनी व्यापकता, गहनता, विविधता और प्रामाणिकता के साथ कि "गोदान अपनी समकालीन (और परम्परा से चली आ रही) महाजनी सभ्यता के इतिहास का यथार्थ दस्तावेज" बन गया है तो दूसरी ओर 'भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य' भी है। निःसन्देह इस जीवन के दो स्पष्ट पक्ष हैं— ग्राम्य और नगर जीवन और इसी के अन्तर्गत उच्च, मध्य और निम्न या शोषक-शोषित विभिन्न वर्गों एवं जातियों की यथास्थिति का चित्रण किया गया है, वह भी इतनी व्यापकता से कि जीवन के विभिन्न स्तर, प्रश्न, समस्यायें, स्थितियाँ असंख्य रूपों में उभरी हुई मिलती हैं। सच तो यह है कि ग्राम्य जीवन से सहानुभूति रखने वाले प्रेमचन्द ने, महाकवि सूर की भाँति ही, मानो इस जीवन के एक-एक कोने में झाँका है, उसको देखा और भोगा है। होरी उसके परिवार और ग्राम बेलरी की कथा भला किस जीवन-स्थिति से अछूती कही जा सकती है? माना तो यहाँ तक जाता है कि बेलरी ग्राम की यह कथा एक ओर यदि 'आँचलिकता' को अपनी समग्रता में लिए हुए है तो दूसरी ओर 'बेलरी' भारत का एक नहीं, हर एक गाँव है।

(३) **पूर्वी-पाश्चात्य विचार-संघर्ष और उसमें पूर्व की विजय**—राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन के विकास काल में और प्रेमचन्द जैसे राष्ट्र-प्रेमी लेखक की कलम से प्रसूत 'गोदान' में एक महत् उद्देश्य बनाया गया है—पूर्वी-पाश्चात्य विचारधाराओं और जीवन दृष्टियों के वैपरीत्य को दिखाते हुए पूर्वी अर्थात् भारतीय जीवन-दृष्टि की विजय की स्थापना करना। मालती-मेहता-कथा इसका सशक्त माध्यम है जिसमें पाश्चात्य रंग-ढंग में आकंठ डूबी मालती का 'उद्धार' या हृदय-परिवर्तन भारतीय रंग में अनुयायी मेहता की कृपा संगति से होता है। रायसाहब और उनकी मित्र-मण्डली की वैचारिक बैठकों, बौद्धिकता भरे तर्क-वितर्कों एवं वैयक्तिक जीवन के उतार-चढ़ाव एवं अन्ततः हृदय विचार-परिवर्तन (यथा रायसाहब और मि० खन्ना) भी इसी श्रेणी में आते हैं। मेहता (रूपी प्रेमचन्द) के तर्कों-विचारों के सम्मुख मालती, रायसाहब और मि० खन्ना आदि पाश्चात्य विचारों के अनुयायियों की आत्म स्वीकृतियाँ, प्रायश्चित-बोध एवं कथा-परिणाम वस्तुतः मेहता की, या कहिए, भारतीय मनीषा की विजय के साक्षी हैं।

(४) **विभिन्न समस्याओं का चित्रण और समाधान**—भारतीय समाज में विभिन्न रूपों, स्तरों और अनिवार्य प्रायः स्थितियों में प्रचलित नाना समस्याओं को अंकित करने के साथ-साथ, कहीं-कहीं लेखक ने उनमें मुक्ति पाने के ससाधन भी बताए हैं, यद्यपि मुख्यतः प्रेमचन्द इनके कड़वे रूपों-प्रतिक्रियाओं और उनसे प्रभावित दुखी मानवीय स्थितियों को एकदम यथार्थ रूप में अंकित करने में ही रमे हैं। ये समस्यायें या प्रश्न पाठक को झकझोरते ही नहीं, पुनर्मूल्यांकन करने, कुछ सोचने,

कुछ करने को भी बाध्य-सा कर देते हैं। ऐसी ही एक मूल प्रतीकात्मक समस्या है—**गोदान** जो गोधन, गो-मन, गो-मान और गो-दान विभिन्न रूप-स्तरों पर आद्योपान्त व्याप्त है—वस्तुतः अपने आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक रूप में। द्रष्टव्य है कि इसका आर्थिक रूप एकदम मौलिक और सनातन है—होरी-मानव की विवशता, निरीहता, पाशबद्धता और व्यवस्था के दयनीय आखेट का साक्षी। इसी के साथ जुड़ी है—**ग्राम्य समाज की कोढ़ बनी ऋण की समस्या** जिसके अन्तर्गत "किसानों (मुख्यतः होरी) के साथ मानो वह (प्रेमचन्द) आप-बीती भी कह रहे थे। किसानों के जीवन के अलग-अलग पहलुओं पर वह उपन्यास लिख चुके थे लेकिन कर्ज की समस्या पर उन्होंने विस्तार से कोई उपन्यास नहीं लिखा था। 'गोदान' लिखकर उन्होंने किसान की उस समस्या पर प्रकाश डाला, जो आये दिन उनके जीवन को सबसे ज्यादा स्पर्श करती है।"[1] सच तो यह कि, 'गोदान' इतना जीवन्त उपन्यास है कि कृषक जीवन की प्रायः हर सम्भाव्य समस्यायें अपने समाधान के लिये यहाँ आकुल दीखती हैं।"[2] इसी प्रकार की कुछ अन्य समस्यायें हैं—सम्मिलित परिवार और उसके संघर्ष (होरी-परिवार), जाती-विरोध (सिलिया झुनिया, मातादीन प्रसंग), वर्ग-वैषम्य (होरी एवं अन्य ग्रामीण वर्ग), छुआछूत (सिलिया कथा), अन्ध-विश्वास (होरी का गोदान), निर्धनता का अभिशाप (होरी), अनमेल विवाह (रूपा, सोना), वृद्ध विवाह (भोला का पुनर्विवाह-प्रसंग), जाति-इतर विवाह (झुनिया-गोबर), पीढ़ी-संघर्ष (होरी-गोबर तथा नगरीय समाज में रायसाहब—पुत्र, पुत्री सम्बन्धी), भाग्यवादिता और सत्ता चापलूसी (होरी रायसाहब) दहेज (सोना-रूपा-विवाह) आदि। इधर, नगरीय कक्षा में भी अनेक सनातन-समकालीन समस्याओं को उठाया गया है यथा बौद्धिक बनावटी समाज-सुधार (रायसाहब), नर-नारी सम्बन्ध (मालती-मेहता), नारी-स्वातन्त्र्य और आधुनिका-स्थिति (मालती, मेहता का भाषण), विवाह और पति-पत्नी सम्बन्ध तथा तलाक (मेहता-मालती-गोविंदी-खन्ना), वेश्या-उद्धार (मिर्जा खुर्शेद), पत्रकारिता (पं० ओंकारनाथ), विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध या विलासिता (मालती-खन्ना), नौकरशाही का भ्रष्टाचार (दरोगा-प्रसंग), श्रमिक-पूँजीपति-संघर्ष (खन्ना की मिल-हड़ताल), नारी-शिक्षा (मेहता का भाषण) तथा प्रगतिवाद-साम्यवाद आदि (मेहता, रायसाहब-संवाद)।

(५) **मानवतावाद (और भावी मानव) की प्रतिष्ठा**—वस्तुतः, विचारों से प्रेमचन्द मानवतावादी थे और 'गोदान' में उन्होंने जीवन के कड़वे यथार्थों को अंकित करते हुये अपने मान्य आदर्शों को मुखर करना ही इष्ट मानव है। प्रेमचन्द का यह आदर्श, निःसन्देह पहली बार, न तो कोरा सैद्धान्तिक या वायवी है, न कोरा अव्यवहार्य। दूसरी ओर, बढ़ती हुई अर्थ-विषमता और उसके दीखने वाले दुष्परिणामों की यथास्थिति के परिप्रेक्ष्य में नव मानव और उसके नव मानवतावाद का सकेतक है। होरी और मेहता का सम्मिलित रूप (अर्थात् होरी की कर्मठता

१. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग : पृ० ११५

२. रामकृष्ण मिश्र : गोदान—सौन्दर्य और समीक्षा : पृ० ३१४-१५

और मेहता का चिंतन) इसी का प्रमाण है। वस्तुतः 'होरी और मेहता के सम्मिलित स्वरूप द्वारा प्रेमचन्द एक ऐसे भावी मानव की कल्पना करते हैं जो भावी मानव-समाज का नेतृत्व करते हुये शोषणादि का उन्मूलन करके मानवता की रक्षा और प्रतिष्ठा करेगा। मालती का कथन इसी कल्पना का संकेत देता है, "संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है तुमने यह आर्त्त पुकार सुनी है। अपनी विद्या और बुद्धि को — अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगी।" लगता है 'कामायनी' की श्रद्धा की भाँति मालती भी मेहता (रूपी मानव) को भावी मानवता का संदेश दे रही है।

(६) **उदात्त मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा**—अपने समग्र प्रभाव में 'गोदान' उदात्त मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। होरी का यथार्थ भरा जीवन कायरता भरी विवशता का ही नहीं, कदम-कदम पर परास्त होते हुये भोले-भाले मानव की अनथक सहनशीलता, धैर्य, सहिष्णुता, तटस्थता, अहिंसा आदि मानवीय मूल्यों की महत् प्रतिष्ठा करता है तो मेहता का बौद्धिक चिंतन लोक-कल्याण, मानवोद्धार, नैतिकता, साहस, स्पष्टवादिता, आवश्यक परिवर्तन, मानव-महत्ता, अन्याय-शोषण के सन्तुलित विरोध, आत्मत्याग, पर-सेवा जनहित और समग्रतः उदात्त मानव मूल्यों की। धनिया की नारी-सुलभ सहजता और मालती का आदर्शोन्मुख बढ़ता—पहुँचा रूप भी वस्तुतः इसी का प्रतिष्ठापक है तो रायसाहब का पराजय भरा मन और खन्ना का हृदय-परिवर्तन तथा गोबर का युवकोचित विद्रोही स्वर भी इसी स्वर के संकेतक हैं।

उपसंहार—इस प्रकार यह बात एकदम स्पष्ट है कि 'गोदान' केवल सोद्देश्य ही नहीं, महत् उद्देश्यों से परिपूर्ण महत् कृति है जिसमें लेखक ने स्व-कथ्य को सभी सम्भव उपायों से और महत् मानवोचित सन्देश के रूप में अत्यन्त सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाकर प्रस्तुत किया है। उपन्यास के अधिकांश कथा-प्रसंग और पात्र इसी को उजागर करते हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि "···प्रेमचन्द जी के उपन्यास उच्चतर उद्देश्यों की सिद्धि करते हैं और उनका बड़ा ही मंगलमय प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है। वे संकीर्णता, अन्याय और अज्ञान के भीतर से मनुष्य को शांति, प्रेम और आनन्द की ओर ले जाते हैं। जीवन में कर्म की गरिमा का प्रतिपादन कर वे मनुष्य की अपराजेय शक्ति का उद्घोष करते हैं।··· हमें ऐसा आभासित होने लगता है जैसे उनके साहित्य में डूबकर उनका पाठक आत्मा की ऊँचाइयों को बार-बार छूता है, बार-बार उसका अन्तःकरण एक प्रकार की भावना से भर जाता है···प्रेमचन्द जी ने जिन मानव-मूल्यों की स्थापना की है, जीवन के स्थायी और सच्चे मूल्य वे ही हैं।"[1] गोदान निःसन्देह इसी का सर्वोत्तम प्रमाण है जो अपने महत् उद्देश्यों और उनके सुष्ठु प्रतिपादन के फलस्वरूप काल या स्थान

१. श्री विश्वम्भर मानव : प्रेमचन्द : पृ० १४६

विशेष की नहीं वरन् कालातीत और स्थानातीत बनकर युग-युग की अमर कृति बन गया है। नि.सन्देह अपनी इसी उद्देश्य सम्पन्नता के कारण "गोदान साहित्य को मनोरंजकता के रंग-महल से निकालकर जनता के जीवन के बीच में प्रतिष्ठित करने की कहानी है ··भारतीय संस्कृति और लोक-परम्परा को साथ लेकर चलने वाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का यथार्थ चित्र है और है संस्कृति विरोधी शोषक वर्गों की महाजनी सभ्यता के काले कारनामों का इतिहास। ·· हमारे वर्ग जीवन की पूर्णता ही गोदान की पूर्णता है। यह अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसव-व्यथा भी। गोदान उपन्यास की शैली में भारतीय जीवन का महाकाव्य है।"[1]

विवेच्य प्रश्न

१. गोदान उपन्यास में निहित उद्देश्य का उल्लेख कीजिये। आपका उत्तर उदाहरणों से पुष्ट होना चाहिए।

२. उपन्यास-रचना में उद्देश्य का महत्व बताते हुए 'गोदान' के उद्देश्यों को सप्रमाण स्पष्ट कीजिए।

३. उपन्यास-रचना की उद्देश्य सम्बन्धी प्रेमचन्दीय धारणाओं के परिप्रेक्ष्य में 'गोदान' के -द्देश्यों का निर्धारण कीजिए तथा उनके आधार पर प्रेमचन्द की सफलता/असफलता भी बताइये।

४. गोद न के प्रधान उद्देश्य कौन-कौन से हैं और क्यों? उपयुक्त प्रमाण देते हुए उनका परिचय दीजिए

५. 'गोदान' के मूल प्रतिपाद्य (कथ्य या सन्देश) का प्रमाणपुष्ट प्रतिपादन कीजिए।

६. 'गोदान' के आधार पर बताइये कि इसमें प्रेमचन्द ने अपनी किस जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया है और किस प्रकार?

७. 'गोदान की रचना का मूलोद्देश्य प्रतिपादित करते हुए उसका मूल्यांकन भी कीजिए।

८. "प्रेमचन्द···अपने उपन्यासों में सोद्देश्यता को मानकर चलते हैं" प्रस्तुत कथन की पुष्टि 'गोदान' के आधार पर कीजिए।

९. गोदान के कथा की मूल स्थापनाओं का सप्रमाण परिचय दीजिए।

१०. "गोदान में लेखक ने उच्च मानव-मूल्यों की स्थापना की है।" सिद्ध कीजिए।

---

१. श्री गोपालकृष्ण कौल : हिन्दी के गौरव ग्रन्थ : पृ० ५८

१७ गोदान : भाषा-शैली-समीक्षा

[कला-शिल्प, भाषा-शैलीगत विशेषताएँ, अभिव्यक्ति-कौशल]

भाषा-शैली और उपन्यास-रचना—संस्कृत भाषा की 'भाष्' या 'भास' धातु से निर्मित 'भाषा' शब्द का अभिधामूलक है—कहना, प्रकट करना, चमकना या प्रकाशित करना। निःसन्देह भाषा अभिव्यक्ति का सबलतम माध्यम है जो उपन्यास-रचना में दो कार्य करती है। प्रथमतः तो यह उपन्यासकार के मन में कथा के वैचारिक स्वरूप को व्यक्त करती है जिसके लिये उसके पास यही एक माध्यम होता है और इसी के द्वारा वह उसे पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ होता है। द्वितीयतः वह अपने उपन्यास में जिन पात्रों की रचना करता है, अपने-अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व में वे भी पृथक सत्ता से युक्त होकर अपने हृदय की विविध अनुभूतियों और भावनाओं की प्रतीति दूसरों को करा देते हैं।"[1] कहना न होगा कि, इस प्रकार उपन्यासकार और उपन्यास के पात्र, दोनों की भाषा के आधार पर ही उपन्यास की भाषा का समग्र रूप (और उसकी विशेषताओं अर्थात् गुण-दोषों) का निर्धारण हो पाता है। जहाँ तक प्रश्न है—शैली का तो निःसन्देह "यह एक मानसिक दृष्टिकोण और उपचेतना की अभिव्यक्ति है (It is a frame of mind, a manifestation of the subconscious)[2] तथा 'हमें प्रभावित करने वाली वस्तुओं की प्रभाव-प्रतिक्रिया है (Style is really the way you like at things. Things may vividly impress you and your reaction to these impressions may result in a style."[3]। वस्तुतः, अपने कथ्य को पाठकों तक पहुँचाने तथा नाना औपन्यासिक तत्वों को संयोजित करने का लेखकीय कौशल ही 'शैली' है। गहराई से सोचें तो "एक उपन्यास में जो वस्तु (तत्व) सबसे पहले पाठक का ध्यान आकर्षित करती है जो चीज उसे उपन्यास को पढ़ने के लिये तुरन्त प्रेरित करती है, वह उस उपन्यास की शैली ही है।"[4] इस प्रकार, भाषा-शैली प्रत्येक उपन्यास-रचना का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है, ऐसा कि इसके अभाव में उसके साकार रूप की कल्पना तक नहीं की जा सकती।

---

१. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास-कला पृ० २५३–५४

२. वी० होगराथ : द टैकनीक ऑफ नॉवल राइटिंग : पृ० १३८

३. वही : पृ० १३६

४. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास-कला : पृ० २६६

भाषा-शैली और प्रेमचन्द—उपन्यास-रचना में भाषा-शैली के इसी महत्व को देखते हुए प्रत्येक उपन्यासकार, इसकी ओर अनिवार्यतः ध्यान ही नहीं देता, इसके सम्बन्ध में वैयक्तिक वैशिष्ट्य और धारणाएँ भी रखता है। निःसन्देह प्रेमचन्द भी इसके अपवाद नहीं हैं। एकदम सच तो यह है कि प्रेमचन्द ने जिस युग और परिस्थितियों में उपन्यास-सृजन और हिन्दुस्तानी के भाषागत भावात्मक-राष्ट्रीयात्मक प्रश्न तथा प्रान्तीय-विशेषतः बंगला और उर्दू-भाषाओं के अपवादों-प्रभावों तथा उधर आंग्ल सत्ता की भाषा विषयक कूटनीतिक योजना एवं नीति आदि कई कारणों से कथा-साहित्य के निर्माताओं में भाषा के प्रति या तो उपेक्षा का भाव आ गया था या फिर नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं का। निःसन्देह, प्रेमचन्द भी इसके अपवाद नहीं थे। यूँ, प्रेमचन्द मूलतः उर्दू के कथाकार थे (और उर्दू के भक्त-कायस्थ जाति के भी) और वहीं से हिन्दी-क्षेत्र में आये थे, फिर भी उपन्यास कहानी की भाषा-शैली के विषय में मुक्त और उदार विचारों के थे। जनता के और जनता के लिये लिखने वाले इस लेखक की स्पष्टतः घोषणा थी कि, "जनसाधारण के लेखक को जनसाधारण की भाषा में लिखना चाहिए"[1] तथा "लिखित भाषा सदैव बोल-चाल की भाषा से मिलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यह है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले। इस आदर्श से वह जितनी ही दूर जाती है, उतनी ही अस्वाभाविक हो जाती है।"[2] वे तो ही मानते हैं, "हमारा आदर्श तो यह होना चाहिये कि हमारी भाषा अधिक से अधिक आदमी समझ सकें, अगर इस आदर्श को हम अपने सामने रखें तो लिखते समय भी रहे शब्द-चातुरी के मोह में न पड़ेंगे ···वही शब्द सरल है जो व्यवहार में आ रहा है, इसमें कोई बहस नहीं कि वह तुर्की है या अरबी या पुर्तगाली।"[3] इसी भाँति शैली के विषय में भी उन्होंने कहा है, "इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास की रचना-शैली सजीव और प्रभावोत्पादक होनी चाहिये।··· जनता उन्हीं उपन्यासों को आदर का स्थान देती है जिनकी विशेषता उनकी गूढ़ता नहीं, उनकी सरलता होती है।"[4] कहना न होगा कि अपने उपन्यासों की भाषा-शैली में लेखक ने इन विचारों को क्रियान्वित ही नहीं किया है, उसका निर्माण ही इन आधारों पर किया है जिसका सर्वाधिक सशक्त प्रमाण है—लेखक की प्रौढ़तम कृति 'गोदान' और उसकी भाषा-शैली।

'गोदान' की भाषा-शैली तथा उसकी विशेषताएँ

गोदान की भाषा—

शास्त्रीय दृष्टि से, उपन्यास-रचना में, " ···सफल भाषा वही होती है जो उपन्यास की कथा, काल और पात्रों के अनुरूप हो। उसमें स्थानीय मुहावरों और

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० २४

२. वही : १४६

३. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० १३०

४. वही : ६४

लोकोक्तियों का भी यत्र-तत्र उपयोग हो जिससे उसकी प्रवाह-शीलता नष्ट न हो। भाषा में......सजग शब्दावली का प्रयोग और भावानुकूलता होनी चाहिए। प्रसंगों के अनुसार वाक्यों की लम्बाई का निर्धारण होना चाहिए। सामान्यतः छोटे और गठे हुए वाक्य भाषा की सफलता में सहायक होते हैं भाषा का रूपगत परिवर्तन भी होना चाहिये।"[1]

इस दृष्टि से 'गोदान' का निरीक्षण करने पर पाते हैं कि गोदान की कथा और उसके पात्र स्वतन्त्रता-पूर्वकाल के हैं और स्पष्टतः ग्राम्य और नगर से सम्बन्धित हैं (क्रमशः होरी-कथा तथा मालती-मेहता-रायसाहब-कथा)। फलतः गोदान की भाषा के भी स्पष्टतः दो रूप हो गये हैं—ग्रामीण तथा नगरीय भाषा। साथ ही, लेखकीय टिप्पणियों-वर्णनों में स्वयं लेखक की भाषा का रूप भी समन्वित है।" ग्रामीण पात्रों की भाषा तद्भव और स्थानीय (देशज) शब्दों की बहुलता से युक्त जन-भाषा है जिसमें उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का तो प्रचुर प्रयोग है किन्तु संस्कृत के तत्सम् शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र ही मिलता है। शहरी पात्रों की भाषा में तत्सम और तद्भव शब्दावली का प्रायः समतुल्य प्रयोग मिलता है जबकि अरबी, फारसी या उर्दू के आम प्रचलित ही नहीं, कुछ अप्रचलित शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार उपन्यासकार की निजी टिप्पणियों की भाषा में प्रायः तत्सम शब्दावली का ही अधिक प्रयोग होते हुए भी देशी-विदेशी शब्दों का ऐसा उन्मुक्त प्रयोग दृष्टिगत होता है कि कहीं-कहीं तो वह ग्रामीण पात्रों की भाषा के निकट जा पहुँची है।"[2] निम्न-लिखित उदाहरण देखिए—

(i) **ग्राम्य भाषा**—"तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है, भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलने-जुलने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है...किस पर बेदखली नहीं आयी, किस पर कुड़की नहीं आयी।"

(ii) **नगरीय भाषा**—"तो सुनिए, फिलासफर हमेशा मुर्दा-दिल होते हैं। जब देखिए, अपने विचारों में मगन बैठे हैं ...जैसे शून्य में उड़ रहे हों।'

(iii) **लेखकीय भाषा**—'आप नवयुग की प्रतिमा हैं। गात कोमल पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब ...मनोद्गारों पर कठोर निग्रह।"

निःसन्देह, पात्रानुकूल होने के साथ-साथ यह भाषा एकदम प्रसंगाकूल भी बन पड़ी है—साथ ही साथ सरल, रोचक, प्रवाहपूर्ण और स्वाभाविक भी। एक सशक्त प्रमाण देखिए—"तुम हमारे साथ चलेगा दिलदार! अम तुम्हारे ऊपर फिदा हो जायेगा। अपना जान तुम्हारे कदमों पर रख देगा।...सच्चा इश्क किया है, अम दिखा देगा। तुम्हारा इशारा पातें ही अम अपने सीने के खंजर चुबा सकता है।" (पठान वेशी प्रो० मेहता, मालती से)

---

१. डॉ० प्रतापनारायण टंडन : हिन्दी उपन्यास कला : पृ० २३५

२. डॉ० राजपाल शर्मा : गोदान—पुनर्मूल्यांकन : पृ० २६२

अब आइये. शब्दावली-प्रयोग पर। निःसंदेह, गोदानकार ने तत्सम, तद्भव और देशज, सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है, और साथ ही साथ उर्दू-फारसी और अंग्रेजी के आम प्रचलित शब्दों का भी जिनको यत्र-तत्र, पात्र और प्रसंग के अनुकूल प्रचलित-परिवर्तित रूप भी दे दिये गये हैं। कुछ प्रयुक्त शब्द देखिए—

(i) तत्सम शब्द—स्वस्थ, सुगठित, यौवन, सन्ध्या, शतांश, सिद्धांत, आदर्श, शुभेकु, उन्माद, स्फूर्ति, विच्छेद, परित्याग, पराकाष्ठा, कुत्सा, विकृति, संचित, प्रारब्ध, वैमनस्य, असत्य, विह्वल, सम्पदा, विभूति, भिक्षुकों, प्रतिज्ञा उपेक्षा।

(ii) तद्भव शब्द - परसाद, असनान, उमिर, बछवे, आसिर्वाद, भरम, सासतरों, रिष्ट, रिष्ट-पुष्ट, उरिन, भिरष्ट, गिनिया, ररासचित, सराप, लच्छमन, मरजाद, औसर, परेम, सांसत खुशकेली, पिसिन, समाई, हरमुनिया, बिलम, जँजात, ब्याते, कलसा।

(iii) देशज (स्थानीय) शब्द दोगड़ा, भिनसार, घामड़, तिकौना, पुछल्लर, मक्कड़, गाई, ब्यान, बुढ़भस, चंगेरी, खाँचे, उड़नघइयां, लत्ता, रातिब, महावत, मो-मरदी, परतोख, नाँद, डांड, पगहिया, महतो, गोड़ने, जुगाड़, कवसोर, डाढ़ीजार, ढई द्रेगा, अदरावन।

(iv) विदेशी : (अ उर्दू-फारसी शब्द रज, फुरसत, फरियाद, कलेजा, मयस्सर, दर्द, गुजर, आबरू, कदर, इनकार, दगाबाज, आशनाई, खंजर, मरदूमी, कायल, कुरबान, अदा, माशूक, जवांमरदी, हुस्नपरस्ती, खुशनसीब, इल्म, तकल्लूफ, कसीदा, मुआमला लमहा शागिर्दी, खाल, कीमा, नमाज, ख्याल, बगैर, बरक्कत।

(ब) अंग्रेजी शब्द —इन्फफएंजा, ब्लडी, डाक्टर, प्रैक्टिस, ड़ाइरेक्टर, एजेण्ट, चेयरमैन, स्पीच कन्वेसर, हियर, अपील, प्रोग्राम, बोटिंक, काउंसिल, फीस, नोट, मेडल, इलेक्शन, पालिसी, फार्म, हाल, पब्लिक, परसेंट, शुगर, हाफ टाइम, बीमेन्स लीग, डेपुटेशन, डेमोक्रेसी मैनिफैस्टो, विजिट, बैंकर, इन्चार्ज ड्यूटी, डाउट।

कहीं-कहीं लेखक ने विदेशी शब्दों के तद्भव रूपों का भी प्रयोग किया है, यथा टैम, हरमुनिया, पुलुस, इसटाम, कालिम, आदि अंग्रेजी के तथा नगीच (नजदीक), साइत, (शायद आदि। अप्रचलित होने के कारण कुछ शब्द खटकते से हैं यथा उड़नघाइयाँ, बुड़बकपन, लाइतहाउस, अनीली, तंगे, इमासुमा, जेरबार, निगाला, कुपद आदि।

शब्दावली की स्वाभाविकता और प्रवाहशीलता प्रदान करने वाला एक अन्य शब्द-रूप प्रयोग है—शब्द-युग्म जो प्रायः ग्राम्य कथा में अधिक प्रयुक्त किये गये हैं यथा ठीक-ठाक, रस-पानी बरतन-भांडे, पोथी-पत्रा, दान-दहेज धूप-घाम दवा-दारु, ताक-झांक, बाट-बखरा, सानी-पानी, मिलना-जुलना, असनान-पूजा, दाई-बाई, तथा डाँड-बाँध, आदि। इसी में कहीं-कहीं दो भिन्न भाषाओं के शब्दों को मिला

कर वे असंगत प्रयोग भी कर गये हैं यथा विशेष दिलचस्पी, तमाशा समाप्त, जिंदगी इंश्यार्ड आदि।

जहां तक प्रश्न है-**वाक्य योजना** का तो 'गोदान' में सामान्यत: छोटे-बड़े दोनों प्रकार के वाक्य देखे जा सकते हैं, साथ ही साथ साधारण, संयुक्त, मिश्रित सकारात्मक-नकारात्मक, व्यंगात्मक, प्रश्नवाचक और विस्मयादि बोधक नाना व्याकरणिक रूपों वाले वाक्य भी। नि:सन्देह ये पात्र-प्रसंगानुकूल भी हैं यथा भावात्मक प्रसंगों में सरल-संक्षिप्त और विवेचन-विश्लेषणपरक स्थलों पर अपेक्षाकृत मिश्रित अलंकृत और लम्बे। कहीं-कहीं ये दोषपरक भी हैं और खटकते भी हैं यथा 'ओर' का अतिशय प्रयोग तथा 'हीरा-बहू' जैसे समास वाले एवं 'चाहिये' क्रिया से सम्बन्धित वाक्य जिनमें सहायक क्रिया के लिंग-रूप प्राय: अशुद्ध हो गये हैं यथा—

(i) अपेनी बुद्धि और साहस से इन पर विजय पाना होगा।

(ii) ऐसे आदमियों को गोली मार देना चाहिये।

(iii) रामसेवक के रुपये अदा कर देना चाहिये।

(iv) "नदी के किनारे चाँदी का फर्श बिछा हुआ था और नदी रत्न जटित आभूषण पहने मीठे स्वरों में गाती चांद को तारों को और सिर झुकाये—।"

प्रस्तुत भाषा को सबल बनाने वाला एक अन्य तत्व है—**मुहावरों लोकोक्तियों** का प्रयोग जिनको लेखक ने प्राय: जन-जीवन से लिया है। कुछ प्रयुक्त मुहावरे-लोकोक्तियां देखिए—

(i) **मुहावरे** कच्ची गोलियां न खेलना, मुँह में ताला पड़ा होना, घर उजड़ना, जलते हुए घर में हाथ सेंकना, नाक पर मक्खी न बैठने देना, हाथ बांधकर खर्च करना, देह ढल जाना, कतर ब्योंत करना, तन-पेट काटना, बाल पक जाना, काठ का उल्लू, दुम दबाकर बैठना, लाख रुपये की बात, जले पर नमक छिड़कना, पांव में सनिचर होना, बाल की खाल निकालना, गज भर की छाती, आँख में धूल झोंकना, तलवे चाटना, साठे पर पाठा होना, नाम बड़े दर्शन छोटे, जल में रहकर मगर से बैर करना, आपे में न होना, छाती फटना, देह में आग लगना, मुँह दिखाने लायक न रहना, पीठ में धूल लगना तथा टके-टके को मोहताज होना।

(ii) **लोकोक्तियां** - बिन घरनी घर भूत का डेरा, नाटन खेती बहुरिगन पर, अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोष, मन-मन भाये मूंड हिलाये, मरते मरते ही तो करेगा, जिसकी बाँह पकड़े उसे निभाये, रस्सी को साँप बनाकर पीटो और तीस मारखां बनो, जूते जाने पर उसके घट्टे बने रहना, संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता, बहत्तर घाटों का पानी पिये फिरना।

'गोदान' का एक भाषागत गुण है—**सटीक, जीवन-सत्य से भरपूर सूक्तियों का प्रयोग**। वस्तुत: "प्रेमचन्द एक सूक्तिकार के रूप में जब भी कथा में हस्तक्षेप करते हैं, तब वह दो कार्य सम्पन्न करते हैं। प्रथम, सम्पूर्ण घटना या क्रिया का सार-रूप प्रस्तुत कर देते हैं। दूसरे, पात्र की प्रतिक्रिया और आचरण समझने के लिये

आवश्यक पुष्ट संकेत प्रदान करते हैं। कभी यह सूक्ति घटना या क्रिया से पहले ही आ जाती है, और कभी बाद में।"[1] कुछ प्रयुक्त सूक्तियाँ देखिये—

"मालती बाहर से तितली, भीतर से मधुमक्खी है।"

"प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं खूंख्वार शेर है।"

"वोट नये युग का मायाजाल, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है।"

"सम्पत्ति और सहृदया में बैर है।"

"हार की लज्जा तो पी जाने की वस्तु है।"

"प्रेम जब आत्म-समर्पण का रूप लेता है, तभी व्याह है,"

"श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है।"

"मोह ही विनाश की जड़।"

"माता का काम जीवन-दान देना है।"

"प्रेम······देह की वस्तु, नहीं, आत्म की वस्तु है।"

समग्रतः, श्री जैनेन्द्र कुमार के शब्दों में, कह सकते हैं, "प्रेमचन्द भाषा के जादूगर हैं······उनकी चुस्त भाषा पर, उनके सुजड़ित वाक्यों पर, मैं किसी से कम मुग्ध नहीं हूँ।···बात को ऐसा सुलझाकर कहने की आदतें मैं नहीं जानता, मैंने और कहीं देखी है।"[2] अपने उपयुक्त भाषागत गुणों के ही कारण ही "कथा-साहित्य के निर्माताओं में ···भाषा विषयक जो उपेक्षा का भाव आ गया था, प्रेमचन्द उसका संस्कार कर सके और जनता के सामने भाषा का साहित्यिक तथा परिमार्जित रूप भी रख सके रुचि, उद्देश्यादर्श और संस्कार के कारण थोड़ा-बहुत परिवर्तित करके उनके परवर्ती कलाकारों ने सहर्ष अपना लिया।"[3]

'गोदान' की शैली

संवाद या नाटकीय—गोदान की सर्वप्रथम शैली है—**संवाद या नाटकीय** शैली जिसके द्वारा लेखक ने कथा-विकास, पात्र चरित्रांकन और यत्र-तत्र उद्देशीय-प्रस्तुतीकरण बड़े कौशल अंकित किये हैं। उल्लेखनीय यह भी है कि स्वयं फिल्मों से सम्बन्धित होने के कारण एवं वैयक्तिक जीवन में सभा-चतुर होने के कारण भी प्रेमचन्द इस शैली को गुणमयी बनाकर प्रस्तुत कर सके हैं। होरी-धनिया, रायसाहब और मित्र-मण्डली, मालती-मेहता आदि के सवादों में इसी शैली का प्रयोग मिलता है। साथ ही साथ, नाटकीय संकेतों एवं पात्र-प्रसंगानुकूल शब्दावली और वाक्य-विन्यास एवं वाक्य-आकार आदि ने इस शैली को प्रभावोत्पादक बना दिया है। सच तो यह है कि प्रेमचन्द की यह प्रिय शैली ही नहीं थी, उपन्यास में वे इसको अत्यावश्यक भी मानते थे—'उपन्यास में वार्तालाप (संवाद) जितना अधिक हो·····उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं

१. त्रिलोकी नाथ खन्ना : गोदान एक नव्य परिबोध : पृ० ११०

२. प्रेमचन्द – एक कृति व्यक्तित्व : पृ० १५७

३. प्रेमनारायण टंडन : गोदान—एक अध्ययन : पृ० १२२

होना चाहिये। प्रत्येक वाक्य को - जो किसी चरित्र के मुख से निकले—उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिये। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूक्ष्म होना जरूरी है।"[1] कहना न होगा कि, मेहता के कुछ दर्शनपरक कथनों को (जो अपेक्षाकृत बड़े, कहीं-कहीं नीरस और सिद्धान्तपरक किन्तु पात्र-प्रसंगानुकूल हैं) अपवाद मानें तो, 'गादान' की संवाद शैली में ये सभी विशेषतायें भरपूर मात्रा में आयी हुई मिलती हैं। प्रमाणार्थ निम्न-संवादांश देखिये—

"क्या ससुराल जाना है जो पाँचों पोसाक लायी है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ?"

"ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहज तुम्हें देखकर रीझ जायेंगी।"

"तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।"

"जाकर सीसे में मुँह देखो। तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते।"

"साठ तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी, धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।"

"अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे तो लगते हो कोसने।"

निःसन्देह "कथोपकथन (का संयोजन करने) में प्रेमचन्द जी को कमाल हासिल है।"[2]

वर्णन (किस्सागो) शैली—इस शैली में लेखक स्वयं की टिप्पणियों द्वारा कथा-घटना-पात्रादि का वर्णन करता है और इस प्रकार, "...पाठक के मस्तिष्क में अभिप्सित प्रभाव अंकित करता है जिससे वह वस्तु ही उस (पाठक) के समक्ष सजीव और सप्राण हो जाती है।...इस शैली की सार्थकता इस तथ्य में निहित है कि वर्णन ..सप्रयोजन तथा प्रासांगिक हो...विविध तथा व्यंजनात्मक हो...जो विस्तृत वस्तु को प्रभावशाली लघुरूप में प्रस्तुत कर दे।"[3] निःसन्देह, प्रेमचन्द, कथाकार और किस्सागो होने के नाते, इस शैली के सफल प्रयोक्ता रहे थे। प्रमाण? होरी और उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, रायसाहब, मालती, खन्ना, पं० ओंकारनाथ, तंखा खुर्शेद आदि के चरित्र-परिचय, खन्ना-गोविंदी, मालती-परिवार, गोबर का शहर में किया गया आथक आदि को लेखक ने वर्णनात्मक टिप्पणियों से ही मुखर किया है। परिणामस्वरूप एक सशक्त वर्णनात्मक टिप्पणी देखिये—

"दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं, ओ जिनकी मुख-

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ७०
२. श्री विश्म्भर मानव : प्रेमचन्द : पृ० १४०
३. डॉ० उषा सक्सेना : हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास पृ० ११०

छवि पर हसी फूटी पड़ती है, मिस मालती है। आप इंगलैंड से डाक्टरी पढ़ आयी हैं, और अब प्रैक्टिस करती हैं।...आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब, पुरुष मनोविज्ञान की अच्छी जानकर, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण।"

विश्लेषण शैली—"कथा, घटना' परिस्थिति, पात्र तथा कार्य के सूत्र में निहित कारणों पर वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण शैली के द्वारा प्रकाश पड़ता है। विश्लेषणात्मक शैली के प्रक्षेप प्रकाश के द्वारा प्रत्येक परिस्थिति, घटना तथा पात्र के कार्य का कारण स्पष्ट हो जाता है।"[2] निःसन्देह यह विश्लेषण पात्र के चरित्र, मनःस्थिति और वाह्य परिस्थिति, किसी का भी हो सकता है, शर्त यह है कि यह मनोविज्ञान सम्मत, सत्याभास कराने वाला, सूक्ष्म और सटीक हो। गोदान-कार ने भी इस शैली का यही सुष्ठु रूप यत्र-तत्र प्रयोग किया है यथा —

(i) **पात्र-चरित्र**—"विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा।"

(ii **पात्र की मनःस्थिति**—"गोबर इस समय बच्चों की सी बातें किया करता।...कभी देखता, वह नदी में डूबा जा रहा है और झुनिया उसे बचाने के लिये नदी में चली आ रही है। कभी देखता, कोई दैत्य उसकी छाती पर सवार है...और बार-बार चौक कर पूछता—मैं मरूंगा तो नही, झुनया ?'

परिस्थिति विश्लेषण—"धनिया ने मौत की सूरत देखी थी, उसे पहचानती न थी। उसे दबे पांव आते भी देखा था, आंधी की तरह भी देखा था ..मृत्यु समीप आ गई थी, आग दहकने वाली थी, धुँआ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आंखों ने देखा, दोनों कोनों में आँसू की दो बूँदें ढुलक पडी। सारा गाँव जमा हो गया।"

भावात्मक (काव्यात्मक) शैली—भावप्रद, मर्मस्पर्शी और कोमल प्रसंगों तथा यत्र-तत्र के दृश्य-वर्णनों में गोदानकार ने इस शैली को भी प्रयुक्त किया है। सूक्ष्मता, गहनता, हलकी सी आलंकाकिता, यदा कदा सूक्तिपरकता तथा सब मिला-कर प्रभावोत्पादकता आदि इस प्रयोग की अपनी विशेषतायें हैं तथा होरी-धनिया का प्रारम्भिक संवाद, मेहता का प्रकृति-प्रेम, मालती का मातृत्व, गोविंदी का आदर्श-मय नारीत्व, खन्ना का हृदय-परिवर्तन, गोबर-झुनिया का प्रेम आदि इसके कुछ प्रमुख प्रयोग-स्थल है। एक उदाहरण देखिये—

"वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से

२. वही : पृ० ११२

रंजित कर देती है। फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है उसके बाद विश्राममय सँध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं।"

पूर्वस्मृति (Flash Back) शैली—मनोविज्ञान-क्षेत्र से आयी इस शैली में "घटना या घटनाओं को तत्काल न दिखा कर किसी पात्र की स्मृति में लौटा कर दिखाया जाता है।" गोदान में यत्र-तत्र इस शैली का सम्मत प्रयोग किया गया मिलता है यथा होरी धनिया-सवाद में, धनिया की युवा-कालीन घटनाओं की, मेहता की स्मृति में बाल्यकालीन, होरी की स्मृति में गऊ की लालसा की स्मृति आदि।

व्यंग्य शैली—समाज की असँगतियों, प्रचलित व्यवस्था और उसके विभिन्न पक्षों, शोषण-अन्याय, आधुनिकता, स्त्री-स्वातंत्र्य, विवाह, नाना कुरीतियों तथा प्रचलित विचारधाराओं पर करारे व्यंग्य करते हुए उनकी निस्सारता से परिचित विचार-धाराओं पर करारे व्यग्य करते हुए उनकी निस्सारता से परिचित कराना 'गोदान' का एक महत् उद्देश्य है और उसके लिये स्थान-स्थान पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे व्यंग्य शैली का प्रयोग किया जाना एक सशक्त साधन। सच तो यह है कि व्यंग्य करने में प्रेमचन्द अत्यन्त पटु है और उनके व्यंग्य चुटीले न होने पर भी मनोरंजन मिठासयुक्त तथा सटीक वार करने में क्षम हैं। 'गोदान' के प्रो० मेहता के अधिकांश कथन इसी के प्रमाण हैं। कुछ व्यंगोक्तियां देखिये—

(१) बहुत करके तो मर्द ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मर्द इधर-उधर ताक-झांक करेगा तो औरत भी आँख लड़ायेगी। मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा तो औरत भी जरूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी।"

(२) "अगर आप मजबूर हैं तो सिद्धान्त का ढोंग छोड़िये।···जो व्यक्ति कर्म और वचन में सामजस्य नहीं रख सकता, वह···सिद्धान्तवादी नहीं हैं।"

(३) "तुम सब कुछ कर सकती हो लेकिन प्रेम नहीं कर सकतीं।"

(४) "पुरुष के पास दान के लिये क्या हैं? वह देवता नहीं लेवता है।"

(५) पश्चिय की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिय कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। भोग की विदग्ध लालसा ने उच्छंखला बना दिया है।"

उपसंहार—वस्तुत: प्रेमचन्द की शैली मनोभावों के अनुरूप अपना वेश-विधान करती हैं।" उसकी सबसे बड़ी विशेषता है—वैयक्तिता की छाप (जो भाषा-पक्ष में भी भरपूरत: मिलती है) सच में तो, 'गोदान' की भाषा और शैली में विविधता और प्राय: सभी प्रचलित रूपों का पर्याप्त योग होने पर भी, एक विशिष्टता है—सुन्दरता, सौष्ठता, गुणवक्ता और कलात्मकता में परिपूर्ण जिसको एक शब्द में 'प्रेमचन्द भाषा-शैली' की संज्ञा दी जा सकती है।

विवेच्य प्रश्न

१. उपन्यास-रचना में भाषा-शैली की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए 'गोदान' की समीक्षा कीजिये ।

२. भाषा-शैली के विषय में प्रेमचन्द की धारणाओं को स्पष्ट कीजिये और उनके परिप्रेक्ष्य में 'गोदान' की भाषा-शैली का परीक्षण कीजिये ।

३. कला-शिल्प की दृष्टि से 'गोदान' का विवेचन कीजिये तथा उसकी कला शिल्पगत विशेषताओं का सप्रमाण परिचय दीजिये ।

४. 'गोदान' की भाषा-शैलीगत विशेषतायें बताइये ।

५. 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द के अभिव्यक्ति-कौशल का परिचय दीजिये ।

६. कला की दृष्टि से प्रेमचन्द का 'गोदान' कोई नवीन प्रयोग प्रस्तुत नहीं करता ।" इस कथन की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये ।

———

१८ गोदान : नामकरण (शीर्षक) की सार्थकता

उपन्यास-रचना और नामकरण

संसार की हर एक वस्तु किसी न किसी नाम विशेष से विभूषित होती है, होनी भी चाहिये। कारण यह है कि अरूप को रूप और निर्गुण को गुण नाम ही दे पाता है। वस्तुतः, नाम ही वह द्योतक-संकेत है जो व्यापक या विशाल को सक्षिप्त में और निराकार को साकार में अभिव्यक्त करता है। सच तो यह है कि नाम के अभाव में किसी वस्तु की कल्पना तक कर पाना सम्भव नहीं है। दूसरी ओर, हम देखते हैं कि हमको अपनी ओर आकर्षित करने, हमारे मानस पर वस्तु विशेष का बिम्ब बनाने तथा उसका प्रथम प्रभाव उत्पन्न करने वाला तत्व उसका नाम ही होता है। साहित्य-रचना भी इसका अपवाद नहीं। नि-सन्देह, साहित्य और उसमें भी उसकी विशालकाय विधा उपन्यास-रचना के क्षेत्र में तो 'नाम' का महत्व और भी अधिक होता है। प्रायः, उपन्यास दीर्घकायी रचना होती है जिसमें 'फँसने' के लिये पाठक पर न तो धैर्य होता है, न समय। यह तो उपन्यास का नाम ही होता है जो पाठक को सर्वप्रथम उसकी ओर आकर्षित करता है। निःसन्देह, पाठक उपन्यास-रचना से पहले उसके नाम से परिचित और आकर्षित होता है, तभी उसके मानस में कौतूहल या जिज्ञासा की भावना बलवती होती है जिससे प्रेरित होकर ही पाठक उपन्यास के पठन में लगता-रमता है। इस प्रकार उपन्यास-रचना और पाठक के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाला प्रथम और निःसन्देह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व नामकरण ही है। इतना ही नहीं वरन् रचना की मूल्यगत चेतना को उजागर करने, रचना की संभाव्यता को कम से कम शब्दों में प्रकट करने तथा उसकी अपनी वस्तु-प्रकृति को निर्दिष्ट करने जैसे कार्य भी यह नामकरण ही सम्पादित करता है। इस सब पर भी कम से कम शास्त्रीय क्षेत्र में, यह बेचारा नामकरण प्रायः उपेक्षित या नगण्य मात्र बना हुआ मिलता है। इसके सम्बन्ध में न तो विशेष सिद्धान्त-निर्धारण किया गया है, न विस्तृत-गहन विवेचन। यहाँ तक कि स्वय रचनाकारों तक ने इस सम्बन्ध में उन्मुक्त कल्पना और स्वच्छन्दता का खुला परिचय दिया है। प्रभाव है—उपन्यासों के किये गये नामकरण।

हिन्दी-उपन्यासों में रचना के नाम मुख्यतः वस्तुमूलक, चरितमूलक और समस्यामूलक मिलते हैं यद्यपि अन्य कई आधारों पर रखे गये नाम भी आसानी से

देखे जा सकते हैं यथा नायक अथवा नायिका के नाम पर (शेखर : एक जीवनी, चित्रलेखा, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य), उनकी किसी विशेषता (बड़ी-बड़ी आँखें, मृगनयनी), कार्य (महाभोज, गबन), मनोभाव (प्रेम की प्यास), विशेष पात्र (आपका बटी), स्थान (गढ कुन्डार, झाँसी की रानी) ; उद्देश्य (वयं रक्षाम, सेवा सदन) घटना या कार्य विशेष (गबन, लौटते हुए), वस्तु विशेष (मगल सूत्र, मैला आंचल), प्रतीक (सारा आकाश, चित्तकोबरा) समयावधि (बारह घन्टे, तीन वर्ष, नये वर्ष की शाम) रचना-उद्देश्य (प्रेमाश्रम, आदि से लेकर 'विदा, बंधु विदा,' 'जो', 'गली आगे मुडती है', 'राग दरबारी', खुले आम', 'धूप छाँही रंग', 'दरबार के इधर उधर', 'अधूरी मंजिल'. 'गाँठ' और 'शव यात्रा' तक विविध प्रकार के नामकरण ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो उपन्यास का नामकरण करने में एक ओर यदि उसकी कथा-पात्र, उद्देश्यादि से अनुकूलता अनिवार्य है तो दूसरी ओर उसकी जिज्ञासावर्धकता की क्षमता, रोचकता. सरलता, संक्षिप्तता और मौलिकता का होना भी उपादेय बताया गया है सच मे तो, यही वह कसौटी है जिस पर कसे जाकर किसी उपन्यास-रचना के नामकरण की सार्थकता अथवा औचित्य या सफलता असफलता को परखा जा सकता है।

प्रेमचन्द और उपन्यास-रचना का नामकरण—अपने उपन्यासों के नामकरण में प्रेमचन्द अत्यन्त सजग रहे मिलते हैं। यूँ, उन्होंने प्रारम्भ में एक ही उपन्यास को, तत्कालीन प्रथानुसार, दो-दो नाम भी दिये हैं (यथा प्रेमा या प्रतिज्ञा) और एक ही उपन्यास को उर्दू हिन्दी मे अलग-अलग नाम भी (यथा ,बाजार ,ए-हुस्न' उर्दू में और सेवा सदन हिन्दी मे)। साथ ही साथ, प्रधान पात्र (निमला), ,कार्य (गबन), प्रतीक (रंगभूमि, कायाकल्प) तथा उद्देश्य (सेवा सदन, प्रेमाश्रम) आदि विविध-आधारों पर भी नामकरण किया है। निःसन्देह, कभी कभी एक ही नाम कई आधारों को भी अपने में समेटे हुए मिलता है। प्रमाण है—'गोदान' का नामकरण।

'गोदान' : नामकरण की सार्थकता

अर्थ और परिचय - प्रो० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' के कथनानुसार, "ग्रामीण उच्चारण की स्वाभाविकता के विचार से, इस (उपन्यास) का नाम पहले 'गोदान' रखा गया था। इन पंक्तियों के लेखक ने उक्त नाम को पसन्द नहीं किया। अतः जंसा कि प्रेमचन्द जी स्नेह वश किया करते थे, उसी क्षण 'गौ' की जगह 'गा' लिख दिया गया।"[1]

गौदान अथवा गोदान वस्तुतः हिन्दू-समाज में मान्य एक धार्मिक क्रिया है जिसका अभिधार्य है—गाय का दान करना। प्रचलित मान्य धारणा के अनुसार, मृत्योपरान्त मृतात्मा वैतरणी नदी को पार करके ही प्रेतलोक तक पहुँच पाती है।

१. प्रेमचन्द की उपन्यास-कला : पृ० १७

माना जाता है कि यह नदी गाय की पूँछ पकड़कर, उसी के सहारे, पार की जा सकती है। इसी से, प्रत्येक हिन्दू का विश्वास है कि जीवन में, या कम से कम मृत्यु के समय, यदि कोई गाय ब्राह्मण को दान कर दी जाये अथवा उसका मूल्य-दान कर दिया जाये, तो उसे मरने पर मुक्ति या मोक्ष प्राप्त हो सकेगी। सैंकड़ों वर्षों से यह धारणा विश्वास में और परम्परा रूढ़ि में बदल चुकी है और गोदान भी मुक्ति या मोक्ष का पर्याय बन चुका है। इसी से हिन्दुओं के प्रत्येक धार्मिक कार्य से लेकर अन्तिम क्रिया तक 'गोदान' करने-कराने का विधान है।

नामकरण की सार्थकता विवेच्य उपन्यास की कथा का विवेचन करने पर हम पाते हैं कि 'गोदान' नायक होरी का अन्तिम कार्य है, वह भी ऐसा जो वह स्वयं नहीं करता वरन् मरणासन्न अवस्था में उससे कराया जाता है। वस्तुतः, यही वह क्रिया है जिसको होरी आजीवन, चाहते रहने पर भी, पूरा नहीं कर सका था। कारण थी उसकी अति की निर्धनता जो पूँजीवादी व्यवस्था में निरन्तर उत्पीड़ित होते रहने वाले होरी जैसे सामान्य-निर्धन किसान (आम भारतीय) की विवशता भरी त्रासदी थी। यही व्यवस्था इस समस्या की मूल थी और इसी का व्यंगात्मक प्रतिपादन करना प्रस्तुत उपन्यास-रचना का महत् उद्देश्य है। इस प्रकार 'गोदान' नाम एक ओर यदि समस्यामूलक बन गया है तो दूसरी ओर नायक होरी और रचना के महत्तम उद्देश्य से निकट सम्बन्धित भी हो गया है।

कथारम्भ में होरी 'गोदान' का नहीं, 'गोमान' का इच्छुक । "हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। वही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी।" कारण भी स्वयं उसी के शब्दों में, "द्वार पर बँधेगी तो द्वार की शोभा बढ़ जायेगी।" वह चाहता था कि "लोग गाय को द्वार पर बँधी देखकर पूछें—यह किसका घर है?" वस्तुतः, होरी को, गाय के माध्यम से, लोकैषणा की साध थी, बच्चों को दूधादि सरलता से मिल पाने का लोभ और उधार में अपेक्षाकृत सरलता से मिल पाने वाली होने पर पा लेने का लालच भी क्योंकि किसान होने के नाते गाय के सामाजिक-आर्थिक महत्व के साथ-साथ "उधार को वह एक तरह से मुफ्त का माल" भी समझता था। उसकी व्यवहार कुशलता और उससे भी कहीं अधिक उसकी कृषक-सुलभ झाँसा देने की चालाकी भरी वृत्ति के फलस्वरूप उसको सुन्दर स्वस्थ गऊ मिल जाती है। फलतः, उसकी चिरसंचित साध पूरी होने लगती है। उसको लोकैषणा-सन्तुष्टि का सुख मिलता है तो धनिया जैसी व्यवहारकुशला और दुनियादार औरत को दूध-घी का लोभ-सन्तुष्टिकरण। भावी सुख में डूबे दोनों ही प्रसन्नता का इजहार भी करने लगते हैं। मगर गृहस्थ का यह साधारण सुख उनके भाग्य में कहाँ? प्रमाण? पहली ही रात को नई-नवेली गाय की असामयिक मृत्यु उनको झिझोड़ ही नहीं देती, पारिवारिक कलह और ऋण की कटु यथार्थ भरी भावी स्थिति और अर्थ-विपन्नता की दानवी को साकार भी कर देती है। सगा भाई हीरा ही गाय को

विष देकर मार डालता है। पारिवारिक बिगड़ते-ईर्ष्या भरे सम्बन्ध, ग्राम्य समाज की अर्थ-विभीषिका और निरीहता-विवशता भरी स्थिति एक बार पुनः होरी को गोदान क्या 'गोमान' से ही वंचित कर देती है। फलतः 'गोदान' का नाम एक ओर आर्थिक रूप में और दूसरी ओर उसी के एक स्वाभाविक परिणाम-दारुण दुःख-में 'हाय' बनकर एकदम व्यंगात्मक और व्यंजनात्मक रूप में सार्थक सिद्ध होकर उभरता है।

फिर भी होरी हारता नहीं। 'गोदान' की लालसा अन्त तक उसके पीछे लगी रहती है। यहाँ तक कि मृत्यु-पूर्व की अचेतावस्था में वह यही बड़बड़ाता है कि, "गोबर! मैंने मंगल के लिये गाय ले ली है" तो चेत आने पर भी धनिया से यही कहता है—"अब जाता हूँ गाय की लालसा मन में ही रह गई।" गोदान के इसी व्यंग्य को अत्यन्त सार्थक रूप में लेखक उभरवाता है—स्वयं गो-हत्यारे हीरा के मुख से—"अभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो।" सुनते ही धनिया हत्यारे हीरा को तिरस्कार भरी आँखों से देख मानो उस पर व्यग ही करती है और तुरन्त अपने सच्चे कर्त्तव्य का बोध करते हुए, घर की कुल जमा-पूँजी 'बीस आने' दातादीन के हाथ पर रख, "महराज, घर में गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है" कहते हुये स्वयं तो पछाड़ खाती ही है, पंडित महराज को भी पछाड़ देती है—पाठक के मन में कड़वे यथार्थ के प्रति कड़वाहट भरी करुणा को जगाते हुये।

'गोदान' नाम की सार्थकता का एक सबल और व्यंगमय पक्ष धार्मिक भी है। दृष्टव्य बात यह है कि, "...मनुष्य के अभावग्रस्त जीवन में आज धर्म के लिये कोई भी स्थान शेष नहीं रह गया है।... 'गोदान' की रचना जिन दिनों हुई थी, उन दिनों धर्म और मोक्ष की मान्यतायें महत्वहीन हो गई थीं। व्यक्ति और व्यक्ति के जीवन में आर्थिक शोषण की इतनी अधिक पीड़ा परिव्याप्त थी कि उसके लिये उसके जीवन की वेदना ही चरम सत्य बन गई थी।"[1] पं० दाताहीन और होरी इसी के प्रमाण है—पहला आर्थिक-धार्मिक शोषण करने वाले का और दूसरा पग-पग पर तिल-तिल करके शोषित बने रहने वाले का। निःसन्देह, इस शोषक से होरी का पीछा मृत्यु के बाद भी नहीं छूटता। कारण? निःसन्देह धार्मिक ही है जो दाताहीन ही स्पष्ट कर देते हैं—"अन्तिम समय है, होरी का **मुक्ति प्राप्त करने** के लिये अपने हाथ स गोदान करने दो।" कहना न होगा कि "गोदान की इस अन्तिम घटना द्वारा हिन्दू समाज की खोखली, परम्परागत मान्यताओ पर बड़ा ही करारा और कलात्मक व्यंग्य" करने के साथ-साथ, युगानुरूप एक सशक्त प्रश्न भी उठा दिया गया है। सवा रुपये (बीस आने) में गाय चाहे ना मिले किन्तु शोषक दातादीन पंडित जी से 'मुक्ति का लाइसेन्स' अवश्य मिल जाता है क्योंकि आखिरी बूँद तक

१. रामकृष्ण मिश्र : गोदान-सौन्दर्य और समीक्षा : २३६

निचोड़ लेने में माहिर पंडित जी उन 'बीस आनों' को ही गौ के बराबर मान लेते हैं।

यहीं पर एक बात और। पडित (दाताहीन) वर्ग के इस खुले शोषण का विरोध तो होता ही नहीं, प्रकारान्तर से सभी शुभचिन्तकों (समाज) तक का खुला, अन्ध समर्थन प्राप्त है। उपस्थित जन-समूह होरी के उपचार की चिन्ता नहीं करता, हाँ, "गोदान करा दो, अब यही समय है" की आवाज जरूर उठाता है। स्वयं धनिया तक भी, निःसन्देह धर्मभीरु होने के कारण, यही सोच कर रह जाती है, "क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।" कहना न होगा कि धनिया की यह निष्क्रियता 'गोदान' के प्रति उपेक्षा की भावना जाग्रत कराती है तो एकत्रित, सम्पन्न-सुखी जनों की 'गोदान' की बात सुनते ही तुरन्त हाँ में हाँ मिलाने की प्रकृति और आजीवन होरी का शोषण करते रहने वालों का अचानक ही उसकी मोक्ष प्राप्ति के उपाय बताकर झूठी सहानुभूति और खोखली कल्याण-भावना दिखाना इस मान्यता के खोखलेपन को ही उजागर करती है।

एक उल्लेखनीय ध्यातव्य बात और है—'गोदान' उपन्यास के नामकरण में रस-सिद्धि और शील-प्रकाश का व्यंग्य-मर्म-संयोग। ध्यान दें तो प्रस्तुत उपन्यास का सर्वोपरि रस करुणा है। "... रस की दृष्टि से करुणा के फलागम की चरम वेला या निर्वहण सन्धि तब आती है, जब होरी से गोदान कराया जाता है, जिसे वह जाते-जी नहीं कर सका।... बीज रूप से जो गो का सपना प्रारम्भ हुआ, उसका अन्तिम अर्थ असत् का यह द्रव्य-कंकाल है जो सुतली के पैसों के रूप में है।"[1]

शास्त्रीय दृष्टि से भी 'गोदान' नाम एकदम गुण सम्मत है। केवल दो शब्दों का होने के कारण संक्षिप्त, साथ ही साथ सरल, कौतूहलवर्धक, प्रधान पात्र (होरी) तथा प्रधान घटना (गोदान) से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित तथा नायक होरी की जीवन-वेदना की प्रतीति कराने वाला और समग्रः मूल कथा-प्रवाह से सम्बन्धित भी है। इस नाम की अन्य कोई रचना न होने के कारण यह एकदम मौलिक भी है। निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं, " 'गोदान' नाम, नाम ही नहीं रूप भी है ... इतनी सफल विभावना भूरिशः प्रशंसनीय है।"[2]

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' का तात्पर्य स्पष्ट करते हुए इसके नामकरण-विषयक विशेषतायें बताइये।

२. नामकरण की दृष्टि से 'गोदान' की समीक्षा कीजिये।

३. उपन्यास में नामकरण का महत्व बताते हुये 'गोदान' के नामकरण का औचित्य सिद्ध करो।

४. श्रेष्ठ नामकरण की कसौटी को स्पष्ट करते हुए 'गोदान' नाम की सार्थकता बताइये।

१ २. श्री जगदीश पाण्डेय : शील निरूपण—सिद्धान्त और विनियोग : पृ० १-३

५. (उपन्यास के) शीर्षक से आप क्या समझते हैं तथा इस दृष्टि से 'गोदान' शीर्षक कैसा बन पड़ा है ? सप्रमाण मत-प्रतिपादन कीजिये ।

६. "गोदान नामकरण की दृष्टि से एकदम सबल है" — इस मत की पुष्टि कीजिये ।

७ 'गोदान का नामकरण मूल समस्या को दृष्टि में रखकर किया गया है ।'' सिद्ध कीजिये ।

८. 'गोदान' का नाम 'गौदान' भी हो सकता था ।'' इस कथन के पक्ष/विपक्ष में अपना तर्कसम्मत मत कीजिये ।

९. ''गोदान' नाम नाम ही नहीं, रूप भी है ।'' इस कथन की व्याख्या कीजिये ।

१०. 'गोदान' उपन्यास के नामाधारों को स्पष्ट कीजिये तथा इस नाम के गुण-दोषों का परीक्षण कीजिये ।

———

१६ 'गोदान' : नारी-चित्रण

नारी-चित्रण और उपन्यास-रचना—उपन्यास मानव जीवन का चित्र है। यही कारण है कि उसमें मानव जीवन के विविध पक्षों, अंगों तथा उनके उत्थान-पतन, सुख-दुःखादि का चित्रण किया जाता है। दूसरे शब्दों में, उपन्यास मानव-जीवन के विभिन्न कार्य-कलापों का अलबम है। ये कार्य-कलाप विभिन्न मानवों के ही होते हैं जिनकी औपन्यासिक संज्ञा पात्र या चरित्र है। कहना न होगा कि इन पात्रों या चरित्रों में पुरुष और नारी दोनों ही होते हैं। इस प्रकार, उपन्यास में पुरुष-पात्रों के साथ-साथ, जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति, नारी-पात्र भी आ जाते हैं। इन नारी-पात्रों का चित्रण ही 'नारी चित्रण' कहलाता है।

आर्नल्ड बेनेट के शब्दों में "कथा साहित्य (उपन्यासादि) का मूलाधार चरित्र-चित्रण ही है, अन्य कुछ नहीं। कथा की घटनायें तो प्रायः पात्रों के स्वभाव और प्रकृति से ही प्रसूत होती हैं। उसके वातावरण या देशकाल का निर्माण चरित्रों को स्वाभाविकता और वास्तविकता प्रदान करने के लिये ही किया जाता है। कथनोपकथन घटनाओं से भी अधिक चरित्र को ही व्यंजित और प्रकाशित करता है तथा कथा के उद्देश्य की महत्ता भी चरित्र में ही निहित होती है।"[1] इस प्रकार एक तो पात्र—जिसमें नारी-पात्र भी सम्मिलित है, उपन्यास का मूलतत्व है, दूसरे 'मानव जीवन के चित्र' में मानव के प्रमुख अर्धांग नारी का आना भी स्वाभाविक है। तीसरे, सामाजिक उपन्यासों में क्योंकि सामाजिक अवस्थाओं और रूपों का प्राधान्य होता है और समाज में नारी का भी महत्वपूर्ण स्थान है अतएव नारी-चित्रण आवश्यक होता है। चौथे, स्वयं उपन्यासकार द्वारा विस्तृत कथानक के अन्तर्गत उसकी नारी सम्बन्धी मान्यतायें भी आ जाती हैं। इन्हीं कारणों से 'गोदान' में नारी-चित्रण का होना न केवल आवश्यक वरन् स्वाभाविक है।

गोदान में नारी चित्रण—प्रेमचन्द जी कृत 'गोदान' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें भारतीय समाज के दोनों अंगों—ग्राम्य और नागरिक—की गाथा कही गयी है। इसीलिये इसके नारी-पात्रों में दोनों ही समाजों की प्रतिनिधि नारियों को लिया गया है यथा धनिया, झुनिया, मिस मालती, सरोज, बरदा, चुहिया, गोविंदी, दुलारी, सोना, रूपा, सिलिया, कलूटी आदि। इनमें से मालती और गोविंदी नागरिकायें तथा शेष ग्राम्य समाज की नारियों की प्रतीक हैं। वर्ग की दृष्टि से इन्हें **उच्च, मध्यम** और **निम्न** तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

१. देखिये : हिन्दी-साहित्य कोश—भाग १ : पृ० ४८६

गोविंदी उच्च-वर्ग की, मिस मालती मध्यम वर्ग की तथा शेष सभी निम्नतर वर्ग की हैं। सामाजिक या पारिवारिक रूप से, ये नारियां माता, पत्नी, पुत्री, बहिन, सास, ननद, भाभी और प्रेमिका आदि प्रायः सभी वर्गों की हैं। इनमें प्रधान रूप से नारी के तीन रूप—माता, पत्नी और प्रेमिका—ही 'गोदान' में अधिक प्रकट हुए हैं। इनके चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार ने वर्णनात्मक, मनोवैज्ञानिक, संवाद, क्रिया-कलाप, प्रभाव और रेखाचित्र आदि सभी विधियों का प्रयोग किया है।

'गोदान' में नारी के ग्राम्य और नागरिक दोनों रूप प्रस्तुत किये गये हैं। दूसरे शब्दों में भारतीय नारी के वर्तमान दोनों रूपों—भारतीय और पाश्चात्य प्रभाव से युक्त-को गोदान में साकार किया गया है। धनिया ग्राम्य (अथवा भारतीय) नारी की प्रतिनिधि पात्रा है।" होरी महतो की स्त्री, छत्तीसवें साल में ही जिसके सारे बाल पक गये, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी, सारी देह ढल गयी, सुन्दर गेहुंआ रंग सांवला हो गया और आँखों से कम सूझने लगा"—धनिया का यह परिचय ही मानो एक सरल हृदया, ग्राम्य नारी को साकार कर देता है वह सरलहृदया, दुनियादारी की बातों में कुशल, उदार, स्वाभिमाननी, साहसी और दृढ़, मातृत्व और वात्सल्य आदि से युक्त औरत है। इसी के साथ २ उसमें कुछ ग्राम्य नारीयोचित कमियां (अपनी प्रशंसा की भूखी, क्रोध, वाचालता, अपशब्दों तक का खुला प्रयोग तथा अन्धविश्वासों की अनुयायी आदि) भी हैं। अपने इन गुण-दोषों में उसका चरित्र एक ऐसा दर्पण है जिसमें निम्न वर्ग की ग्रामीण नारी के सभी गुण-दोषों का (अर्थात् प्रतिनिधित्व गुण का) दर्शन किया जा सकता है। स्वयं अपने पति के शब्दों में वह "सेवा और त्याग की देवी ! जबान की तेज पर मोम जैसा हृदय। पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली पर मर्यादा रक्षा के लिये अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। ××× कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुंह तोड़ जवाब दिया कि आज तक नहीं भूले।" डा० **त्रिलोकी नारायण दीक्षित** के शब्दों में, 'धनिया भारतीय नारी की प्रतीक है जो आजीवन अधखाये और अर्धनग्न रहकर परिवार के हित के लिये स्व-व्यक्तित्व का बलिदान कर देती है।"[1] एक शब्द में धनिया का सम्पूर्ण चरित्र स्वाभाविक' है। वह एक स्वाभाविक पत्नी, एक स्वाभाविक माता और एक स्वाभाविक ग्राम्य नारी है। (उपन्यास के) प्रथम परिच्छेद से ही वह होरी के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती दिखाई पड़ती है। जमींदार, पुलिस, महाजन, पंचायत आदि के प्रसगों में वह होरी के साथ छाया की भाँती लगी रहती है, उसके सभी सुख-दुख में उसकी संगनी बनी रहती है। इसी प्रकार, गोबर-झुनिया के प्रेम-प्रसंगों में वह एक ओर जहां गोबर को बुरा भला कहती है वहीं दूसरी ओर निस्स-

१. देखिये : प्रेमचन्द-चिंतन और कला : पृ० २१३

हाय झुनिया को, समाज की परवाह न करके, आश्रय देती है। सोना के विवाह के समय भी न माँगे जाने पर भी शक्ति से अधिक देहेज देती है। इसी प्रकार, देवरों से झगड़े, सिलिया की सहायता आदि उसके ग्राम्य नारी के ही स्वाभाविक रूप के उदाहरण हैं। धनिया एक ओर जहाँ समाज में अपने पति की सहभागिनी है वहीं दूसरी ओर परिवार में गृहदेवी भी है। डॉ० डीक्षित ने ठीक ही कहा है, "उनके (प्रेमचन्द के) उपन्यासों में व्यक्त इन गृह-देवियों में कुछ ऐसी विशेषतायें है जो प्राय: सभी में उपलब्ध होती हैं। त्याग की ये सभी साक्षात मूर्तियाँ हैं। ये सभी अपमान, अवमानता उपेक्षा, वंचना तथा शोषण रूपी विष का पान करके परिवार में स्नेह रूपी अमृत की वर्षा करती हैं। × × × वास्तव में धनिया भारतीय गृहदेवियों का यथार्थ चित्र है।"[1] धनिया की ही भाँति झुनिया, सिलिया, दुलारी, सोना, रूपा आदि भी ग्राम्य समाज की नारियों के प्रतिबिम्ब हैं जिनमें भारतीय नारी के विभिन्न रूप में अंकित हुए मिलते हैं।

नगर-कथा के अन्तर्गत, मिस मालती, गोविंदी और मीनाक्षी आदि प्रमुख नारी-चरित्रों की अवतारणा की गयी है। मिस मालती स्वयं उपन्यासकार के शब्दों में, "दूसरी महिला जो ऊंची एड़ी का जूता पहने हुये है और जिनकी मुख छवि पर हंसी फूटी पड़ती है, मिस मालती है। × × आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिरजवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकर, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है वह प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान हैं वहाँ हावभाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह।"[2] इसी प्रकार "चंचल वह इतनी हैं कि जरा से उकसाने पर ओंकारनाथ को अपने शब्द-जाल में फँसाकर शराब पिला देती है, मनचली ऐसी है कि उसको चारों ओर रसिको का जमघट चाहिये।" सामाजिक रूप से, ऐसी स्वच्छन्द नारी होने पर भी 'मालती बाहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी। × × × वह हंसती है। इस लिये कि उसे उसके भी दाम मिलते हैं। × × × वह घर की सारी स्थिति सम्हालती है, दोनों बहिनों की पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध करती है और सदा इस प्रयत्न में रहती है कि मेरे शराबी-कबाबी पिता भी सात्विकता के साथ रहे।" इस प्रकार, मालती भी मूलत: भारतीय नारी ही है, किन्तु पाश्चात्य सभ्यता की साकार प्रतिमा। उपन्यास के अन्त तक आते-आते तो वह प्रो० मेहता-भारतीय नारी के पक्षपाती से परास्त हो जाती है मानो मालती के रूप में भारतीय नारी के सम्मुख पाश्चात्य वातावरण में ढली नारी परास्त होती है। मालती की यह स्वीकृति, "तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो··· तुमने आकर प्रेरणा दी, स्थिरता दी। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब

१-२. प्रेमचन्द-चिंतन और कला : (स० डॉ० इन्द्रनाथ मदान : पृ० २२१-२२

मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है।...यह मेरी पूर्णता है।" मानो मालती के सत्यथ पर अग्रसर होने की भविष्यवाणी है। इस प्रकार, मालती उस उच्चमध्य-वर्ग की नारी का प्रतीक है जो पाश्चात्य भौतिकवादी विचारधारा से प्रेरित होकर अपने नारीत्व को भी दाँव पर लगा देती है, नारी के सच्चे रूप को झुठला देती है और अन्त में परास्त होकर एकदम भारतीय नारी के परम्परागत आदर्शानुकूल" तथा श्रद्धा की वस्तु" तक बन जाती है। समग्रत वह तितली वाले रूप को त्याग मधुमक्खी बन जाती है।

खन्ना की पत्नी गोविंदी उच्च वर्ग की वह नारी है जो, आधुनिकता के नाम पर, पति द्वारा किये गये अत्याचारों और अन्याय को सहन करती है, और चुप रहती है। कामुक, अत्याचारी, अन्यायी और एय्याश पात भी उसके लिये 'परमेश्वर' है, उसका घर ही उसके लिये 'स्वर्ग है इसीलिये 'विवाह-विच्छेद' जैसा उपाय तो वह सोच ही नहीं सकती और सुझाये जाने पर भी, परिवार-मोह के कारण ग्रहण नहीं कर सकती। इस प्रकार वह त्याग, सहनशक्ति और ममत्व भाव की मूर्ति है। मीनाक्षी वरदा, सरोज आदि भी आधुनिक नारी के प्रतिबिम्ब हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोदान में उपन्यासकार ने भारतीय नारी का सजीव और व्यापक दृष्टि से चित्रण किया है। वास्तव में 'गोदान एक ऐसा अलबम है जिसमें नारी के परम्परागत और नूतन दोनों रूप मिलते हैं यहां ग्रामीण और शहरी, पोषक और शोषित, उच्च और निम्न सभी प्रकार की नारियाँ हैं। डॉ० प्रेमनारायण टंडन के अनुसार, "प्रेमचन्द की दृष्टि में स्त्री, पुरुष की सहचरी है, अनुचरी नहीं। हाँ, अपनी सेवा, भक्ति और अनुपम त्याग के कारण भारतीय नारी स्वयं अपने को पति की अनुचरी समझती है।"[1] धनिया, झुनिया, गोविंदी और मालती तक इसी भावना से अनुप्रेरित हैं और 'लेखक के नारी-स्वप्न को ही अतत: साकार करती है।"

प्रेमचन्द की नारी आदर्श और पूजनीय है, यदि भारतीय नारी-संस्कारों से युक्त है। मेहता के शब्दों में मानो स्वयं उपन्यासकार ही अपना यह मत प्रकट करता है, "खन्ना अभागे हैं जो हीरा पाकर काच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिये उनकी स्त्री में कितना त्याग है और उसके साथ ही पति से कितना प्रेम है।... ×× खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायें तो भी उसकी वफादारी में फर्क न आयेगा। ××× मैं ऐसी बीबी नहीं चाहता जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूँ या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूं जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्जवल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।"

नवीन विचारकों या तथाकथिक प्रगतिशील नवयुवकों को प्रेमचन्द जी का यह विश्वास रूढ़िगत या प्राचीन लग सकता है किन्तु निष्पक्ष दृष्टि से देखने पर वे

१. प्रेमनारायण टंडन : गोदान एक अध्ययन : पृ० १३१

भी इसमें असहमत नहीं हो सकते । दूसरे, प्रेमचन्द जी की नारी सम्बन्धी धारणायें अपने युग और व्यक्तिगत जीवन से प्रभावित थीं। डॉ० दीक्षित के शब्दों में, "प्रेमचन्द का जीवन स्वतः इस रहस्य या पहेली का उत्तर था। नारी की ओर से उन्हें जीवन में सुखद और कटु दोनों प्रकार के अनुभव हुये थे।"[2] फिर भी, वे अपने युग मे पीछे नहीं कहे जा सकते। 'गोदान' में भी उनकी नारी की अर्धांगिनी है। समाज और परिवार दोनों क्षेत्रों में वह कन्धे से कन्धा मिलाकर जीवन-संग्राम में जूझती है। व्यष्टि रूप में वह माता, पत्नी आदि उच्च पद की अधिकारी है। 'गोदान' में भी उपन्यासकार ने स्त्री-स्वातन्त्र्य, शिक्षा, समानाधिकार तथा वेश्या-वृति आदि नारी सम्बन्धी समस्याओं को ग्रहण किया है। उसका मातृत्व गुण उसकी सबसे बड़ी विभूति है। पाश्चात्य सांचे में ढली, आधुनिका का निर्वाण भी यहाँ भारतीय नारीत्व में दिखाना मानो भारतीय नारी की सबसे बड़ी विजय है। डॉ० दीक्षित के शब्दों में कह सकते हैं, 'प्रेमचन्द ने भारतीय नारी का बड़ा कल्याणकारी रूप अपने उपन्यासों में (गोदान में सर्वाधिक) व्यक्त किया है। भारतीय नारी में मानव सुलभ सभी गुण हैं। ××× ये नारी पात्र मानवीय शाश्वत प्रवृतियों से युक्त हैं।"[1] वास्तव में, गोदान की नारी न देवी है, न दानवी वरन् सीदे-साधे रूप से मानवी है और वह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, सबसे बड़ा गुण, सबसे बड़ी आवश्यकता है।

जहां तक प्रश्न है, नारी विषयक सामान्य-शाश्वत धारणाओं का, निःसन्देह लेखक ने उनको अपने मुख-पात्र या विचार-वाहक-पात्र प्रो० मेहता के मुख से डट कर प्रस्तुत कराया है। निम्नलिखित कुछ उदाहरण हमारे इसी मत के साक्षी हैं—

(i) "मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है।"

(ii) "स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।"

(iii) "संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।"

(iv) "मैं ऐसी औरत चाहता हूँ जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्जवल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।"

(v) "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ।"

---

१. देखिये : प्रेमचन्द : चिंतन और कला पृष्ठ २३०

२. देखिये : प्रेमचन्द : चिंतन और कला : पृ० २१७

(vi) "पश्चिम की स्त्री आज गृहस्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है।"

(vii) "नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा-जीवन का व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।"

(viii) "यह नारी है या मंगल की, पवि ता की और त्याग की प्रतिमा।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से यह बात एकदम उद्घाटित हो जाती है कि 'गोदान' में प्रेमचन्द ने भारतीय नारी के विभिन्न रूपों-वर्गों का, उनके गुण-अवगुण के साथ-साथ, बड़ा स्वाभाविक चित्रण तो किया ही है, स्वयं की भावनाओं, विचारों को अभिव्यक्ति देते हुए, यह भी सिद्ध कर दिया है कि 'नारी के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त कोमल भावना है जिससे उनके प्रायः सभी नारी पात्र आदर्श से ओत-प्रोत हैं।" निःसन्देह नारी के इस आदृत आदर्शमय रूप ने उसे "नारी विषयक भारतीय आदर्शों का प्रतिनिधि" बना दिया है। यहाँ तक कि "उनकी ये नारियाँ एक मूर्तिमान भाव (Idea) मात्र बन गयी हैं, विशेष नारी आदर्शों की काल्पनिक प्रतीक।" निष्कर्ष स्वरूप कह सकते हैं, "···प्रेमचन्द ने नारी का सफल चित्रण किया है। ···उनकी नारी का आदर्श सीता और सावित्री है। वे उसमें सेवा, त्याग, बलिदान, कर्मठता, प्रगतिशीलता, कर्त्तव्य-ज्ञान और पवित्रता आदि उदार भावों को देखना चाहते हैं। ···वस्तुतः अपने द्वारा व्यक्त नारी-भावना में उन्होंने इसी प्रकार के विचार व्यक्त (भी) किये हैं।"[1] 'गोदान' और उसका नारी-चित्रण इसी सत्य का जीता-जागता प्रमाण है।

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द के नारी सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालिये।

२. "प्रेमचन्द की नारियाँ एक मूर्तिमान भाव मात्र हैं जो विशेष आदर्शों के काल्पनिक प्रतीक हैं।" गोदान के आधार पर (श्री इलाचन्द जोशी के) इस कथन की समीक्षा कीजिये।

३. "नारी के प्रति प्रेमचन्द जी के हृदय में अत्यन्त कोमल भावना है जिससे उनके प्रायः सभी नारी-पात्र आदर्श से ओत-प्रोत हैं।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द जी की नारी विषयक धारणाओं (मान्यताओं) को सप्रमाण स्पष्ट कीजिये।

"गोदान उपन्यास में नारी को भारतीय आदर्शों का प्रतिनिधि बना दिया गया है।" उपयुक्त प्रमाण देते हुये सिद्ध कीजिये।

---

१. डॉ० भरतसिंह : प्रेमचन्द के नारी-पात्र : पृ० १४४

५. 'गोदान' के आधार पर लेखक की नारी विषयक विचारधारा का सप्रमाण परिचय दीजिये।

६. उपन्यास-रचना के नारी का क्या स्थान है तथा 'गोदान' इस दृष्टि से कैसा बन पड़ा है ? तर्कसम्मत और प्रमाणपुष्ट उत्तर दीजिये।

७. 'गोदान में नारी-चित्रण' विषय पर एक सारगर्भित-सप्राण लेख लिखिये।

८. "गोदान में प्रेमचन्द ने भारतीय नारी का बड़ा कल्याणकारी रूप प्रस्तुत किया है" सिद्ध कीजिये।

९. "गोदान की नारी न देवी है, न दानवी वरन् मानवी है।" उपयुक्त साक्ष्य देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिये।

१०. 'गोदान' के नारी-चित्रण का परिचय देते हुये बताइये कि वह लेखक की नारी-विषयक विचारधारा का कहाँ तक प्रतिनिधित्व करता है और किस प्रकार ?

२०   गोदान : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

भूमिका—समस्त साहित्य का मूल 'भाव' है। भाव हमारे मन में वस्तुओं के साक्षात्कार से उत्पन्न होते हैं किन्तु हमारा मन उन्हीं प्रभावों के साक्षात्कार को ग्रहण करता है जो हमें प्रिय होते हैं। अप्रिय भाव-यथार्थ को तो मनोनुकूल बनाने के लिये हम एक 'आदर्श' की कल्पना करके 'मानस सत्य' के रूप में ही ग्रहण करते हैं। इस प्रकार, साहित्य में 'सत्य' और 'मानस सत्य' दोनों ग्राह्य होते हैं। 'सत्य' के इसी रूप को साहित्य में वर्णित करने के संदर्भ में यथार्थ और आदर्श का प्रश्न उपस्थित होता है। उपन्यास भी, साहित्य का एक महत् अंग होने के कारण, इसका अपवाद नहीं हो सकता। अरस्तू के मतानुसार, साहित्यकार (उपन्यासकार) वस्तुओं को अर्थात् अपनी बात को तीन रूपों में प्रकट कर सकता है—जैसी वे हैं, जैसा उन्हें लोग समझते हैं अथवा जैसी वे होनी चाहियें। यहाँ 'हैं' और 'समझते हैं' ही यथार्थ और 'चाहिये' आदर्श है। इस प्रकार आदर्श और यथार्थ का प्रश्न साहित्य के जन्म से ही उससे सम्बन्धित हो जाता है।

आदर्श और यथार्थ : एक परिचय—'आदर्श' अंग्रेजी के 'आइडियल' (IDEAL) शब्द का पर्याय है जिसका दार्शनिक अर्थ है—"वह अनन्त पूर्णता जिससे किसी जाति की व्यक्तियाँ अपूर्ण प्रतिरूप हैं (Eternally existing pattern, of which individual things in any class are unperfect copies)"[1] साहित्य क्षेत्र में, आदर्श से तात्पर्य है—लेखक के उस 'मानस सत्य' से जिसकी स्थापना वह उपस्थित सत्य (यथार्थ) के स्थान हर करना चाहता है। दूसरी ओर, यथार्थ वह 'उपस्थित सत्य' है जो सृष्टि में वर्तमान है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि साहित्यकार द्वारा विश्व का सूक्ष्म निरीक्षण किये जाने पर उसके हृदय-पटल पर कुछ प्रभाव अंकित होते हैं जिन्हें वह कल्पना का रंग देकर अपने विचारानुसार नवीन रूप में प्रकट करता है। निःसन्देह, साहित्यकार के जीवन के प्रत्यक्ष रूप के निरीक्षण तथा उसकी कल्पना के संयोग से ही किसी साहित्यिक कृति का जन्म होता है। दूसरे शब्दों में, यथार्थ और आदर्श प्रत्येक-रचना में उसके बीज रूप में ही वर्तमान रहते हैं।

प्रेमचन्द ने कहा है, मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[2] कहना न होगा कि मानव जीवन में अच्छे और बुरे दोनों किन्तु

१. आक्सफोर्ड कनसाइज डिक्शनरी

२. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ० ४७

परस्पर विरोधी पक्ष होते हैं। उनको समुचित रूप में प्रकट करना ही उपन्यासकार का एकमात्र कर्त्तव्य है जिसकी पूर्ति वह 'उपस्थित सत्य' और 'मानस सत्य' अर्थात् यथार्थ और आदर्श के संयोग से ही कर सकता है। इसी को प्रेमचन्द ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की संज्ञा प्रदान की है। उनमें मत में "कोश आदर्श नीरस उपदेश और कोश यथार्थ नग्नता है", "यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। ××× आदर्शवाद में...इस बात की शंका भी है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्तिमात्र हों—जिनमें जीवन न हो।"[1] इसीलिये, "वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं यहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उये आप आदर्शोन्मुख यथार्थ-वाद कह सकते हैं।"[2] इसी सम्बन्ध में महादेवी बर्मा का मत है, "जीवन में वह यथार्थ जिसके पास आदर्श का स्पन्दन नहीं, केवन शव है और वह आदर्श जिसके पास यथार्थ का शरीर नहीं प्रेतमात्र ह।"[3] जैनेन्द्र के शब्दों में, "यथार्थ अपने में निश्चित है, स्थान और कालबद्ध है। उसमें गति नहीं है इससे दिशा भी नहीं है। वह निष्क्रिय पदार्थ है। उसे गति और दिशा उनसे प्राप्त होती है जो उसके नहीं बल्कि स्वप्न के (कल्पना यानी आदर्श के) होते हैं। ××× इसी तरह आदर्श को भी उससे अलग मैं लेना या जानना नहीं चाहता।"[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास के क्षेत्र में आदर्श और यथार्थ का स्वाभाविक स्थान है। यदि आदर्श उसकी आत्मा है तो देह है—यथार्थ। दोनों ही एक-दूसरे के परिपूरक हैं। इसी से सुप्रसिद्ध विचारक जैनेन्द्र जी ने कहा है, "उपन्यास वास्तव में उस आदर्श की ओर उठने के प्रयास में ही बनना चाहिये। यथार्थ से उठना और यथार्थ को उठाना नहीं है तो उपन्यास का प्रयोजन ही क्या ?"[5]

'गोदान' में आदर्शोन्मुख यथार्थ—प्रेमचन्द ने मानव जीवन के विभिन्न चित्रों को अपने उपन्यासों में उतारा है। उन पर उनके युग का—आदर्शवादी और सुधार-प्रधान युग का—पूर्ण प्रभाव था। दूसरे, उन पर आर्य समाज के सुधारों का भी प्रभाव था। यही कारण है कि प्रेमचन्द जी अपने उपन्यासों में आदर्श प्रेमी रहे हैं। उनके प्रारम्भिक उपन्यास इसके सशक्त उदाहरण हैं। सामाजिक-दुरावस्था को सुधारने के लिये कभी 'सेवासदन' कभी 'कायाकल्प' और कभी रामराज्य के लिये 'प्रेमाश्रम' का सुझाव भी वे देते हैं। 'गोदान' में भी मालती का भारतीयकरण, मेहता के तर्क और विचारधारा, गोबर का नगरागमन आदि में आदर्श भाव माना जा सकता है। होरी जैसे आदर्श प्रेमी नायक भी वस्तुतः लेखक के ही आदर्श-प्रेम को

१. वही : पृ० ५१
२. वही : पृ० ५१
३. महादेवी : यथार्थ और आदर्श : निबन्ध : महादेवी का विवेचनात्मक गद्य
४. जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० १६८
५. जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृष्ठ १६८

प्रकट करते हैं। इसी प्रकार धनिया और झुनिया का आदर्श पत्नीत्व, सिलिया का दृढ़ प्रेम, मातादीन का चारित्रिक रूप से यथार्थ से आदर्श की ओर पलायन आदि भी 'गोदानकार' की आदर्शप्रियता के ही द्योतक हैं।

दूसरी ओर, अपनी रचनाओं में प्रेमचन्द "जितना ही आदर्श की ओर बढ़ते गये, आदर्श उनसे उतना ही दूर होता गया और कम से कम उनके जीवन-काल में तो उनके स्वप्न-स्वप्न ही रह गये।" फलस्वरूप 'गोदान' में न तो रंगभूमि की भाँति जीवन का कोई निर्दिष्ट आशावादी दार्शनिक सदेश है, न 'प्रेमाश्रम' की भाँति किसी रामराज्य का आदर्श स्वप्न और न 'सेवासदन' की भाँति समाज सेवा का स्पष्ट कार्यक्रम। इसमे तो केवल जीवन के जीते-जागते चित्र हैं और उसकी अनेक समस्यायें।"[1] इनना ही नहा वरन् इसम तो, "साहित्य क सामन्ती संस्कारों, रीति-रूढ़ियों, संस्कृतनिष्ठ, क्लिष्ट भाषा की कृत्रिमताओं के प्रति साहित्यिक विद्रोह का प्रतीक है, इसमे सवप्रथम भारतीय जनजीवन का यथार्थ झाँकी—विविध रूपों में चित्रित हुई है जिसकी मिसाल 'गोदान' के पूववर्ती कथा-साहित्य में तो मिलती ही नहीं, परवर्ती कथा-साहित्य में भी इस यथार्थवाद परम्परा को और अधिक विकसित करने वाली प्रतिमा की खाज करना कठिन है।"[2] वास्तव में, जीवन की असफलताओं ने अन्तिम चरण में प्रेमचन्द को ठेठ यथार्थवादी बना दिया था और 'गोदान' इसी यथार्थवाद का जीता-जागता अलबम ह।

प्रेमचन्द जी ने एक स्थान पर कहा है कि "आदर्शवाद का प्रयोग यथार्थ को पुष्ट करने क लिये हाना चाहिय।" उपन्यास की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में भी उनका मत द्रष्टव्य ह कि "उपन्यासकार को अपनी सामग्री आल पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिये जो उसे चारों तरफ मिलते रहते हैं।...पुस्तकों में नये चरित्र न मिले, पर जीवन में नवीनता का अभाव कभी नहीं रहा।"[3] कहना न हागा कि गोदान की कथा भी पुस्तकों स नहीं वरन् वास्तविक जीवन से ली गई है। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में, 'मरे अधिकाश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गये हैं। जब किसी पात्र का यथाथ मे अस्तित्व नही होता, तब वह छायामात्र, अनिश्चित और अविश्वसनीय हो उठता है।"[4] यथार्थवाद क अनुसार समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि, प्रत्यक्ष वस्तु जगत का चित्रण, सत् के साथ-साथ रज और तम का भी चित्रण, विभिन्न समुदाय, मूल प्रवृत्तियों तथा मानवीय जीवन का संतुलित चित्रण, समसामयिक परिस्थितियों की प्रधानता, वेदनाभूति, लघुता से सहानुभूति, सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं और वर्तमान व्यवस्था के प्रति क्षोभ-भाव आदि यथार्थ-प्रधान चित्रण की प्रमुख शास्त्रीय-वैचारिक मान्यतायें हैं। कहना न होगा कि

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास : पृष्ठ १२२
२. प्रेमचन्द-चिंतन और कल : (स० डा० इन्द्रनाथ मदान) पृष्ठ ८०
३. प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृष्ठ ५८-५६
४. देखिये : प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व : हंसराज रहबर : पृ० २६६

गोदान में उपर्युक्त सभी की प्रमुखता है। इसी से श्री बी० के० शास्त्री ने कहा है, "प्रेमचन्द में यथार्थवाद के प्रायः से सब गुण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। उनमें सामयिकता है, वेदनानुभूति है, मानवता पर विश्वास है, लघुता के प्रति सहानुभूति है, चारित्रिक दुर्बलताओं को वे जीवन के सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं। वे पतन के लिये मानसिक अवस्थाओं, सामाजिक रूढ़ियों को दोषी ठहराते हैं। सामाजिक कुरीतियों, अव्यवस्थाओं, के प्रति उनके हृदय में विद्रोह की भावना है। वे सत और असत के संघर्ष में असत की विजय भी स्वीकार करते हैं। वे अपने नये आदर्शों, मान्यताओं की स्थापना के लिये समाज के आलोचक भी बने हैं। अतः ये कहा जा सकता है कि वे यथार्थवादी हैं और उनका गोदान इसका अपवाद नहीं का जा सकता है कि वे यथार्थवादी हैं और उनका गोदान इसका अपवाद नहीं हो सकता।"[1] प्रमाण ? गोदान की कथावस्तु की मूलपीठिका यथार्थ ग्रामीण चित्रण और आदर्शवादी "होरी की पराजय की करुण कहानी" है जिसमें फलक रूप में सामयिक नागरिक जीवन की यथार्थता भी चित्रित की गई है। होरी, जो कि स्वयं प्रेमचन्द है, एक ऐसा सरल-हृदया कृषक है जिसका शोषण जमींदार, पुलिस, पंडित आदि इसीलिये करते हैं क्योंकि वह सरल हृदय है तथा 'मरजादा' पर मर-मिटने वाला है। ग्रामीण कथा के अन्य पात्र भी इसी के प्रतीक हैं। गोबर, झुनिया, धनिया, सिलिया, भोला आदि सभी पात्र वास्तविक कृषक हैं जिनमें गुण और दोष, सत और असत सभी का मिश्रण है। इसी प्रकार मालती की प्रारम्भिक स्वच्छन्दता, रायसाहब का दोहरा व्यक्तित्व और उनके आदर्शवाद की पराजय, सरोज का स्वछंद और पुरुष-विरोधी रूख, सम्पादक ओंकारनाथ, खन्ना आदि के चरित्र नगर-कथा की यथार्थता को ही प्रकट करते हैं। इस प्रकार उपन्यास की मुख्य कथावस्तु और पात्रादि एकदम यथार्थपरक हैं। होरी जैसा आदर्श पात्र भी मानवीय दुर्गुणों से ग्रस्त है। इस प्रकार उपन्यास के प्रकथन प्रकार के आधार पर गोदान पूर्णरूपेण यथार्थवादी है। परिणाम के आधार पर भी 'गोदान' में किसी आदर्श की स्थापना नहीं की गई है। आजीवन शोषित कृषक होरी अन्त में, "राम मत धनिया, अब कब तक जिलायगी ? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे" कहकर मानो पाठक को जीवन के कटु यथार्थ का ही सन्देश देता है। समाज का प्रमुख शोषक अब भी उपस्थित है और यन्त्रवत् बनी धनिया घर की कुल जमा पूँजी—'बीस आने' लाकर, 'महाराज, न घर में गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है" कहकर फिर अन्तिम बार भी शोषित तो बनती ही है, साथ ही मानो जीवन की इस अन्तिम पराजय के फलस्वरूप ही 'पछाड़ खाकर गिर पड़ती है।' यह है गोदान का कथांत। किसान मुर्दा, पत्नी, मूर्छित और सूदखोर दातादीन पुरोहित रूप में अब भी हाथ पसारे खड़े हैं। इस प्रकार 'गोदान' उपन्यास में उन्होंने (प्रेमचन्द ने) कोई कार्यक्रम नहीं दिया है और न उन्होंने कोई मार्ग-प्रदर्शन किया

[1] प्रेमचन्द और उनका गोदान : पृ० १६२

है। अब तक का समग्र जीवन—क्या गार्हस्थिक, क्या सामाजिक, क्या राजनीतिक, क्या नागरिक, क्या ग्रामीण—जैसा है उसे उन्होंने इसमें 'जस का तस' उपस्थित कर दिया है।"[1] (शान्तिप्रिय द्विवेदी)। इस प्रकार, प्रकथन और उपन्यासों की फल-प्राप्ति दोनों के ही अनुसार गोदान ठेठ यथार्थवादी रचना है।

कुछ आलोचकों के मत में 'गोदान' में क्योंकि आदर्श-तत्व भी मिलते हैं, इसीलिये इसको **शुद्ध यथार्थवादी रचना नहीं** माना जा सकता। इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत द्रष्टव्य है। उनके शब्दों में, "कथोपकथन, भाषा की सामान्यता या पात्रानुरूपता, पात्रों की विनोदात्मक बातचीत आदि शैली सम्बन्धी विशेषतायें यथार्थ को छूती हुई परिलक्षित होती हैं। पात्रों की गतिविधि भी यथार्थ का अभाव लिये रहती है परन्तु शैली की इन विशेषताओं के आधार पर उन्हें यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता है। × × × इस उपन्यास में कोई मार्ग-निर्देशन नहीं किया गया और न ही सामाजिक सुधार के लिये किसी संस्था-विशेष की स्थापना ही की है। सुधार सम्बन्धी किसी वाद की सूचना भी नहीं दी गई परन्तु चरित्र-निर्माण और कथानक के विकास-क्रम में वे भारतीय किसान के आदर्श-स्वरूप को भूले नहीं हैं।" इस सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि स्वयं आलोचकप्रवर गोदान को यथार्थ को 'छूता हुआ' उपन्यास स्वीकार करते हैं। दूसरे, इसकी कथावस्तु, पात्र, घटनायें, परिणाम आदि तथा कहीं-कहीं संवाद तक भी ठेठ यथार्थवादी हैं। तीसरे, होरी—(भारतीय किसान) का चरित्र भी एक तो अधिकांश रूपों में यथार्थपरक है, दूसरे उसका आदर्श रूप भी कम है तथा वह सदैव परास्त होता हुआ दिखाया गया है। हाँ, इतना अवश्य है कि इसमें नग्न यथार्थ के कुछ सूक्ष्म तन्तु अवश्य हैं यद्यपि उनकी प्रधानता नहीं है। अतएव यह नग्न यथार्थ-वादी रचना अवश्य नहीं है।

निष्कर्ष—आदर्श हो या यथार्थ, प्रेमचन्द जी ने कहीं भी संयम को हाथ से नहीं जाने दिया है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यही सिद्ध होता है कि गोदान में उपन्यासकार ने आदर्श को ग्रहण तो अवश्य किया है किन्तु उसका उपयोग यथार्थ को सजीव करने के ही लिये किया है। स्थूल रूप से हम आदर्श और यथार्थ के इस सयोग को ही 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं किन्तु प्रधानता की दृष्टि से इसमें यथार्थ की ही महत्ता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि गोदान प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ की एक सजीव, शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण रचना है। अपने जीवन के अन्तिम पहर में आकर उनका आदर्श-मोह लड़खड़ाने लगा था, 'गोदान' मानो उसी की अभिव्यक्ति है। इसमें सामयिक और भावी दोनों ही युग की प्रसव वेदना प्रकट हुई हैं। कहना न होगा कि सामयिक ही यथार्थ है और भावी ही आदर्श जिनका गंगा-जमुनी मिश्रण-आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के रूप में करके लेखक ने अपने

१. देखिये : प्रेमचन्द और गोर्की : स० शचीरानी गुर्टू : पृ० ३५७

आदर्श यथार्थ को समन्वित रूप में प्रकट किया है। अन्ततः, प्रेमचन्द के ही शब्दों में, पुनः कह सकते हैं कि "......वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं।" 'गोदान' इसी समावेश अर्थात् आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अभिव्यक्ति है।

विवेच्य प्रश्न

१. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आप क्या समझते हैं ? 'गोदान' में यह किस रूप-मात्रा में पाया जाता है ? उपयुक्त प्रमाण देते हुए बताइये।

२. 'गोदान' में उपलब्ध आदर्श और यथार्थ का प्रामाणिक परिचय दीजिए।

३. "गोदान का पूर्वांग यथाथवाद से प्रेरित है और उत्तरार्ध आदर्शवाद से।" इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना प्रमाण पुष्ट मत दीजिए।

४. 'गोदान में न तो शुद्ध आदर्शवाद है, न कोरा नग्न यथार्थवाद। वास्तव में तो यह एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी रचना है।" सिद्ध कीजिए।

५. "वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो।" प्रेमचन्द के इस कथन की सार्थकता 'गोदान' के आधार पर सिद्ध कीजिए।

२१ गोदान : लोकप्रियता के कारण

[तात्विक समीक्षा और विशेषतायें, प्रेमचन्द की उपन्यास-कला, गुण-दोष-विवेचन, मूल्यांकन, महत्व और उपलब्धियाँ, सफलता के कारण]

लोकप्रियता और उसकी कसौटी—प्रत्येक साहित्यिक कृति का सृजन अन्ततः पाठक (या सहृदय) के लिये होता है और जो रचना जितने अधिक पाठकों द्वारा पढ़ी या सराही जाती है, उसको उतना ही अधिक लोकप्रिय माना जाता है। प्रश्न उठता है कि रचना के इस लोकप्रिय होने के क्या क्या कारण होते हैं? यदि गहराई से सोचें तो रचना का समग्र प्रभाव ही पाठक को रचना के पक्ष या विपक्ष में करता है और यह समग्र प्रभाव निर्मित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है—रचना की विशेषताओं का जो मुख्यतः तत्वाधारित हुआ करती हैं और कभी-कभी इनसे इतर भी। निःसन्देह, इन्हीं की सहायता से रचनाकार की रचना-कला का निर्धारण हुआ करता है और इन्हीं से रचना का गुण-दोष-विवेचन या मूल्यांकन। निःसन्देह, यही रचना की सफलता का कारण बनती हैं और इन्हीं को रचना की उपलब्धियाँ मानकर उसका महत्व या देय निर्धारित किया जाता है।

'गोदान' और उसकी लोकप्रियता के कारण—कालक्रम से, प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य का सोलहवाँ, हिन्दी उपन्यास-कृतित्व का दसवाँ तथा उपन्यास के रचना-विकास की दृष्टि से प्रौढ़तम तथा लेखक का अन्तिम, पूर्ण उपन्यास है—'गोदान' जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन, सन् १९३६ में हुआ था। अद्यतन हुये उसके दर्जनों अनुवाद, अन्य देशी-विदेशी भाषाओं में हुए रूपान्तर, नाट्य रूपान्तर, फिल्मी-करण, देश-विदेश के लाखो पाठकों द्वारा प्रस्तुत की गई सराहनायें, प्रशंसायें एवं विभिन्न आलोचकों-विद्वानों द्वारा दिये गये दर्जनों विशेषण इस उपन्यास की अपूर्व, अद्भुत और सनातन लोकप्रियता के साक्षी हैं। आखिर क्या है इसमें? **डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** के शब्दों में तो "कला की दृष्टि से भी 'गोदान' कोई नया प्रयोग प्रस्तुत नहीं करता। वही दुहरा कथानक, वही चरित्र-चित्रण-पद्धति, वही आदर्शवादी दृष्टिकोण, वही वर्णनप्रियता, सभी कुछ तो पुराना है। कला की दृष्टि से उसमें क्या नाविन्य है? और यह कहना कि 'गोदान' में प्रेमचन्द का मानवतावादी दृष्टिकोण उभरा है, स्वयं प्रेमचन्द के साथ अन्याय करना है।"[1] दूसरी ओर, स्वयं इन्हीं के

१. हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ : पृ० २५

शब्दों में, "वास्तव में, 'गोदान' का महत्व उपर्युक्त कारणों से उतना नहीं जितना उसे हिन्दी की १६३६ तक (जो कि इसका प्रकाशन वर्ष है) की औपन्यासिक और ब्रिटिशकालीन भारतीय जीवन की गतिविधि के सन्दर्भ में देखने के कारण है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, अपने आविर्भाव-काल से १६३६ तक हिन्दी-उपन्यास ने जो-जो रूप धारण किये, उन सबकी चरमोपलब्धि 'गोदान' में दृष्टिगोचर होती है और इस प्रकार 'गोदान' को हिन्दी-उपन्यास साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम मील का पत्थर (Mile stone) माना जा सकता है।"[1] यदि थोड़ी उदारता और तटस्थतापरक गहरी दृष्टि से देखें तो 'गोदान' की इस महत्ता की सूचक इसकी कला-विशेषतायें भी हैं।

सबसे पहले आइये—**कथागत** विशेषताओं पर। यदि शास्त्रीय गुणों को छोड़ भी दें तब भी गोदान की कथा व्यापक और युगानुरूप समग्रता से युक्त बन पड़ी है। इसका एक छोर है—ग्राम्य-समाज और दूसरा नगरीय समाज जिसको संयुक्त किया गया है अर्धग्राम्य या अर्धनगरीय कथा से। होरी-कथा, मालती-मेहता-कथा तथा रायसाहब-कथा क्रमशः इन्हीं की साक्षी हैं। निःसन्देह, ग्राम्य-कथा को प्रधानता दी गई है जो कि ८५% ग्रामों वाले भारत देश के लिये स्वाभाविक भी थी और अनिवार्य भी। लेखक का मन भी इसी कथा मे अधिक रमा है, वह भी इस प्रकार कि उसने ग्राम्य जीवन का एक-एक कोना, एक-एक पक्ष, एक-एक स्थिति-परिस्थिति को देखा-भाला है, लगता है कि भोगा है। सच में तो, गाँव का इतना विशद, गहन और व्यापक ज्ञान स्वयं गाँव वाला भी नहीं रखता होगा, जितना कि प्रेमचन्द रखे हुए मिलते हैं। उधर शहरी कथा भी इसको प्रभाव-व्यापकता प्रदान करती मिलती है। फलस्वरूप एक ओर तो यह कथा 'ग्रामीण जीवन या कृषक-जीवन का महाकाव्य'[2] 'एपिक (epic) इतिहास'[3] या 'महाकथा (Sagav)'[4] बन गई है और दूसरी ओर 'समस्त भारतीय जीवन का दर्पण।'[5] सच तो यह है कि, "उसका कथा-क्षेत्र व्यक्ति, परिवार, समाज, ग्राम, नगर, राष्ट्र धीरे-धीरे इन सबको समेटकर महाकाय धारण करता गया है।"[6] इसका महत्व तब और भी बढ़ जाता है, जबकि हम पाते हैं कि "गोदान से पहले और उसके बाद शायद कोई दूसरा ऐसा हिन्दी उपन्यास नहीं मिलता, जिसमें परतन्त्र भारत के टिपिकल किसान (या आम आदमी) का इतना सजीव चित्रण हुआ हो।"[7]

---

१. वही : पृ० २५
२. डॉ० शीला गुप्ता : प्रेमचन्द और उनका साहित्य : पृ० ११८
३. मन्मथनाथ गुप्त : प्रेमचन्द—उनकी कृतियाँ और कला : पृ० १०४
४. डॉ० रामरतन भटनागर : गोदान—एक नव्य परिबोध : पृ० १३
५. विश्वम्भर मानव : प्रेमचन्द : पृ० १०४
६. डॉ० रामरतन भटनागर : गोदान : एक नव्य परिबोध : पृ० १३
७. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी-उपन्यास-उपलब्धियाँ : पृ० २८

लगभग यही स्थिति चरित्रगत विशेषताओं के विषय में मिलती है। भला 'गोदान' से अधिक सजीव, विभिन्न वर्गों-जातियों के असंख्य चरित्र और कहाँ मिल सकते हैं, उस पर भी प्रायः सभी अपने-२ वर्गों और समय का प्रतिनिधित्व करने वाले, एकदम सक्षम। यथार्थ की सजीव मूर्ति होरी और आदर्श का पुतला प्रो० मेहता एवं निरन्तर अग्रसरित होने वाली मालती या पातिव्रत्य की साकार प्रतिमा गोविंदी से लेकर दोहरे व्यक्तित्व वाले रायसाहब, पूँजीपति के स्वभाव-सिद्ध हथकंडों से भरे मि० चन्द्रप्रकाश खन्ना आदि ही नहीं, झुनिया, चुहिया, मातादीन, सिलिया जैसे गौण चरित्र तक यह शृंखला व्याप्त है। निःसन्देह, सभी चरित्र अपने युग को साकार कर देने वाले हैं। ऐतिहासिक-प्रामाणिक सत्य यह है कि उस समय के भारत भर में, "किसान के जीवन में न कोई आशा रह गयी थी, न उमंग। उसके जीवन का स्रोत सूख गया था, हरियाली मुरझा गयी थी। चेहरे पर खुशी नहीं, आँखों में ज्योति नहीं, भविष्य अंधकारमय भोजन केवल पेट भरने के लिये था, स्वाद के लिये नहीं। उनकी रसना जैसे मर चुकी थी। धेले-धेले के लिये बेईमानी, मुट्ठी भर अनाज के लिये रक्त-पात। शर्म और इज्जत को वह भूल बैठा था"[1], (मगर मरजाद का अंधानुकरण करते रहने को नहीं) और दूसरी ओर जमींदार या सत्ताधारी उच्चवर्ग के लोग, "उपजीवी बन गये थे। वे विलासी, दुराचारी, पराधीन और निर्लज्ज थे। उनमें अकड़ तो थी, आत्माभिमान नाम को भी नहीं रह गया था।...प्रगति की आवाज से वे कांप उठते थे।...वे बाहर से मोटे और अन्दर से दुर्बल, सत्वहीन और मुहताज थे। उनका एक पैर गाँव में और एक पैर शहर में रहता था।"[2]

इस सब वैषम्य और परस्पर विरोधी स्थितियों का मूलभूत कारण और बल-प्रदाता तत्व थे—सामंतवादी व्यवस्था और पूँजीवाद की मिलीभगत जो निःसन्देह उस देशकालीन परिस्थिति अर्थात् आंग्ल सत्ता की देन थी। निःसन्देह, "राष्ट्रीयता और सामन्तवादी पूँजीवाद का गठबन्धन गोदान की रचना के समय तक अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने लगा था। प्रेमचन्द की कलात्मक प्रतिभा का यह प्रमाण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन (और परिस्थितियों) की विस्तृत गाथा न गाकर संकेतों द्वारा उन्होंने उसकी रूपरेखा प्रस्तुत कर दी है।"[3] लगभग यही स्थिति सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक अर्थात् सम्पूर्ण देशकाल-चित्रण पर चरितार्थ हुई मिलती है। इतना ही नहीं वरन् नवयुग की नयी विचार धारा-नवोत्थान-से भी लेखक अछूता नहीं रहा वरन् नारी-स्वातन्त्र्य, हरिजनों का प्रतिक्रियात्मक जागरण (हरखू चमार द्वारा मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकड़ा डालना जो आज भी बहुत बड़ी बात है), भारतीय नारी-जीवन के विभिन्न पक्ष और तत्सम्बन्धी आदर्श रूप की महत्ता, नारी का सेवा भरा (गोविंदी) और दुश्मनी भरा (रायसाहब की पुत्री का अपने विलासी पति को हंटरों से मारना) एवं सामान्य रूप (धनिया, झुनिया), मेहता-मालती के माध्यम से विवाह, नर नारी सम्बन्ध, दाम्पत्य

१—३. वही : पृ० २७—२८ तथा ३०

जीवन एवं परम्परा-विरोध आदि से उसने नव-युग और तत्सम्बन्धी संभावनाओं को, समय से पूर्व, अंकित करके अपनी गहन पकड़ और सटीक दूरदर्शिता का परिचय दिया है। एकदम सच तो यह है कि, "साहित्य में कभी-कभी (ही) ऐसी कृतियों का सृजन हो जाता है जो साहित्य के इतिहास की धारा के प्रवाह का रुख बदल देती हैं, जो अपने युग का प्रतिनिधित्व करती हैं और साथ ही अपने प्रभाव से नये युग के द्वार भी खोलती हैं। प्रेमचन्द का 'गोदान' भी हिन्दी साहित्य में एक ऐसे ही युग-प्रवर्त्तक रचना है।"[1] निःसन्देह, "गोदान को पढ़ जाना उस सारे पिछले युग को पढ़ जाना है, साथ ही वह नवयुग का प्रथम गंभीर उद्घोष है।"[2] प्रमाण? "गोबर तो आज गाँव-गाँव में पैदा हो गए हैं"[3] और रायसाहब, खन्ना, सिलिया, सरोज, रुद्रपालसिंह और मीनाक्षी भी यत्र-तत्र-सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

अब आइये **उद्देश्यगत विशेषताओं** पर। यह नितान्त सत्य है कि "...... प्रेमचन्द ने कलाकार के रूप में 'गोदान' में अपने सम्पूर्ण युग की उस कुरूपता का अनुभव किया था, जिससे भारतीय जन-समूह पीड़ित था।...प्रेमचन्द इस निराशा को दूर करना चाहते हैं—सर्वप्रथम, नया मनुष्य गढ़ कर।...'गोदान' में प्रेमचन्द ने उस दिन की कल्पना की है जब देवत्व, पशुत्व पर विजय प्राप्त करेगा, तभी समाज देश और मानव-जाति का कल्याण होगा।"[4] इन्हीं महत् उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रेमचन्द अपने समकालीन भारतीय समाज की जद्दोजहद भरी जिन्दगी को दिखाते हैं, परम्परागत समूची जीवन-पद्धति के कलंकित तत्वों (सामंतवादी, पूँजीवादी, साम्राज्य-वादी, धर्मवादी, नौकरशाही आदि को धिक्कारते या इन पर पैने-पैने व्यंग्य वाण चलाते हैं और सब मिलाकर एकदम नये और मौलिक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' भरा सन्देश प्रदान करते हैं। प्रकारान्तर से, उन्हीं की मान्यताओं के अनुकूल, 'गोदान' में पथ-प्रदर्शन करना, मनुष्यत्व को जागृत करना, सद्भावों का संचार करना, दृष्टि को व्यापकता प्रदान करना, मानव की मौलिक प्रवृत्तियों का सच्चा उद्घाटन करना, युग-चित्रण करना तथा पाठक-मन में उत्कर्षानुभव कराना अर्थात् महत् मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं जीवन-विषयक स्थायी-सच्चे मूल्यों को मुखरित करना ही गोदान के महत् उद्देश्य हैं—महान् लेखक द्वारा महान् रचना में महान् ढंग से अभि-व्यक्त किये गये।

अन्त में आइये **शिल्पगत विशेषताओं** पर। निःसन्देह, गोदान के लेखन-काल तक प्रेमचन्द की शिल्प-कला पूर्णरूपेण जागृत और समुन्नत हो चुकी थी। यही कारण है कि उनके पूर्व उपन्यासों वाले शिल्पगत दोष 'गोदान' में न्यून हैं। यह

---

१. श्री गोपाल कृष्ण कौल : हिन्दी के गौरव ग्रन्थ : पृ० ४८

२, ३. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ : पृ० ३६ तथा ३४—३६

४. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास-उपलब्धियाँ पृ० ३६ तथा ३४–३६

बात भी उल्लेखनीय है कि गोदान में, "वे न तो किसी के अनुयायी हैं और न किसी के प्रचारक, बल्कि एक तटस्थ कलाकार हैं।"[1] फलस्वरूप, इसमें उनकी कला अपेक्षाकृत अधिक गुणमयी मंजी, साथ-सुथरी रही मिलती है। संभवतः, इसी से कहा गया है कि, "गोदान के वर्णन और चित्रण में एक अमूर्त्त आत्मीयता और तल्लीनता है जो स्वयं प्रेमचन्द के अन्य उपन्यासों में कम मिलती है।" बोलचाल की स्वाभाविक भाषा, अधिकाधिक सरल-सामान्य और लोक प्रचलित शब्दावली, आवश्यकतानुकूल स्थानीय रंग, प्रायः छोटे-सरल-सहज वाक्य आदि के साथ-साथ भाषा का विकास, विस्तार और संस्कार आदि कुछ ऐसी भाषागत विशेषताएँ 'गोदान' में मिलती हैं कि श्री जैनेन्द्रकुमार का यह कथन अक्षरशः सत्य लगने लगता है कि, "प्रेमचन्द भाषा के जादूगर हैं।[2]...उनकी चुस्त भाषा पर, उनके सुजड़ित वाक्यों पर मैं किसी से कम मुग्ध नहीं हूँ।...बात को ऐसा सुलझा कर कहने की आदत, मैं नहीं जानता मैंने और कहीं देखी है।"[3] इस भाषा का महत्व तब और भी बड़ा लगता है जबकि हम यह देखते हैं कि प्रेमचन्द युग तक के हिन्दी, "कथा-साहित्य के निर्माताओं में ...भाषाविषयक जो उपेक्षा का भाव आ गया था, प्रेमचन्द जी (गोदान में) उसका संस्कार कर सके, जनता के सामने भाषा का साहित्यिक तथा परिमार्जित रूप भी रख सके जिसको रुचि, उद्देश्यादर्श और संस्कार के कारण, थोड़ा-बहुत परिवर्तित करके उनके परवर्ती कलाकारों ने सहर्ष अपना लिया।"[4]

जहाँ तक प्रश्न है—गोदान के **शैलीगत गुणों** का, मुख्यतः संवाद और वर्णन शैली प्रेमचन्द को प्रिय ही नहीं रही इन पर प्रेमचन्द का पूर्णाधिकार भी रहा है—सभा-चतुर, वाक्पटु और किस्सागो प्रेमचन्द के लिये यह स्वाभाविक भी था। इसी से वैयक्तिकता का समावेश, इसकी सर्वोत्तम विशेषता बन पड़ी है।

इस प्रकार 'गोदान' की उपर्युक्त सभी तात्विक विशेषतायें एक ओर लेखक की उपन्यास-कला की श्रेष्ठता की द्योतक हैं तो दूसरी ओर, उसका पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व भी करती हैं। तीसरी ओर, इनके द्वारा उपन्यास में अनेकानेक गुणों का समावेश हो गया है तो चौथी ओर उसकी अपूर्व लोकप्रियता के निर्माण में भी ये पूरी-पूरी सहायक सिद्ध हुई हैं।

कुछ आरोप (दोष, कमी या असंगतियाँ) तथा समाधान—कोई भी साहित्यिक कृति निर्दोष या पूर्ण नहीं हुआ करती या कहिये नहीं रहने दी जाती है। कारण, चाहे 'मुंडे-मुंडे मतिभिन्ना' हो या फिर युग-परिवर्तन के साथ-साथ होने वाला विचार या कसौटी का परिवर्तन और नवीनीकरण। निःसन्देह, 'गोदान' भी इसका

---

१. शान्तिप्रिय द्विवेदी : गोदान-निबन्ध
२. डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग : पृ० ११६
३. प्रेमचन्द—एक कृति व्यक्तित्व : पृ० १६७
४. प्रेमनारायण टंडन : गोदान—एक अध्ययन : पृ० ११२

अपवाद नहीं है। तात्विक दृष्टि से देखें तो कथान्तर्गत घटनाओं-प्रसंगों की असम्बद्धता (यथा कई-कई परिच्छेदों में एक ही कथा-प्रसग का चलते रहना), आरोपित कथा-प्रसंग (यथा मालती-मेहता-कथा) व्यर्थ और अनावश्यक प्रसंगों का समावेश (यथा मातादीन-सिलिया-कथा, चुहिया-प्रसंग, मिर्जा-मेहता कुश्ती-प्रसंग, शिकार-पार्टी का दीर्घ वर्णन), अलौकिक तत्वों का समावेश (यथा मालती के स्पर्शमात्र से मेहता का सिर-दर्द ठीक हो जाना), अनावश्यक या अतिआदर्शपरक समावेश (यथा मेहता का वीमेन्स लीग वाला भाषण) आदि, चरित्रांकन में अतिशयता को छूते हुए आदर्शात्मक चरित्र (होरी और मेहता), अनावश्यक पात्रों का समावेश (यथा मातादीन या दातादीन में से कोई एक, रायसाहब की विस्तृत मित्र मडली, चुहिया, जोहरी आदि), संवादान्तर्गत दीर्घ, बोझिल सिद्धान्त-विवेचनपरक कई-कई पृष्ठों तक के संवाद, अश्लीलता का समावेश (यथा झुनिया-चुहिया का दूध आने विषयक संवाद), भाषान्तर्गत अशुद्ध वाक्य-संयोजन, 'और' की बहुतायत भरे लम्बे-मिश्रित वाक्य व्याकरणिक अशुद्धियाँ, यहाँ तक कि एक ही पात्र के दो भिन्न नामों का प्रयोग (यथा खन्ना की पत्नी का नाम पृ० ४८ पर कामिनी किन्तु आगे सर्वत्र गोविंदी), देशकालान्तर्गत अपने-अपने समकालीन ग्राम्य जीवन के केवल अंधकार भरे पक्ष का चित्रण ऐसे ही कुछ दोष या असंगतियों के उदाहरण हैं जिनमें से कुछ तो बेहद खटकते हैं। इसी श्रेणी में कुछ आरोप भी रखे जा सकते हैं यथा ग्राम्य-नागरिक पात्रों का घनिष्ठतः सम्मिलन हो पाना, बेलारी और सेमरी दो-दो गाँवों की कथा का एक साथ किन्तु अनावश्यक आयोजन करना, किसी भी पात्र का अपने कर्मों के आधार पर दूसरों—ग्राम्य या शहरी पात्रों को प्रभावित न कर पाना एवम् पूर्वार्ध में यथार्थ की प्रमुखता होने पर भी उपन्यास का उत्तरार्ध में अति आदर्शपरक बन जाना (यथा मेहता-मालती) तथा अन्त में भी दोनों कथाओं का अधूरा रह जाना।

इस संदर्भ में कुछ बातें अवश्य द्रष्टव्य हैं। सर्वप्रथम तो यही निवेदन है कि जिस प्रकार पाठक या आलोचक की अपनी कुछ पसन्द, कुछ विचार, कुछ आदर्श, कुछ जीवन-मूल्य और कुछ विशिष्ट जीवन-दृष्टि होती है, उसी प्रकार उपन्यासकार की भी जिसको पाठकों तक पहुँचाना (लादना नहीं) लेखक का इष्ट या कहिए रचना का मूलाद्देश्य होता है। प्रश्न यह नहीं है कि हम उससे सहमत हैं या नहीं, द्रष्टव्य यह है कि वह उद्देश्य-कथ्य कहाँ तक मानव-हितैषी है और किस प्रकार हम तक पहुँचाया गया है। दूसरे, 'गोदान' का प्रकाशन वर्ष और प्रेमचन्द का महाप्रस्थान-वर्ष एक (सन् १९३६) ही है जबकि लेखक मृत्यु शय्या पर था—भयंकर रोगों से जूझता हुआ। फलतः रचना-रूप पर उसका पूरा-पूरा ध्यान न दे पाना कुछ अजूबा नहीं। तीसरे, प्रेस के भूत (कम्पोजिटर-प्रिंटर-प्रूफरीडरादि) भी कुछ कम नहीं होते। चौथे 'गोदान' की कुछ कमियाँ, अपने दोष भरे रूप में भी, अन्यत्र गुणवान बन जाती हैं (यथा ग्राम्य-नगरीय पात्रों तथा दो-दो गाँवों की कथा, मेहता-मालती का उदात्तीकरण, मेहता का अतिशयतापरक विवेचक और आदर्शपरक रूप तथा

अंततः कथाओं का अधूरापन आदि) । सबसे अधिक तो ध्यातव्य और महत्वपूर्ण यह बात भी है कि 'गोदान' के गुणों के सामने उपर्युक्त गिने-चुने दोष या कमियाँ (अथवा असंगतियाँ) एकदम नगण्य हैं।

गोदान : उपलब्धि और महत्व—वस्तुतः 'गोदान' की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ उसकी महत् उपलब्धियाँ हैं। इतना ही नहीं वरन् विभिन्न दृष्टियों और पक्षों से, विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये 'गोदान' के मूल्यांकन और तदाधारित निश्चित किये गये निष्कर्षों-धारणाओं से भी इसकी महत् उपलब्धियों का भान हो जाता है। निःसन्देह, गोदान को अधिकाधिक विशेषताओं से सम्मानित किया जा चुका है यथा क्रांतिकारी नया कदम, अपने युग का अग्रदूत और नये युग का सूत्रधार, युग-संधि स्थापित करने वाली महान् कला सृष्टि, भावी युग की भूमिका, साहित्यिक विद्रोह का प्रतीक, भारतीय जन-जीवन की यथार्थ झाँकी, भारतीय ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र, भारतीय जीवन का दर्पण, भारतीय कृषक जीवन का प्रतीक, दर्पण या इतिहास, भारतीय ग्राम-देवता की करुण आत्म पुकार, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के हिन्दी साहित्य के विकास का अग्रदूत, मील का पत्थर, कला-साधना का ऐतिहासिक प्रतीक, महाजनी सभ्यता का इतिहास, वर्ग जीवन की पूर्णता, उपन्यास शैली में भारतीय जीवन का महाकाव्य, भारतीय सभ्यता का युगीन दस्तावेज, युग-प्रवर्तक कृति, ग्राम्य जीवन की अलोमहर्षक ट्रैजेडी, राष्ट्रीय उपन्यास, युगपरक औपन्यासिक महाकाव्य, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना और न जाने क्या-क्या, यहाँ तक कि इसको "विश्व के छह सर्वोत्तम उपन्यासों में से एक" भी माना गया है।

परम्परा में स्थान—वस्तुतः, 'गोदान' अपनी गुणवत्ता और अद्भुत-अपार लोकप्रियता के फलस्वरूप मात्र अपने युग की ही नहीं वरन् युग-युग की रचनाओं वाले वर्ग में आ जाने वाली महत् कृति है। इसने एक ओर यदि पूर्ववर्ती उपन्यास-परम्परा को एकदम नये रूप-रंग में परिवर्तित करके, अपने युग को समग्रतः ग्रहण करके, एक अपेक्षाकृत अधिक सुष्ठु रूप में बदल डाला तो दूसरी ओर भावी पीढ़ी के लिये एक सर्वथा अछूती किन्तु आवश्यक डगर या कहिए राजमार्ग का उद्घाटित किया। फलस्वरूप उपन्यास और उसके विभिन्न तत्वों-रूपों-क्षेत्रों में आमूलचूड़ परिवर्तन-परिवर्धन करते हुए प्रेमचन्द कृत 'गोदान' एक ऐसा 'दान' बन गया है जिसमें 'गो' वाली पवित्रता और सरलता है तो साथ ही साथ 'गो' के विविध अर्थों को प्रकट करते, एकदम सार्थक करते हुए, प्रकाश-किरण, पृथ्वी तुल्य व्यापकता, दिशाओं वाली प्रसार-क्षमता, जननी वाली ममत्व-वर्धकता, सूर्य वाला तेज, चन्द्र वाला सोम (अमृत), बाण वाला पैनापन, स्वर्ग वाला आदर्श, जीवन-वर्धक जल, ब्रज वाली शक्ति और शरीर के रोम-रोम वाली उत्फुल्लता भी भरी पड़ी है। सब मिलाकर यह 'अमर साहित्य' (Books for ever) की कोटि में आ गयी रचना है और निःसन्देह हिन्दी उपन्यास-परम्परा में यह 'ताज' बन गया है तो इसी के सृजन के फलस्वरूप इसका रचयिता उपन्यास-सम्राट।

विवेच्य प्रश्न

१. 'गोदान' की लोकप्रियता के कारणों का सांगोपांग परिचय देते हुये इसके महत्व का प्रतिपादन कीजिये।

२. लोकप्रियता के मूलभूत तत्वों के आधार पर 'गोदान' का परीक्षण कीजिये तथा उसके आधार पर इसकी लोकप्रियता को स्पष्ट कीजिये।

३. 'गोदान' की तात्विक समीक्षा करते हुये इसकी तत्सम्बन्धी विशेषताओं का निर्धारण कीजिये।

४. 'गोदान' के आधार पर प्रेमचन्द की उपन्यास-कला और उनकी प्रमुख विशिष्टताओं का सप्रमाण परिचय दीजिये।

५. 'गोदान' के (गुण) दोषों पर प्रकाश डालिये।

६. "हिन्दी-उपन्यास साहित्य में गोदान 'मील का पत्थर' है।" कथन की समीक्षा कीजिये।

७. गोदान का तात्विक मूल्यांकन करते हुये उसके महत्व का प्रतिपादन कीजिये।

८. गोदान की प्रमुख उपलब्धियाँ बताते हुये उसका हिन्दी-उपन्यास-परम्परा में स्थान निर्धारित कीजिये।

९. गोदान की सफलता के क्या कारण हैं और क्यों? तर्कसम्मत और प्रमाणपुष्ट उत्तर दीजिये।

१०. "गोदान : प्रेमचन्द की ख्याति का अद्भुत प्रतिमान है।" सिद्ध कीजिये।

खण्ड (ब)

मूल, शब्दार्थ तथा सप्रसंग व्याख्या

मूल उद्धरण—

छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गये थे चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गयी थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था। और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।
(परि० १ : पृ० ७)

[शब्दार्थ—गेहुआँ = गेहूँ जैसा गौर वर्ण। सूझने = दिखने। चिरस्थायी = सनातन, सदा रहने वाली। जीर्णावस्था = दुर्बलता की हालत। आत्म-सम्मान = स्वाभिमान। विद्रोह = विरोध। घुड़कियाँ = डांट-डपट। यथार्थ = वास्तविकता।]

सन्दर्भ—यह गद्यांश श्री प्रेमचन्द के 'गोदान' नामक उपन्यास से (जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९३६ में हुआ था) उद्धृत किया गया है।

प्रसंग—प्रस्तुत उपन्यास की नायिका और नायक होरी की पत्नी, धनिया की शारीरिक और मानसिक स्थिति से परिचित करा कर और इसी बहाने उसकी दुरावस्था का संकेत देते हुए उपन्यासकार ने बताया है।

व्याख्या—धनिया लगभग ३६ वर्ष की स्त्री थी किन्तु इतनी सी, मात्र युवावस्था में ही उसके सिर के बाल पक कर श्वेतवर्णीय हो चुके थे, मुख पर झुरियाँ पड़ चुकी थीं और सारा शरीर ढीला पड़ कर दुर्बल बन चुका था, यहाँ तक कि गेहूँ जैसा सुन्दर गौर वर्ण साँवला पड़ चुका था और दृष्टि दुर्बल होने से दिखायी भी कम पड़ने लगा था। कारण था—निर्धनता जिसके फलस्वरूप पेट भरने को चार रोटियाँ भी मुश्किल से जुट पाती थीं। सच तो यह है कि अब तक के जीवन में उसको सुख मिला ही नहीं था और न मिलने की कोई सम्भावना ही थी। इसी सब की एक मानसिक प्रतिक्रिया यह भी हुयी थी कि उसका स्वाभिमान समाप्त प्रायः हो चुका था और स्वभावतः वह निर्लिप्त या उदासी भरी बन चुकी थी। फलतः वह सोचा करती कि वह दिन-रात अपने उस परिवार के लिये क्यों मरे-खपे जहाँ उसको भर पेट रोटी तक भी नहीं मिल पाती है। यहाँ तक कि इसी भावनावश वह कभी-कभी परिवार के प्रति क्षोभ भरा विरोध भी प्रकट कर दिया करती थी यद्यपि पति

होरी से इसी से उसे डाँट-डपट भी खानी-सहनी पड़ती और तभी उसे अपने और अपने परिवार की सही स्थिति का मान हो जाता था।

विशेष—(१) यहाँ पर धनिया की शारीरिक-मानसिक स्थिति और उसकी पारिवारिक दुरावस्था का एकदम स्वाभाविक, यथार्थ और मनोविज्ञान सम्मत चित्रण है जो उसके चरित्र का भी परिचायक है और प्रेमचन्द की यथार्थता भरी वर्णन-क्षमता का भी साक्षी है।

(२) धनिया के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

(३) विचार करने पर ज्ञात होता है कि धनिया सम्बन्धी प्रस्तुत परिचय केवल उसी का नहीं वरन् उस जैसी अनेकों किसान-पत्नियों का है और पचास वर्ष बाद, आज भी एकदम सही है। साथ ही, यह धनिया के वर्ग-प्रतिनिधि पात्र होने का भी साक्षी है।

(४) सरल-सटीक और सार्थक शब्दावली, छोटे-छोटे वाक्य, सरल-प्रचलित मुहावरे तथा प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति-सम्पन्नता आदि प्रस्तुत अंश की प्रमुख भाषागत विशेषताएँ हैं।

(५) वर्णन शैली है।

मूल उद्धरण—

उसके इन निराशा भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंक-मय-कम्पन सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह सा निकल कर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानों झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है। (परि० १ : पृ० ८)

[**शब्दार्थ**—आतंकमय = रौब या प्रभावशाली। अभय = निडरता। कम्पन = भय की लहर। अन्तःकरण = अन्तर्मन। व्यूह = कवच। विपन्नता = निर्धनता। अथाह = अत्यन्त गहरे। सोहाग = सुहाग, पति। तृण = तिनका। असंगत = अनुचित। वेदना = व्यथा।]

प्रसंग—निर्धनता और तद्जन्य नाना आपदाओं से घिरे हुए होने पर भी होरी और धनिया में पारस्परिक दाम्पत्य-प्रेम भरपूर था। इसका एक सशक्त प्रमाण है—बातों ही बातों में, होरी द्वारा कहे गये "साठ (वर्ष की आयु) तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया" जैसे कथन को सुनकर होने वाली धनिया की प्रति-क्रिया जिसका वर्णन करते हुए लेखक ने बताया है।

व्याख्या—होरी द्वारा कहे गये (उपर्युक्त) और निराशा से परिपूर्ण शब्दों ने (निर्धनता की) चोट खाये हुए धनिया के हृदय को प्रभाव भरे भय-भाव से भर दिया। उसका हृदय नारी सुलभ आशंका मात्र की कल्पना से आन्दोलित हो उठा और वह (भविष्य की कल्पना करके) भयभीत हो गयी। उसे लगा मानो अब

तक तो अपने नारीत्व वाले सम्पूर्ण तप-व्रत की शक्ति से उसने पति होरी को निडर बना रखा था। उसके हृदय से निकलने वाली आशीर्वाद जैसी शुभ मगल-कामनायें मानो अभी तक होरी को उसी प्रकार सुरक्षित रखे हुये थी जैसे कि कोई कवच अपने धारण करने वाले वीर सैनिक को (शत्रु के प्रहारों से) सुरक्षित बनाये रखता है। धनिया के लिये तो पति होरी ही, तिनके की भाँति दुर्बल होने पर भी, एकमात्र सहारा था जिसको पकड़े हुए वह जीवन-सागर को पार करती आ रही थी परन्तु होरी द्वारा कहे गयें अशुभ किन्तु कटु सत्य से भरे शब्दों ने मानो एक ही झटके में धनिया से यह एकमात्र सम्बल भी छीन लेने का प्रयास किया। निःसन्देह, होरी की स्थिति को देखते हुए, यह कथन एकदम सत्यपरक सा था और इसी यथार्थ सत्य से युक्त होने के कारण इस कथन में अत्यधिक वेदना शक्ति समाहित हो गयी थी कि धनिया (होरी की भावी मृत्यु की कल्पना मात्र पर) काँप उठी। कारण ? काना कहने पर जितनी प्राकृतिक-स्वाभाविक वेदना काने व्यक्ति को होती है, उतनी दो आँख वाले व्यक्ति को नहीं होती। निःसन्देह, धनिया की स्थिति भी एकदम काने जैसी (अर्थात् मुक्त भोगी वाली) ही थी।

विशेष—१. भारतीय नारी-मन का बड़ा आदर्शपरक, मनोविज्ञान-सम्मत और यथार्थ भरा अंकन है जो लेखक की सूक्ष्म-गहन मनोभाव-चित्रण-क्षमता का साक्षी है।

२. धनिया के चरित्र की दृष्टि से यह अंश महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पर उसके चरित्र की अतिशय पति-प्रेम, आशंका मात्र पर भयभीत हो जाना तथा कल्पना-विशयता आदि विशेषताएँ मुखर हुई हैं।

३. यहाँ पर काव्यात्मक-वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग मिलता है।

४. उदाहरण, उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार-प्रयोग तथा सरल-सटीक शब्दावली प्रमुख भाषागत विशेषताएँ हैं।

५. अन्तिम वाक्य एक सुन्दर सूक्ति है।

मूल उद्धरण—

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान ? होरी किसान था और किसी जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

(परि० १ : पृ० ११–१२)

[शब्दार्थ—गाँठ = जेब, पास। चौकस = सावधान। चिरौरी = खुशामद। फुसलाने = बहलाने। तृप्त = सन्तुष्ट। संगति = साथ। कुत्सित = घृणित।]

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग---स्वभाव से भावुक किन्तु व्यवहार-कुशल होरी द्वारा विवाह करा देने में यथाशक्ति सहायता करने की बात ने विधुर भोला को भाव-विभोर कर दिया था। यहाँ तक कि वह (भोला) होरी की शर्तों पर ही और उसी की सुविधा के अनुसार होरी को अपनी गाय तक देने के लिये तैयार हो गया। दोनों ही किसान थे। अतएव, किसान वाले चातुर्य भरे गुण-अवगुणों से भी दोनों ही भरपूर थे। इन्हीं की चारित्रिक विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीय किसान की विशेषताओं का अकन करते हुए लेखक ने कहा है।

व्याख्या--निःसन्देह, अपने स्वभाव से (भारतीय) किसान पक्का स्वार्थी होता है। प्रायः निर्धन-विपन्न होने के कारण उसके लिये स्वार्थी होना स्वाभाविक भी है और विवशता भी अतएव वह किसी को रिश्वत बड़ी मुश्किल से देता है, सौदे का क्रय-विक्रय करते समय बड़ी सावधानी के साथ भाव-ताव करता है, लिये गये ऋण के ब्याज में छोटी से छोटी कटौती कराने के लिये (वह स्वाभिमान को त्याग) ऋणदाता महाजन की डटकर खुशामद करता है, पूर्णतया सन्तुष्ट हुए बिना वह किसी के बहकावे में भी नहीं आता (क्योंकि अति की निर्धनता उसको पैसे का महत्व समझा देती है तो जीवन का व्यवहार उसको जरूरत से ज्यादा चतुर बना देता है)। इस पर भी वह क्योंकि जीवन भर उदारता और परोपकार की भावना से भरी-पूरी प्रकृति के सान्निध्य में रहता है, अतएव स्वयं भी (मानों इसी कारणवश) स्वभाव से उदार और परोपकारी बन जाता है। जिस प्रकार वृक्षों के फल स्वयं वृक्ष नहीं खाते, अन्य जन खाते हैं, खेतों में उत्पन्न होने वाला अनाज संसार के प्राणियों का पेट भरता है, गाय के थन का दूध स्वयं गाय नहीं, दूसरे पीते हैं तथा मेघों के वर्षा-जल से स्वयं मेघ नहीं वरन् पृथ्वी सन्तुष्ट होती है, इसी भाँति, प्रकृति के इन तत्वों के सान्निध्य में रहने वाला किसान स्वयं दुःखी रहकर भी दूसरों को सुख प्रदान करता है। प्रकृति की सत्संगति में ही आजीवन रहने वाले किसान में भला घृणास्पद स्वार्थ-भावना रह भी कैसे सकती है? होरी और उसका हृदय भी इसी का साक्षी है। वह भी किसान था---पैसे की कीमत समझने वाला किन्तु साथ ही उदारमना भी। वह दूसरे के जलते हुए घर में हाथ नहीं सेक सकता था अर्थात् दूसरे को हानि पहुँचाकर स्वार्थसिद्धि नहीं कर सकता था। इसी से, भोला की बातों को सुनकर वह तुरन्त द्रवित हो उठा और बिना गाय लिये ही उसको दो-चार मन भूसा मुफ्त देने को तैयार हो गया।

विशेष---१. यहाँ पर भारतीय किसान और उसके प्रतिनिधि होरी के माध्यम से लेखक ने उसका सच्चा चित्र उपस्थित किया है। यह इस सत्य का भी साक्षी है कि लेखक की कृषक-जीवन विषयक जानकारी अत्यन्त गहन और सूक्ष्म थी।

२. सरल-सामान्य शब्दावली तथा मुहावरों का समावेश लेखक की समर्थ भाषा के उद्घोषक हैं।

३. भावसाम्य---(i) "स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः,
पिबन्ति नद्यः स्वमेव नाम्भः।
नादन्ति शस्यम् खलु वारिवाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः॥"

(ii) तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पानि।
कहि रहीम परकाज-हित, संपति संचहिं सुजानि ।। —रहीम

Imp. **मूल उद्धरण—**

तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो। हमारे नाम बड़े हैं पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या या बैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उंगली डाल कर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनन्द के लिए हैं। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गए हैं जब हमें दूसरों के रोने पर हँसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। (परि० २ : पृ० १४)

[शब्दार्थ—क्षम्य=क्षमा किये जाने योग्य। कुटिलता=दुष्टता। निःस्वार्थ=स्वार्थहीनता।]

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

प्रसंग—अवध प्रान्त का ही एक गाँव था—सेमरी। इसी में रहते थे—रायसाहब अमरपाल सिंह जो जमींदार थे और इसी नाते बेलारी ग्राम निवासी होरी के स्वामी भी थे। इन्हीं के यहाँ, जेठ के महीने में, दशहरा पर्व पर, प्रतिवर्ष 'धनुष-लीला' आयोजित की जाती थी किन्तु इसका व्यय उठाना पड़ता था—भूखे मरने किसानों को, जमींदार की प्रजा को। इस बार भी जमींदार रायसाहब ने घर आये होरी को चेताया और शकुन एकत्र करने-कराने का मीठा उपदेशामृत दिया। कारण? किसान-किसान की सलाह मानता है, गुमाश्तों का कहना नहीं। अपने इसी मीठे उपदेशामृत के अन्तर्गत और होरी द्वारा गरीबों का सन्दर्भ दिये जाने पर, अपनी वास्तविकता भरी स्थितियों को प्रकट करते हुए रायसाहब ने होरी से कहा।

व्याख्या—(आश्चर्य है कि) तुम हमें बड़ा व्यक्ति समझते हो क्योंकि वस्तुतः तो हम, जमींदार (जैसे धनी वर्ग के) लोग एकदम 'ऊँची दुकान फीका पकवान' वाली कहावत को ही सत्य चरितार्थ करने वाले हैं। कारण? हम लोगों में अनेकानेक अवगुण हैं। यूँ, अवगुण (किसान जैसे) दरिद्र लोगों में भी होते हैं किन्तु दोनों वर्गों के लोगों के अवगुणों के मूल कारणों में पर्याप्त अन्तर होता है। प्रमाणस्वरूप ईर्ष्या या शत्रुता जैसे अवगुणों को ही लो। दरिद्र लोग दूसरों से द्वेष या शत्रुता करते हैं अपनी स्वार्थ-पूर्ति या मुख्यतः रोटी की जुगाड़ करने के लिए जबकि हमने तो अपना धर्म ही यह बना रखा है कि दूसरे के हाथ की रोटी छीनो—येन-केन-प्रकारेण यानि हर सम्भव उपाय से। निश्चयतः, मैं समझता हूँ कि निर्धनों की विवशताजन्य ईर्ष्या या शत्रुता क्षमा कर दिये जाने योग्य होती है (क्योंकि वह विवशता वश होती है या फिर पापी पेट भरने के लिए)। दूसरी ओर, हम धनी लोग समस्त सुख-सुविधा सम्पन्न होने पर भी, केवल इस आशंका मात्र पर उतारू हो जाते हैं और अगर कभी नहीं होते तो दूसरे लोग हमको देवता समान मानने-बताने लगते हैं। सच तो यह है कि ईर्ष्या या शत्रुता जैसे अवगुण रख कर और इनको भी व्यवहार में प्रयुक्त करके ही हमको मजा आता है, पर-पीड़ा से ही मानो हमारा मनोरंजन होता है। इतना ही नहीं वरन् एक से बढ़ कर एक नीच और कुटिलता भरे काम करके ही

हम आनन्दित होते हैं और इसी को 'परोपकार' करना समझते हैं। हम इतने महान् (वास्तव में तुच्छ) बन चुके हैं कि दूसरे को अधिकाधिक कष्ट देकर, उसको पीड़ा-वश रोते-बिलबिलाते देखकर भी हम प्रसन्न होते हैं, हँसते हैं। यही हमारा देवत्व (वस्तुतः दानवत्व) है, यही हमारी महानता (तुच्छता) है। निश्चय ही, मानवता को एकदम त्याग कर, इतना अधः पतित बन जाना भी एक साधना है, वह भी छोटी-सामान्य नहीं (क्योंकि अपना इस प्रकार पतन कर लेना हर मानव के लिये सम्भव नहीं है)।

विशेष—(१) रायसाहब के दोगले और कुटिलता भरे व्यक्तित्व का सूचक प्रस्तुत कथन उनके चरित्रांकन की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(२) यहाँ पर, रायसाहब के माध्यम से, लेखक ने अपने समकालीन जमींदार वर्ग का एकदम सच्चा और प्रभावोत्पादक चित्रण किया है।

(३) देश-काल तत्व की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

(४) यहाँ पर उच्च वर्ग, मुख्यतः जमींदारों पर करारा व्यंग्य है।

(५) भाषा सरल, मुहावरों से भरपूर, सूक्तिपरक और छोटे-छोटे वाक्यों से युक्त है—लेखकीय भाषा की साक्षी।

(६) वस्तुतः, रायसाहब के माध्यम से, यहाँ पर लेखक ने अपनी ही विचाराभिव्यक्ति की है।

V. Imp. मूल उद्धरण—

वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय सन्ध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से, मानों हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुँचता। (परि० ४ : पृ० २९)

[**शब्दार्थ**—लालसा = इच्छा। मादकता = मस्ती। उदय = प्रकट। माधुर्य = मधुरता। रंजित = रंग देना। मध्यान्ह = दोपहर। प्रखर ताप = तेज धूप। बगूले = वायु के बवंडर। आवरण = परदा। नग्न = नंगे, सच्चे। मय = भरी। वृत्तान्त = कथा। तटस्थ = निर्लिप्त। शिखर = चोटी। जन-रव = व्यक्तियों का शोरगुल।]

प्रसंग बिके हुए बाँसों के चोरी-छिपे कमीशन को प्राप्त करने-कराने के प्रश्न पर खरीदार चौधरी और होरी की भ्रातृ-वधू पुनिया में वाक्-संघर्ष हो गया जिसने बढ़ते-बढ़ते मारपीट का रूप धारण कर लिया था। शोर सुनकर उधर पुनिया के पति हीरा ने आकर पुनिया को पीट दिया तो इधर होरी और धनिया भी घटना-स्थल पर आ उपस्थित हुए। बातों ने, शीघ्र ही, व्यक्तिगत रूप धारण कर लिया। परिणाम ? बात पति-पत्नी से होते-होते होरी-धनिया पर आ गयी और दोनों ही अतीत के अपने वैवाहिक जीवन की बातों में उलझ गये। पति-पत्नी (और संकेत रूप में होरी-धनिया) की इसी वैवाहिक जीवन-यात्रा का काव्यात्मक वर्णन करते हुए लेखक ने अपनी टिप्पणी दी है और कहा है—

व्याख्या—वैवाहिक जीवन की यात्रा दिन भर की सूर्य-यात्रा के समान होती है। जिस प्रकार प्रातःकाल में सूर्य की गुलाबी किरणें, सूर्योदय के साथ-साथ, सारे आकाश को भी गुलाबी रंग से रंग देती हैं, उसी प्रकार विवाह-काल के प्रारंभिक वर्षों में पति-पत्नी के मन में (सुखद वैवाहिक जीवन को लेकर) अनेक सुखद और मस्त कर देने वाली इच्छायें उत्पन्न होती हैं जो अपनी सुखप्रद कल्पनाओं के रंग से उन (दोनों) के मन को सुखप्रद रंगों (कल्पनाओं) से भर देती हैं। दोपहर होने पर जिस प्रकार धूप तेज या जलाने वाली बन जाती है, पल-पल में लूओं के झोंके या बवण्डर उठने लगते हैं, जिनसे सारी पृथ्वी भयभीत होकर काँपने लगती है, उसी प्रकार विवाहोपरान्त के प्रारम्भिक काल (प्रातः) के व्यतीत हो जाने पर (तथा अधेड़ावस्था की दोपहर आने पर पति-पत्नी के मन से सुखद कामनाओं का सुनहरा परदा (अर्थात् सुन्दर-सुन्दर कल्पनाओं का जाल) हट जाता है। सामने आते हैं—तेज धूप और बवण्डर की भाँति जलाने-सताने वाले जीवन के कड़वे-नंगे यथार्थ दृश्य। तत्पश्चात्, विश्राम-प्रदायक संध्या की भाँति वृद्धावस्था आती है—एकदम तपन का शमन करने वाली, मन को शान्ति प्रदान करने वाली। इसी समयावस्था में हम (अर्थात् पति-पत्नी) थके हुए यात्रियों के समान दिन भर (अर्थात् वैवाहिक काल) की यात्रा का वर्णन करते, कहते-सुनते हैं मगर एकदम निष्पक्ष-निर्लिप्त भाव से। इस अवस्था में तो मानो हम (सूर्य के समान) किसी पर्वत-शिखर पर जा चढ़ते हैं जहाँ नीचे (अर्थात् बीते हुए काल-घटनाओं) का शोरगुल हम तक नहीं पहुँच पाता। संकेत यही है कि इस समय तक तो हम एकदम निर्लिप्त और तटस्थ बन चुके होते हैं। (वृद्धावस्था को छूने वाले होरी और धनिया की भी इस समय यही स्थिति थी)।

विशेष—१. विवाहोपरान्त के दाम्पत्य जीवन का, विशेषतः भारतीय परिवेश में, अत्यन्त समर्थ, चिन्तापरक, यथार्थमय और मनोविज्ञान सम्मत अंकन है।

२. यहाँ पर होरी-धनिया के साथ-साथ आम भारतीय और स्वयं लेखक के वैवाहिक जीवन का भी सांकेतिक चित्रण है।

३. काव्यात्मक और प्रतीकात्मक शैली का सुन्दर प्रयोग है।

४. सांगरूपक अलंकार है। साथ ही, मानवीकरण, पुनरुक्ति, उपमा तथा उपेक्षा अलंकारों का भी प्रयोग है।

५. कोमलकान्त, आलंकारिक किन्तु सरल शब्दावली है।

मूल उद्धरण—

उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। पूँजी और शिक्षा, जिसमें पूँजी ही का एक रूप समझता हूँ, इनका किला जितनी जल्द टूट जाय, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस-दस, पाँच-पाँच हजार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस व्यवस्था ने हम जमींदारों में कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता भर दी है, यह मैं खूब जानता हूँ, लेकिन मैं इन कारणों से इस व्यवस्था का विरोध

नहीं करता। मेरा तो यह कहना है कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से इसका भी अनुमोदन नहीं किया जा सकता। इस शान को निभाने के लिए हमें अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पड़ती है कि हममें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा। हम अपने असामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफसरों को कीमती-कीमती डालियाँ न दें तो बागी समझे जाएँ; शान से न रहें तो कंजूस कहलाएँ। प्रगति की जरा-सी आहट पाते ही हम काँप उठते हैं और अफसरों के पास फरियाद लेकर दौड़ते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए। हमें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा, न पुरुषार्थ ही रह गया। बस, हमारी दशा उन बच्चों की सी है जिन्हें चम्मच से दूध पिला कर पाला जाता है, बाहर से मोटे, अन्दर से दुर्बल, सत्वहीन और मोहताज। (परि० ६ : पृ० ४७)

[शब्दार्थ—उपजीवी=दूसरों की कमाई पर स्वयं का पेट भरने वाला, परनिर्भर। मयस्सर=प्राप्त नियोजक सयोजक। फटकारें=प्राप्त करें। हास्यास्पद=हँसी उड़ाने के योग्य। दुराचार=बुरा आचरण। अनुमोदन स्वीकार। आत्माभिमान=स्वाभिमान। असामियों=किसानों। डालियाँ=भेंट, रिश्वत। बागी=विद्रोही। पुरुषार्थ=पौरुष। सत्वहीन=खोखले।]

प्रसंग धनुष-लीला के अवसर पर, रायसाहब अमरपालसिंह के यहाँ उनके शहरी-बौद्धिक मित्रगण भी निमन्त्रित थे। जेठ मास की उस सन्ध्या-समय में इन सबमें 'किसान-जमींदार-सम्बन्ध' को लेकर तर्क-वितर्क होने लगे। समाजवादी विचारधारा के अनुयायी प्रो० बी० मेहता ने बातों ही बातों में सीधे-सीधे जमींदारों पर व्यंग्य किये तो रायसाहब, जो जमींदार-वर्ग के प्रतिनिधि थे, उनको सहन नहीं कर पाये। उनको मेहता के व्यंग्य एकांगी लगे। फलतः, अपने वर्ग की वास्तविक स्थिति को प्रकट करते हुए तथा प्रो० मेहता को जमींदारों की वास्तविकता से परिचित कराते हुए रायसाहब ने प्रो० मेहता से, प्रत्युत्तर स्वरूप कहा—

व्याख्या—दूसरों (अर्थात् सामान्य किसानों, असामियों या श्रमिकों) के श्रम पर निर्भर बनकर स्वयं का पेट भरने वाला (जमींदार बन जाना व्यक्ति के लिये अत्यन्त लज्जास्पद है। कारण ? स्वयं कर्म करके पेट भरना ही प्राणिमात्र का पुनीत कर्त्तव्य है (जिसका पालन निःसन्देह जमींदार नहीं करता)। इसी से, समाज-प्रचलित ऐसी (सामन्तवादी) व्यवस्था सबके लिये कदापि सुखकर नहीं हो सकती जिसके अन्तर्गत अधिकतर (सामान्य वर्ग के) व्यक्ति तो कमा-कमाकर पिसते-मरते रहें और गिने-चुने (जमींदारादि) लोग उनकी कमाई पर अधिकार करके मौज-मजे उड़ाते रहें। सच तो यह है कि आज की पूँजीवादी व्यवस्था (जिसमें शिक्षा भी पूँजी का ही एक रूप बन चुकी है) एकदम किले की भाँति (सुदृढ़ और भुलभुलैया जैसी) है और शीघ्रातिशीघ्र नष्ट हो जानी चाहिये। कारण ? इसी व्यवस्था का परिणाम यह भी है कि (जमींदारादि) भूखों मरने वाले निम्नवर्गीय लोगों (किसान-मजदूरों) के स्वामी और सूत्रधार हजारों में खेलते हैं। यह स्थिति हास्यास्पद ही नहीं, लज्जास्पद भी है। मैं जानता हूँ कि इस (पूँजी प्रधान सामन्तीय) व्यवस्था ने हम जमींदारों को अत्यधिक विलासी, दुराचारी, पराधीन तथा एकदम निर्लज्ज तक बना दिया है। निःसन्देह, इसी वर्ग का प्रतिनिधि होने के नाते मैं, इन कारणों से, इस व्यवस्था का विरोध भी नहीं करता हूँ। मैं इसका विरोध करता हूँ—एकदम स्वार्थ-दृष्टि से। कारण यह है कि इस व्यवस्था ने हमको भी अत्यधिक कष्ट दिये हैं

और अभी भी दे रही है। प्रमाण ? अपनी जमींदारों वाली तथाकथित शान का निर्वाह करने के लिये हम जमींदारों को अपनी ही आत्मा की मानो हत्या करनी पड़ती है। फलत, हममें स्वाभिमान या स्व-गौरव जैसी कोई चीज नहीं बची है। दूसरी ओर, सच तो यह है कि हम अपनी रिआया को लूटने के लिये विवश बन चुके हैं। कारण ? अपने अधिकारियों को प्रसन्न करने हेतु हमें तोहफे देने पड़ते हैं और स्वयं का बड़प्पन बनाये रखने के लिये शानो-शौकत से रहना पड़ता है। तोहफे न दें तो अधिकारी हमें विद्रोही समझते हैं और शानो-शौकत न दिखायें तो स्वयं हमारी ही रिआया तक हमें कंजूस कहने-मानने लगती है। फलतः प्रगति नाम की कोई चीज हमें पसन्द नहीं, उसकी आहट तक पर हम भयभीत ही नहीं होते, रक्षा की पुकार करते हुए अधिकारियों के पास दौड़-दौड़ पड़ते हैं। हममें न तो आत्म-विश्वास है, न कर्मठता भरा पौरुष। हम तो ऐसे बालकों की भाँति हैं जिन्हें चम्मचों से (थोड़ा-थोड़ा) दूध पिलाकर पाला जाता है तथा जो बाहर से मोटे दिखायी देने पर भी वस्तुतः दुर्बल, निस्सार तथा परावलम्बी होते हैं।

विशेष—(१) यहाँ पर लेखक ने समकालीन सामन्तीय व्यवस्था का एकदम सच्चा अंकन किया है। अतः देशकाल-चित्रण की दृष्टि से यह अंश महत्वपूर्ण है।

(२) कृषक-जमींदार-सम्बन्ध, उच्चवर्गीय दिखावा भरी जिन्दगी, सामन्तीय व्यवस्था की वास्तविकता, भेंटादि का प्रचलन तथा जमींदार वर्ग की तत्कालीन मनःस्थिति आदि का यह सच्चा-कच्चा चिट्ठा लेखक की विचारधारा, गहन-तटस्थ चिन्तन क्षमता तथा चित्रण-कौशलादि का परिचायक है।

(३) रायसाहब के चरित्र की दृष्टि से यह अंश महत्वपूर्ण है।

(४) सूक्तिपरक छोटे-छोटे वाक्य तथा सरल-समर्थ शब्दावली प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

(५) सामन्तीय समाज-व्यवस्था पर कराया व्यंग्य किया गया है।

मूल उद्धरण—

मुझमें और आप में अन्तर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूँ, उस पर चलता हूं। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े-बड़े धन-कुबेरों को भिक्षुओं के सामने घुटने टेकते देखा है और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है ? आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज-कर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।

(परि० ६ : पृ० ४८)

[शब्दार्थ—धन कुबेरों=धनिकों। भिक्षुकों=भिखारियों। चौखट=द्वार। महीप=राजा। विषमता=भेद-भाव। राजकर्मचारी=सरकारी नौकर।]

प्रसंग—धनुष-यज्ञ के आयोजन में रायसाहब ने अपने जिन शहरी मित्रों को निमन्त्रित किया था, उनमें से एक प्रमुख मित्र थे—प्रो० मेहता। मेहता जी पेशे से

दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे, फलतः तर्क-वितर्क करना और समय-समय पर अपने सैद्धान्तिक विचारों को प्रतिपादित करते रहना उनका शगल होना ही था। अपने इसी वैशिष्ट्य को प्रकट करते हुए और रायसाहब आदि की मित्र-मण्डली में अपने साम्यवाद-विरोध को प्रस्तुत करते हुए प्रो० मेहता ने (सम्पादक महोदय श्री ओंकार नाथ आदि से) कहा है।

व्याख्या—मुझमें और आप लोगों) में एक बहुत बड़ा अन्तर है, वह यह कि मैं जो (सिद्धान्त या विचारादि) मानता हूँ, उनका व्यवहार में अनुकरण भी करता हूँ जबकि आपकी कथनी-करनी में छत्तीस की स्थिति है। प्रमाण ? आप लोग समाजवादी या साम्यवादी समाज-व्यवस्था को स्वीकारते है और इसके अन्तर्गत न्याय-अन्याय, किसी भी तरह से आप समाज में धन-वितरण की, समानता प्रधान व्यवस्था मानते हुए, वितरण-व्यवस्था कर सकते हैं। दूसरी ओर, बुद्धि, चरित्र, सौन्दर्य और प्रतिमादि का तो समानता के आधार पर वितरण नहीं करते, कर ही नहीं सकते क्योंकि इनका वितरणाधिकार या क्षमता आप में नहीं (जबकि निश्चयतः भेद-स्तर या वैषम्य तो इनके आधार पर भी हुआ करता है। निःसन्देह, छोटे-बड़े का सामाजिक भेद या वैषम्य मात्र धन पर ही निर्भर नहीं करता है (उपर्युक्त तत्वों पर भी किया करता है)। यही कारण है कि इनके निमित्त बड़े-बड़े धनी, भिक्षुओं के सम्मुख परास्त होते हैं और बड़े बड़े समर्थ राजा तक सौन्दर्य (शाली) के सामने नाक रगड़ते हुए मिलते हैं। यह मैंने भी देखा है और तुम लोगों ने भी देखा ही होगा। क्या यह सामाजिक वैषम्य का साक्षी नहीं ? (निश्चयतः है)। आप (क्रान्ति के बाद के) साम्यवादी रूस का प्रमा दे सकते हैं (कि वहाँ पर सामाजिक वैषम्य मिटाकर, समानता स्थापित की जा चुकी है) लेकिन वहाँ भी वास्तव में नाम-परिवर्तन के अतिरिक्त यानी मिल के स्वामी – पूँजीपति को सरकारी कर्मचारी कह देने के अतिरिक्त और क्या अन्तर आ पाया है ? एकदम सच तो यह है कि समाज सदा बुद्धि (और बुद्धिमानों) से शासित होता रहा है और निश्चयतः आगे भी, सदा-सदा होता भी रहेगा।

विशेष – १. यहाँ पर मेहता की तर्क शक्ति, विद्वता, स्पष्टवादिता आदि चारित्रिक वैशिष्ट्य मुखर हुए हैं। अतः मेहता चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. वास्तव में, प्रो० मेहता लेखक महोदय के ही 'माउथ पीस' हैं। दूसरे शब्दों में, प्रस्तुत स्थल पर लेखक की ही विचाराधारा व्यक्त हुयी है।

३. यहाँ पर लेखक ने तथाकथित रूसी साम्यवाद का व्यंग्यात्मक विरोध और प्रकृतिवाद की पुष्टि की है।

४. सूक्ति-समावेश ने कथ्य को सक्षम और सबल बना दिया है।

५. सरल शब्दावली और मुहावरों का समावेश प्रमुख भाषागत विशेषताएँ हैं।

V. Imp. मूल उद्धरण—

आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का

तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्‌गारों पर कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप सा हो गया। (परि० ६ : पृ० ४६)

[**शब्दार्थ**—साक्षात् = साकार, प्रत्यक्ष। प्रतिमा = मूर्त्ति। गात = देह। चपलता = चंचलता। प्रवीण = चतुर। बला की = अत्यधिक। आमोद-प्रमोद = हँसी-खुशी। तत्व = सार। निपुण = चतुर। प्रदर्शन = दिखावा। हाव-भाव = बनावटी नाज-नखरे। मनोद्‌गारों = मनस्थित भावनाओं। निग्रह = संयम। अभिलाषा = इच्छा, कामना। लोप = लुप्त।]

प्रसंग—रायसाहब अमरपाल सिंह के यहाँ पर आयोजित हुए 'धनुष-यज्ञ' समारोह में उपस्थित होने वाले शहरी लोगों में से एक प्रमुख नाम था - मिस मालती का जिनके अन्तर्वाह्य की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करते हुए लेखक ने कहा है—

व्याख्या—(मालती को प्रथम दृष्टि में देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि मालती एकदम नये, पाश्चात्य-प्रभावित इस युग की साकार मूर्ति है (भारत की परम्परागत नारी नहीं)। प्रमाण ? इनका शरीर (नारीयोचित) कोमल होने पर भी चंचलता से एकदम भरा-पूरा है। इसी से, इनमें न तो (परम्परागत भारतीय नारी का आभूषण कही या मानी जाने वाली) झिझक है और न ही किसी प्रकार का संकोच भाव है। निश्चयतः, यह अत्यधिक फैशनपरस्त तो है ही, अति की प्रत्युन्न-मति से भी भरपूर हैं। पुरुष को समझने में तो मानो यह पुरुष सम्बन्धी मनोविज्ञान की पूरी-पूरी ज्ञाता हैं। मालती मानती है कि मौज मजे उड़ाना ही मानव-जीवन का सार तत्व (यानी एकमात्र उद्देश्य) है इसी से, दूसरों को, विशेषकर पुरुषों को, अपने प्रति लुब्ध बनाकर आकृष्ट कर लेने की कला में भी मालती एकदम पारंगत है। रही बात आन्तरिक पक्ष के वैशिष्ट्य की तो) आत्माभिव्यक्ति के लिये वह कोरा दिखावा करती है तो भावाभिव्यक्ति करती है—नाज-नखरों से। इस सब पर भी अपने मन की सच्ची-सच्ची विचाराभिव्यक्ति करने में वह कठोर संयम बरतती है, वह भी इस प्रकार की उसकी कोई भी इच्छा या अभिलाषा आसानी से प्रकट नहीं हो पाती और मन में ही छिपी रहती है।

विशेष—(१) यह अंश मालती-चरित्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(२) मालती के व्यक्तित्व का यह शब्द-चित्र लेखक की कलात्मक अभि-व्यक्ति-क्षमता का सशक्त साक्षी है।

(३) छोटे-छोटे वाक्य अंग्रेजी-उर्दू मिश्रित सरल शब्दावली, सशक्त वर्ण-शब्द-मैत्री आदि प्रमुख भाषागत विशेषताएँ हैं।

(४) प्रत्यक्ष वर्णन शैली है।

मूल उद्धरण—

मुझे अब इस डेमोक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा सा काम और महीनों की बहस। हां, जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। इससे तो कहीं अच्छा है कि एक गवर्नर रहे, चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या अंग्रेज, इससे बहस नहीं। एक इन्जिन जिस गाड़ी को बड़े मजे से हजारों मील खींचकर ले जा सकता

है, उसे दस हजार आदमी मिलकर भी उतनी तेजी से नहीं खींच सकते। मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेजार हो गया हूं। मेरा बस चले तो कौंसिल में आग लगा दूँ। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है, और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है जिसके पास रुपये हैं। रुपये के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएँ तैयार हो जाती हैं। बड़े-बड़े पण्डित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलने वाले, जो अपनी जबान और कलम से पब्लिक को जिस तरफ चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलेक्शन के पास न जाऊँगा। मेरा प्रोपेगण्डा अब डेमोक्रेसी के खिलाफ होगा।

[शब्दार्थ — डेमोक्रेसी = लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था। स्वांग = ढोंग। बेजार = व्यथित। प्रोपेगेण्डा = प्रचार।]

सन्दर्भ — पूर्ववत्।

प्रसंग — मनोरंजन करने के उद्देश्य से, रायसाहब अमरपालसिंह और उनकी अतिथि मित्र-मण्डली, टोलियों में बँटकर, शिकार खेलने के लिये जगल में गयी। एक (तीसरी) टोली में थे — मिर्जा खुर्शेद और मि० तंखा जो शिकार में न लगकर आपस में राजनीतिक बहस में उलझ गये। इसी बहस, में प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था के प्रति अपने क्षोभ भरे विरोधी विचारों को प्रकट करते हुए मिर्जा खुर्शेद ने कहा —

व्याख्या — प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में अब मेरी तनिक भी आस्था नहीं है। कारण है — इसमें प्रयुक्त की जाने वाली कौंसिल (सभा) की व्यवस्था जिसमें जरा-जरा से कामों को करने के लिये भी महीनों तक बहसें की जाती हैं और प्रकारान्तर से जनसाधारण को धोखा देने क लिये तरह-तरह के पाखड किये जाते हैं। अच्छा तो यह है कि समस्त शासन-कार्य एक गवर्नर करे, चाहे वह भारतीय हो या अंग्रेज। कारण ? जिस प्रकार एक इन्जन ही सारी रेलगाड़ी के डिब्बों को हजारों मील तक खींच ले जाता है, उसी प्रकार एक सुयोग्य गवर्नर समस्त शासन-भार आसानी से ढो सकता है, समस्त शासन-कार्य आसानी से कर सकता है जबकि दूसरी ओर (प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में) हजारों व्यक्ति मिलकर भी कार्यरूपी रेल-डिब्बों को सुचारु रूप से नहीं चला पाते हैं। इसमें तो कौंसिल भी केवल तमाशा सा करती है जिसके तमाशे जैसे व्यर्थ के क्रिया-कलापों को देख-देखकर मैं दुःखी हो जाता हूँ। यहाँ तक कि क्रोधित होकर कौंसिल को जला देने की इच्छा होती है। सच तो यह है कि प्रजातन्त्र (सिद्धान्त रूप में चाहे कितना ही अच्छा हो किन्तु कम से कम) व्यवहार में तो केवल बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों की राज्य-व्यवस्था है। प्रमाण ? (प्रजातन्त्रीय शासन-व्यवस्था के अनुसार होने वाले) चुनावों में पैसे वाले (व्यापारी-जमींदार) ही विजयी होते (और सत्ता पाते) हैं। पैसे के बल पर उनको सभी सुविधायें मिल जाती हैं। (उनके द्वारा पैसे के बल पर खरीदे गये) पंडित, मौलवी, लेखक और भाषणकर्ता आदि अपने भाषण और लेखनी के बल पर जनता को (मूर्ख बनाते हुए) इच्छानुकूल बना लेते हैं क्योंकि पैसे के सम्मुख सभी नतमस्तक होते हैं। अतएव, मैंने तो यही निश्चय किया है कि इस बार चुनाव नहीं लड़ूँगा और सक्रिय होकर प्रजातन्त्र (वाली शासन-व्यवस्था) के खिलाफ प्रचार-कार्य करूँगा।

विशेष—१. मिर्जा के माध्यम से मानो लेखक ने ही अपने विचारों को मुखर किया है। अत: मिर्जा और लेखक दोनों की ही विचारधारा की दृष्टि से यह अं: द्रष्टव्य है।

२ यहाँ पर प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था का समकालीन और एकदम यथार्थ चित्र अंकित है (जो आज, लगभग पचास वर्ष बाद भी उतना ही यथार्थ बना हुआ मिलता है)।

३. शब्दों की प्रसंग-पात्रानुकूलता, हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का खुला समन्वय तथा सरलता भरी अभिव्यक्ति-शबलता प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

मूल उद्धरण—

उसने खेल-खेल में जो एक चिंगारी फेंक दी थी, वह सारे खलिहान को भस्म कर देगी, यह उसने न समझा था और अब उसमें इतना साहस न था कि सामने आ कर कहे—'हाँ मैंने चिंगारी फेंकी थी। जिन टिकौनों से उसने अपने मन को संभाला था, वे सब भूकम्प में नीचे आ रहे और वह झोंपड़ा नीचे गिर पड़ा। वह पीछे लौटा। अब वह झुनिया को क्या मुँह दिखाये?

वह सौ कदम चला, पर इस तरह जैसे कोई सिपाही मैदान से भागे। उसने झुनिया से प्रीति और विवाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगीं। वह अभिसार की मीठी स्मृतियाँ याद आयीं, जब वह अपने उन्मत उसाँसों में, अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों में रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुंचाया या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने एक साथी का बढ़ावा सुन कर पीछे लौट पड़ा। (परि० १२ : पृ० ११२)

[**शब्दार्थ**—खलिहान=फसल रखने का स्थान। टिकौनों=बहानों, साधनों प्रीति=प्रेम। अभिसार=चोरी छिपे प्रिय से मिलना। स्मृतियाँ=यादें। उन्मत्त= मस्त। उसांसों=श्वांसों। चितवनों=कटाक्षों। आग्रह=जिद। उद्दीप्त=तीव्र। उल्लास=प्रेमानन्द। शावकों=मृग-छौनों। बहेलिये=शिकारी। बढ़ावा उत्साह-वर्धक बात।]

प्रसंग—अकाल वैधव्य से ग्रस्त झुनिया को अपनी पत्नी बनाने का आश्वासन देकर गोबर अपने साथ ले तो आया किन्तु माता-पिता (और समाज) के संस्कार-गत भय ने उसको दुर्बल बना दिया था। फलत:, उसने अकेली झुनिया को अपने घर में भेज दिया था यद्यपि उसका स्वयं अपने इस कर्म पर दु:खानुभव हो रहा था। कारण यह है भावी आशंका ने उसको दुविधाग्रस्त कर दिया था। उसकी इस दुविधाग्रस्त मन:स्थिति का वर्णन करते हुये लेखक ने कहा है—

व्याख्या—(झुनिया को घर में घुसते और वहाँ पर उसके साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार की आशंका से भयभीत बना हुआ) गोबर सोचने लगा कि उसने झुनिया के साथ प्रेम का खेल खेलते-खेलते मानो झुनिया के हृदयरूपी खलिहान में प्रेम की चिंगारी लगा दी थी जिसने हृदयस्थित सभी भाव-फसल को जला डाला

(प्रभावित कर दिया) था। निःसन्देह, नव किशोर गोबर को ऐसी आशा न थी। (भयभीत होने के कारण) इस समय तो उसमें अपने इस कार्य को खुले-खजाने स्वीकार कर लेने का साहस भी नहीं जुट पा रहा था। जिन तर्क-वितर्कों के साधनों से उसने अपने मन को (झुनिया को साथ लाकर पत्नी बनाने के लिये) दृढ़ किया था, वे सब इस समय उसी प्रकार भूमिसात हो गये थे जैसे कि भूकम्प में झोंपड़ा। 'वह झुनिया को मुँह दिखाने लायक नहीं', यही सोचकर वह (घर के द्वार से) पीछे की ओर मुड़ा। कुछ पग चला-ठीक एक सैनिक की तरह जो डर कर युद्ध-क्षेत्र से भागता हो। कुछ ही क्षणों में उसे याद आने लगीं, वे प्रेम भरी बातें, प्रेम भरे आश्वासन जो उसने झुनिया से प्रेमालाप करते हुये कहे थे, दिये थे। उसको मिलन-काल की वे प्रेम भरी स्मृतियाँ याद हो आयीं जबकि (प्रेमावेश के क्षणों में) मत्त बनी साँसों और प्रेम-नशे से भरी निगाहों से वह मानो झुनिया के सम्मुख, उसके चरणों पर, अपने प्राणों को ही निकाल कर, भेंट चढ़ाया करता था। उस समय झुनिया एक पक्षी की भाँति थी जो वैधव्य-वियोग से ग्रस्त बनी अपने पितृ-नीड़ में अकेले जीवन बीता रही थी। उस समय तक उसके उस जीवन में पुरुष द्वारा किया जाने वाला न तो कोई प्रेमाग्रह था, न उद्दीप्त कर देने वाला प्रेमानन्द, न तो मृग-शावक रूपी प्रेमिल भावों की सुमधुर लगने वाली ध्वनियाँ थीं, न किसी (पुरुष रूपी) शिकारी का छल भरा प्रेम-जाल। आशय यही है कि उस समय तो झुनिया के जीवन में पुरुष-प्रेम का एकदम अभाव था। वह निश्चिन्त थी और निर्लिप्त भी। तभी उसके जीवन में गोबर आया था जिसने चाहे आनन्द दिया हो या नहीं किन्तु उसको (चोरी-छिपे भगाकर और साथ लाकर तथा अब अकेली को अपने घर में भेज कर) मुसीबत में जरूर डाल दिया था। यही सब सोचकर गोबर कुछ संभला, रुका मानो उस पलायन करते हुये सिपाही को किसी साथी सैनिक द्वारा उत्साह भरी आवाज से रोक दिया हो और पुनः युद्ध-क्षेत्र में सक्रिय बनने के लिये प्रेरित किया गया हो।

विशेष—१. यहाँ पर गोबर के मनोद्वन्द्व का एकदम यथार्थपरक और मनोविज्ञानसम्मत अंकन है।

२. काव्य-वर्णन शैली का सशक्त प्रयोग है।

३. यहाँ पर प्रतीकात्मकता और सटीक अलंकरण एकदम दर्शनीय है।

मूल उद्धरण—

[Imp.] मन पर जितना ही गहरा आघात होता है, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्त्ति और कलंक ने गोबर के अन्तःस्तल को मथकर वह रत्न निकाल लिया, जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उसे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम से कम काम करता और ज्यादा से ज्यादा खाना अपना हक समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा कि घर वालों के साथ उसका भी कुछ कर्त्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया।

(परि० १२ : पृ० ११३)

[**शब्दार्थ**—आघात=चोट। प्रतिक्रिया=क्रिया के फलस्वरूप होने वाली क्रिया। अपकीर्त्ति=अपयश। कलंक=कालिमा, अपराध या दोष। अन्तःस्तल=

अन्तर्मन। दायित्व=जिम्मेदारी। संकल्प=निश्चय। हक=अधिकार। उदात्त=उदारता भरी।]

प्रसंग—गोबर की आशा के विपरीत, घर पर वधू रूप में अकेली आयी झुनिया को, धनिया और होरी ने तुरन्त स्वीकार ही नहीं कर लिया था वरन् उसको पूरा-पूरा अपनत्व भी दे दिया था। माता-पिता के इस महत्व कार्य ने गोबर को अत्यन्त भावाभिभूत बना दिया और वह पुनः आत्म-मंथन में डूब गया। गोबर की इसी मनःस्थिति और तद्जन्य प्रतिक्रियाओं का विवरण देते हुये उपन्यासकार ने बताया है—

व्याख्या—यह एक सामान्य और मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति के मन पर किसी कर्म या घटना की क्रिया से जितनी ज्यादा चोट पहुंचती है, उसका परिणाम भी उतना ही ज्यादा और गहरा हुआ करता है। निःसन्देह, होरी-धनिया द्वारा झुनिया को तुरन्त और अत्यधिक स्नेहपूर्वक अपना लिया जाना भी एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना थी—मुख्यतः गोबर की दृष्टि में। परिणामस्वरूप गोबर की मानसिक प्रतिक्रियाएँ भी महत्वपूर्ण तो होनी ही थीं—थी भी। झुनिया से प्रेम, गुप्त विवाह और चुपचाप अकेली को घर में भेज, स्वयं ग्लानि या आशंका ग्रस्त हुये, गोबर को प्राप्त होने वाले अपयश और उसके अपराध-दोष ने उसके मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर दिया—ठीक दूध की भाँति मथ कर रख दिया। जिस प्रकार मथे जाने पर ही दूध में छिपा हुआ घी या मक्खन निकल आता है, ठीक उसी प्रकार गोबर के अन्तर्मन से भी वह माखन-रत्न तुल्य दायित्व-बोध निकल पड़ा जो अभी तक मन में ही छिपा पड़ा था। प्रमाण ? आज, पहली बार उसको अपनी जिम्मेदारियों का बोध हुआ और उनकी अधिकाधिक पूर्ति करते रहने का दृढ़ निश्चय भी उसके मन में उठ बैठा। प्रमाण ? अब तक तो एक सामान्य, औसत ग्रामीण युवा की भाँति वह घर के काम कम से कम करता था और उसका सारा ध्यान केवल अधिकाधिक खाने-पीने या मौज-मजा उड़ाने तक ही लगा रहता था। इसको ही वह अपना अधिकार तक समझता था। इससे पूर्व उसने कभी सोचा भी नहीं था कि अपने घर वालों के प्रति उसके कुछ कर्त्तव्य भी हैं लेकिन आज, माता-पिता (धनिया और होरी) द्वारा, अपनी आशा के एकदम विपरीत, पुत्र को उदारतापूर्वक क्षमा कर दिये जाने और झुनिया को सस्नेह स्वीकार कर लिये जाने की घटना ने ही मानो उसके हृदय मे ज्ञानालोक भर दिया था।

विशेष—१–२ पूर्ववत्।

३. प्रथम वाक्य एक सुन्दर सूक्ति है।

४. गोबर के माध्यम से लेखक ने अपने समकालीन (ग्रामीण) युवा वर्ग का सच्चा, स्वाभाविक और मनोविज्ञानसम्मत चित्र उपस्थित कर दिया है।

मूल उद्धरण—

(V. V. Imp.) मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटा कर पति की अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत से ही क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटायेगा तो शून्य हो जायेगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा

और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेजप्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूं कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है? संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ, मैं उससे यह आशा रखता हूँ कि उसे मार ही डालूं तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये, अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूं तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूंगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूंगा।

(परि० १३ : पृ०१२३-२४)

[शब्दार्थ—जेहन=दिमाग । वफा=आज्ञापालन । बेजबानी=मौन । कुर्बानी=बलिदान । सामर्थ्य=क्षमता । खोह=गुफा । सर्वात्मा=परमात्मा । सहिष्णु=सहनशील । सर्वांश=पूर्णरूप में । प्रतिमा=मूर्ति । प्रतिहिंसा=प्रतिशोध रूप में हिंसा का भाव । अर्पण=प्रदान, देना ।]

प्रसंग—मिर्जा खुर्शेद को विश्वास था कि प्रो० मेहता मालती की ओर आकृष्ट तो हैं ही, विवाह भी उसी के साथ करेंगे। कबड्डी खेलने और सबके चले जाने के बाद, एकान्त में वे मेहता से यही बात कह भी देते हैं। प्रत्युत्तर में प्रो० मेहता इस विश्वास को असत्य बताते हुये अपनी नारी विषयक सच्ची धारणा को भी प्रकट कर देते हैं और मिर्जा खुर्शेद से कहते हैं—

व्याख्या—मैं नारी को आज्ञाकारिता और त्याग-भाव का साकार रूप मानता हूँ। मेरे मतानुसार, नारी अपना मौन भरा आत्म-बलिदान करके और इस प्रकार स्वयं की अहम् भावना को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का ही एक भाव बन जाती है। विवाह के उपरान्त (वह अपने त्यागादि गुणों और समर्पण के फलस्वरूप पति को दिये गये अभिन्नत्व से अपने पति को इतना अधिक प्रभावित कर देती है कि) पति केवल अपने शरीर का स्वामी रह जाता है, उसकी आत्मा पत्नी की हो जाती है। आप कह सकते हैं कि नारी (पत्नी) की तरह पुरुष आत्म-समर्पण क्यों नहीं करता? नारी से ही इसकी कामना क्यों करता है? उत्तर यही है कि पुरुष में इस सीमा तक आत्म समर्पण कर देने की क्षमता ही नहीं होती। दूसरे, ऐसा करने पर तो वह एकदम व्यर्थ हो जायेगा। परिणाम? संसार त्यागकर वह किसी गुफा में जा बैठेगा और परमात्मा से मिलने की स्वप्नवत् कल्पनाओं में खोया रहेगा। वस्तुतः, प्रकृति से ही पुरुष तेजोमय प्राणी है—अहंकार से भरा-पूरा जो अपने आप करे, अहंकारवश होकर, ज्ञान का पुतला समझता है और परमात्मा में लीन हो जाने की कल्पना किया करता है। दूसरी, ओर, नारी एकदम पृथ्वी की तरह धैर्य, शान्ति और सहनशीलता जैसे गुणों से परिपूर्ण होती है। पुरुष में यदि नारी वाले ये गुण आ जाते हैं तो वह (देवताओं की तरह) महान् बन जाता है जबकि नारी पुरुष वाले (अहंकार, तेज, कल्पनाजन्य आदर्श-मोहादि) गुण पाकर एकदम कुलटा की तरह निकृष्ट बन जाती है। पुरुष उसी नारी की ओर आकर्षित होता है जिसमें (पुरुष वाले गुणों का अभाव और) नारी वाले गुण पूर्णतया हों। (नारी वाले

इन्हीं गुणों के पूर्णतया न होने के कारण; मालती मुझे अब तक भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी है। मैं नारी को क्या मानता हूँ, यह बताने के लिये मेरे पास समुचित शब्द नहीं हैं। संसार में व्याप्त समस्त सौन्दर्य की साकार प्रतिमा को ही मैं नारी कहता-मानता हूँ (अर्थात् अन्तर्वाह्य सभी प्रकार के सौन्दर्य से परिपूर्ण होने पर ही कोई नारी कहलाने की अधिकारिणी है। नारी (पत्नी) से मैं यही चाहता हूँ कि चाहे मैं उसे मार डालूँ किन्तु फिर भी उसमें प्रतिहिंसा की भावना नहीं आनी चाहिये। अपनी आँखों के सामने ही मुझे किसी परस्त्री से प्रेम करते देख कर भी उसको ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। निःसन्देह ऐसी गुणवती नारी को पाकर मैं उसके चरणो पर गिर पड़ूँगा और आत्म-समर्पण कर दूंगा।

विशेष—१. प्रो० मेहता (और वस्तुतः उनके माध्यम से स्वयं लेखक) की नारी विषयक धारणा यहाँ पर खड़े सशक्त रूप में मुखर हुई है। अतएव, उनके आन्तरिक चरित्रांकन की दृष्टि से यह अंश महत्वपूर्ण है।

२. नर-नारी का तुलनात्मक विश्लेषण करके यहाँ पर नारी के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की गई है जो एकदम भारतीय मान्यता का अनुकरण है।

३. "पुरुष में ···· हो जाती है" एक सुन्दर सूक्ति है।

४. मिश्रित शब्दावली, प्रवाहशीलता, सरलता और प्रभावोत्पादकता आदि इस स्थल के प्रमुख भाषागत गुण हैं।

५. काव्यात्मक, वर्णन और विश्लेषण शैलियों का समन्वित रूप उल्लेखनीय है।

६. **भावसाम्य**—(i) "पुरुष का हो अनन्त पर चाव,
नारी का एक कान्त पर भाव।"
—बलदेव प्रसाद मिश्र : साकेत-सन्त

(ii) "नारी क्रिया नहीं, वह केवल क्षमा, शान्ति, करुण है।" —दिनकर : सूक्तियाँ

(iii) पुरुष विजय का भूखा होता है, नारी समर्पण की। पुरुष लूटना चाहता है नारी लूट जाना।
—महादेवी वर्मा

मूल उद्धरण –

मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देता है कि मानसरोवर की आनन्दमयी शान्ति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और अगर वह शिकारी बन जाये तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतने तेज चंगुल नहीं हैं, उतनी तेज आँखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन आंखों का संचय करने में उसे सदियाँ लग जायेंगी, फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा—वह हंस जो मोती चुगता है। (परि० १५ : पृ० १६६)

[शब्दार्थ—चंगुल=पंजे। अस्त्र=हथियार। संचय=एकत्र। सदियाँ=शताब्दियाँ।]

प्रसंग—मालती के प्रयासों के फलस्वरूप नगर में 'वीमेन्स लीग' नामक एक संस्था खुली थी जिससे नगर का सुशिक्षित वर्ग सम्बद्ध था। इसी लीग के एक

समारोह में प्रो० मेहता ने नारी विषयक एक विचारोत्तेजक भाषण दिया जिसमें नारी-समुदाय को सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा—

व्याख्या—(बाज और हंस प्रकृति से ही दो परस्पर विरोधी स्वभाव और कर्मों वाले पक्षी हैं—ठीक पुरुष और नारी की भाँति)। मैं आप (उपस्थित समुदाय, विशेषतः नारी-समुदाय) से पूँछता हूँ कि बाज जैसे हिंसक पक्षी को निरीह चिड़ियों का शिकार करते देखकर और उसी का अंधानुकरण करते हुये हंस को क्या बात शोभा देगी कि वह मानसरोवर में प्राप्त होने वाले आनन्द और शान्ति भरे जीवन का परित्याग करके चिड़िया का शिकार करने लगे? हँस द्वारा शिकार करके शिकारी बन जाने के लिये क्या आप हंस को बधाई देंगे? कदापि नहीं। कारण? हंस (जैसे स्वभाव-गुण वाली नारी) का प्रकृति-प्रदत्त कार्य हिंसा भरा शिकारादि कार्य करना नहीं है। इतना ही नहीं, उसके पास बाज जैसी तेज चोंच, पंजे, आँख, पंख और हिंसा करने की स्वाभाविक-प्राकृतिक ललक आदि भी नहीं होती है। इस प्रकार के शस्त्रों (अर्थात् क्षमता) को जुटाने में उसे सैकड़ों वर्ष लगेंगे यद्यपि फिर भी वह गुण और कर्मों में बाज जैसा नहीं बन सकेगा। हाँ, मोती चुगने वाला शान्त स्वभाव का हंस भी वह बना नहीं रह सकेगा। एकदम यही स्थिति समाज में नर और नारी की है। नर बाज तुल्य है तो नारी हंसवत, जिसको पुरुष की (नारी-स्वातंत्र्य या समानतादि के नाम पर) हिंसादि अवगुणों की नकल नहीं करनी चाहिये। उसको तो अपने हंसवत् उत्तम गुणों में ही लिप्त रहना चाहिये नहीं तो उसकी स्थिति एकदम 'धोबी के कुत्ते' या 'कौआ चला हंस की चाल, अपनी भी भूल गया' वाली बन कर रह जायेगी।

विशेष—१-२ पूर्ववत्।

३. यह स्थल प्रतीक शैली का उत्तम उदाहरण है।

४. पाश्चात्य जगत में प्रचलित और वहाँ से भारत में आयातित किये गये 'नर-नारी की समानता' वाले आन्दोलन और विचारधारा का विरोध करने के साथ-साथ यहाँ पर लेखक ने परम्परागत मान्यता-नर-नारी के पृथक्-पृथक् कार्य-क्षेत्र का समर्थन किया है।

मूल उद्धरण—

वोट नए युग का माया जाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है, उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होंगी, न उधर की। कौन कहता है कि आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता। हम सभी, पहले मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है तो अपरिमित कौनसा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष, जहाँ संगठित अपहरण है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, जहाँ मनुष्य पीसा जाता है, जहाँ उसका रक्त निकाला जाता है?

(परि० १५ : पृ० १३६-३७)

[शब्दार्थ—वोट = मताधिकार। मरीचिका = मृगतृष्णा, भ्रम। अभिव्यक्ति = अपनी बात को प्रकट करना। अवकाश = अवसर। सृष्टि = निर्माण। व्यापार =

कार्य-कलाप । परिमित=सीमित । अपरिमित=असीमित । अपहरण=जबरन चुराना ।]

प्रसंग—पूर्ववत् ।

व्याख्या—(पाश्चात्य जगत में प्रचलित नर-नारी के समानाधिकार आन्दोलन से प्रभावित होकर आपके द्वारा बलपूर्वक माँगा जाने वाला) मताधिकार वस्तुतः इस नये युग का मायाजाल है (जिसमें आप फँस रही हैं)। यह तो मृगतृष्णा के समान है। जिस प्रकार हिरन सूर्यातप की चमक को देखकर चमकते हुए रेत को जल मान बैठता है और उससे अपनी प्यास नहीं बुझा पाता, ठीक उसी प्रकार, आप भी मताधिकार प्राप्त करके पुरुष के समान बन जाने के भ्रम में फँसी हैं क्योंकि इससे आप सच्ची समानता को प्राप्त नहीं कर सकती हैं। अतएव, मताधिकार (की माँग करना आपके लिये) कलंक है या फिर (पुरुष वर्ग द्वारा दिया जाने वाला) एक धोखा। इसके चक्कर में फँसकर आप न घर की रहेंगी, न घाट की। आपका कर्म-क्षेत्र (घर) सीमित नहीं और ऐसा भी नहीं है कि आपको अपने सद्‌गुणों या प्रतिभा को प्रदर्शित करने के अवसर उसमें न मिल पाते हों। सच तो यह है कि हम सभी सर्वप्रथम मनुष्य हैं जिसके जीवन का मूलाधार 'घर' ही होता है। प्रमाण ? घर में हम जन्म लेते हैं, पालित-पोषित होते है तथा जीवन के क्रिया-कलाप भी उसी में (या उसी से सम्बन्धित रहकर) करते हैं फिर भी, अगर घर को समीता क्षेत्र वाला कहा-माना जाये तो भला असीमित क्षेत्र वाला और क्या हो सकता है ? यह संसार जिसमें पगे-पगे संघर्ष और संगठित होकर किया जाने वाला (मनुष्यत्व का) अपहरण व्याप्त हुआ पड़ा है। घर ही तो वह कारखाना है जिसमें मनुष्य ही नहीं, उसके भाग्य का भी निर्माण हुआ करता है और आप ऐसे उत्तम महत्वपूर्ण स्थान को छोड़कर उस बाहरी दुनिया रूपी कारखाने में जाना चाहती हो जहाँ मनुष्य पर अत्याचार किये जाते हैं और रक्त निचोड़ा जाता है।

विशेष—१-४. पूर्ववत् ।

५. नारी के गृह लक्ष्मी रूप की जो भारतीय परम्परा में आदरणीय है, प्रतिष्ठा की गयी है।

मूल उद्धरण—

पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसीलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीजें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिये। संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है, लेकिन अन्धी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है। जब मैं वहाँ की शिक्षित बालिकाओं को अपने रूप का या भरी हुई गोल बाँहों या अपनी नग्नता का प्रदर्शन करते देखता हूँ तो मुझे उन पर दया आती है। उनकी लालसाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं। नारी की इससे अधिक और क्या अधोगति हो सकती है ?

(परि० १५ : पृ० १३७)

[शब्दार्थ—पश्चिम = यूरोपीय देश। स्वच्छन्द = निरंकुश। आदान-प्रदान = लेन-देन। विदग्ध = जला देने वाली। लालसा = इच्छा। उच्छृंखल = स्वच्छन्द। गरिमा = महानता। आमोद-प्रमोद = मनोरंजन क्रिया-कलाप। होम = न्योछावर। पराभूर = प्रभावित। अधोगति = पतनावस्था।]

प्रसंग—पाश्चात्य अर्थात् यूरोपीय नारी की दुर्दशा और उसका मूल कारण उसी (नारी) को ठहराते हुए, प्रो० मेहता अपने भाषणान्तर्गत कहते हैं—

व्याख्या—आज यूरोपीय देशों की नारी एकदम निरकुश बन जाना चाहती है। उद्देश्य है—अधिकाधिक भोग में फँसकर विलास करते रहना (जो उसने अपने जीवन का एकमात्र इष्ट या लक्ष्य मान लिया है)। दूसरी ओर भारतीय नारी ने विलाश को कभी भी प्रमुखता नहीं दी क्योंकि वह तो सदा सेवा भाव से भर कर, उसी अधिकार को प्राप्त करके उस रूप की रक्षा करते हुए गृहस्थी के क्रिया-कलापों को करती रही (और आज भी उसकी लगभग यही स्थिति है)। पाश्चात्य (यूरोपीय) देशों से हम भारतीयों को अच्छी चीजें अवश्य ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि दो संस्कृतियों मे, मिलने पर, परस्पर प्रभावों का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक ही है और सदैव रहा भी है, फिर भी पाश्चात्य जगत की अन्धी नकल करना तो हमारी मानसिक कमजोरी का ही साक्षी है। कारण उन देशों मे स्त्री घर की स्वामिनी बनी रहना नहीं चाहती। क्योंकि ? सांसारिक सुखोपभोग करने की जला कर राख कर देने वाली इच्छा ने उसको एकदम स्वच्छन्द बना दिया है। परिणाम यह है कि वह अपनी नारीयोचित लज्जा और नारीत्व की महानता को, जो नारी की सर्वोत्तम विभूतियाँ होती हैं, कुरबान कर रही है, वह भी केवल चंचलता और मन बहलाव (के टुच्चे भोगवादी क्रिया-कलापों) पर। जब मैं वहाँ की सुशिक्षिता लड़कियों को भी रूप और शरीर की नग्नता का प्रदर्शन करते हुए पाता हूँ तो उनकी स्थिति पर तरस आने लगता है। वस्तुतः, सांसारिक भोग-विलासों को मूर्त करने की उनकी इच्छाओं ने उनको इतना अधिक प्रभावित कर दिया है कि वे अपनी लज्जा तक की रक्षा नहीं कर पातीं (क्योंकि स्वयं में एकदम निर्लज्ज बन चुकी हैं)। भला, इससे अधिक नारी का और क्या पतन हो सकता है ?

विशेष—१. यहाँ पर प्रो० मेहता (और वस्तुतः उनके माध्यम से स्वयं प्रेमचन्द) ने यूरोपीय नारी की स्वकालीन भोगग्रस्ता स्थिति का बड़ा कटु किन्तु यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है तथा उसका विरोध करते हुए भारतीय नारी के लिये उसको अग्राह्य बताया है। निश्चयता, आज भी यह अनुकरणीय सत्य है।

२. परोक्षतः, यह व्यंगात्मक कथन मालती (जैसी तथाकथित आधुनिक भारतीय नारियों) पर भी चरितार्थ होता है।

३. यहां पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा है।

४. तत्समपरक-सरल शब्दावली और प्रवाहमयता प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

५. यहाँ पर पर्दा-प्रथा तथा नारी के गृहस्वामिनी रूप का समर्थन है जो लेखक पर पड़े युग-प्रभाव और भारतीय आदर्शों के अनुकरण का परिचायक भी है।

मूलउद्धरण—

जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यास केवल भीख माँगने का संस्कृत रूप है। यह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है तो मुक्त विलास में बिलकुल नहीं है। सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा-व्रत में है। यही अधिकार का स्रोत है। वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेन्ट है जो दम्पत्ति को जीवन-पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है। जिस पर बड़े-बड़े आघातों का कोई असर नहीं होता। जहाँ सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। और आपके ऊपर, पुरुष-जीवन की नौका की कर्णधार होने के कारण, जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नौका को आँधी और तूफानों में पार लगा सकती हैं और असावधानी की नौका डूब जायगी और उसके साथ आप भी डूब जायेंगी।

(परि० १५ : पृ० १३८)

[शब्दार्थ—उद्दीप्त=संचरण कर देने या बढ़ाने वाली। लालसा=इच्छा। विकृत=बिगड़ा हुआ। विलास=भोग-वासना। स्रोत=झरना, साधन। उद्गम=प्रकट होना। दम्पत्ति=पति-पत्नी। जीवन पर्यन्त=आजीवन। साहचर्य=साथ। आघातों=चोटों। अभाव=कमी। विच्छेद=टूटना या समाप्त होना। परित्याग=तलाक। कर्णधार=नाविक।]

प्रसंग—प्रो० मेहता द्वारा अपने भाषण में किये गये पाश्चात्य नारी के विरोध और नारी-उच्छृंखलता की आलोचना को कुछ श्रोता-नारियाँ नहीं सह सकीं। इनमें प्रमुख थीं—मालती की छोटी बहिन सरोज जिसने उत्तेजित होते हुए प्रेम-विवाह करने की आवाज उठायी। उसी को सुनकर, प्रत्युत्तर स्वरूप, प्रो० मेहता ने उस (और उसकी समर्थक नारियों) से कहा—

व्याख्या—तुम जिसको 'प्रेम' कह रही हो, वह प्रेम नहीं वरन् धोखा मात्र है। वास्तव में उत्तेजित विलासेच्छा का बिगड़ा हुआ रूप जैसे कि 'संन्यास' जैसा संस्कृत शब्द भीख माँगने का ही संस्कृत भाषीय रूप है। विवाहित जीवन में वह प्रेम कम मात्रा में हो सकता है किन्तु विवाहेतर मुक्त विलास (Free Sex) में तनिक भी नहीं होता। वस्तुतः, सच्चा आनन्द और सच्ची शान्ति तो केवल सेवा करने के व्रत में है। सेवा ही अधिकार का मूलाधार और शक्ति की जन्मदात्री है। सीमेन्ट की भाँति सेवा की भावना ही पति-पत्नी को आजीवन प्रेम और साथ में जोड़े रखती है वह भी इतनी मजबूती के साथ कि जीवन की बड़ी से बड़ी चोटें भी उनको अलग नहीं कर पातीं। दूसरी ओर, सेवा-भाव के न होने पर, विबाह सम्बन्ध टूटता है, तलाक होते हैं या फिर परस्पर सन्देह भाव उत्पन्न हो जाता है (जो दाम्पत्य जीवन को नष्ट-भ्रष्ट या समाप्त ही कर देने वाली स्थितियाँ हैं)। पुरुष-जीवन की नौका (घर) का सचालन करने वाली नाविक, आप (नारियाँ) ही हैं। फलतः जिम्मेदारी भी आप पर ही अधिक है। आप चाहें तो (सेवा करके और घर को सुचारू रूप से बनाये-चलाये रखकर) जीवन-नौका को आँधी-तूफान की बड़ी-२ बाधाओं से पार लगा सकती हैं और यदि आप असावधान हो गयीं तो नौका ही नहीं, उसमें सवार हुयी आप स्वयं भी डूब जायेंगी।

विशेष – १. यहाँ पर भारतीय आदर्श के अनुकूल दाम्पत्य प्रेम और सेवा-सहयोग भाव की प्रतिष्ठा की गयी है।

२. प्रो० मेहता (और लेखक) की विचारधारा यहाँ पर बड़े सशक्त रूप से मुखरित हुई।

३. मुक्त विलास और प्रेम-विवाह पर करारे व्यंग्य करके इनकी निस्सारता बतायी गयी है।

४. सूक्तिपरकता, समन्वित-मिश्रित शब्दावली तथा प्रवाहशीलता इस स्थल के प्रमुख भाषागत गुण हैं।

५. उदाहरण तथा रूपक अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।

६. 'सच्चा आनन्द ···अविश्वास है" सुन्दर सूक्तियाँ हैं।

मूलउद्धरण—

जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिये सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि, ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आनन्द की वस्तु तो बुझी हुई आशायें और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन, जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।
(परि० १८ : पृ० १६४)

[शब्दार्थ:—ऐश्वर्य = सुख-सुविधायें। विभूतियाँ = ऐश्वर्य। मोद = प्रसन्नता। स्मृतियाँ = यादें। विनोद = मजाक। लय = तल्लीन।]

प्रसंग—खन्ना की नितप्रति की बढ़ती हुई विलासिता, घर और घरवालों की उपेक्षा तथा मुख्यतः मालती के साथ उसके उन्मुक्त सम्बन्धों का एक प्रभाव पड़ा खन्ना के दाम्पत्य जीवन में उभरती, बढ़ती दरार के रूप में। सीधी-सादी मिसेज खन्ना अर्थात् गोविंदी इस सबको अधिक नहीं सह सकी और एक दिन घर छोड़ कर चल दी। दुविधा और चिन्ता से ग्रस्त बनी वह जा पहुँची थी एक चिड़िया-घर में जहाँ अचानक ही उसकी भैंट प्रो० मेहता से हो गयी। बातों ही बातों में, गोविंदी उनसे कह बैठी कि मेहता को तो कवि होना चाहिये था, दार्शनिक नहीं, यद्यपि कवि को संसार में प्रायः दुःख ही मिला करते हैं। इसी के प्रत्युत्तर में, कवि की दुःख को ही सुख मानने की विशेषता तथा काव्य-सृजन में इस दुःख के महत्व को प्रतिपादित करते हुए प्रो० मेहता ने गोविंदी से कहा—

व्याख्या—संसार जिन उपलब्धियों को दुःख मानता है, कवि उसी में सुख के दर्शन करता है। धन, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, शरीर-शक्ति, विद्या और बुद्धि आदि सांसारिक वस्तुओं में सामान्य जन ही उलझता है और इनकी प्राप्ति-कामना से इन पर मोहित या लुब्ध होता है जबकि कवि के लिये ये सब एकदम अनाकर्षक होती हैं। दूसरी ओर, असफल आशाएँ, समाप्त हो चुकीं यादगारें तथा टूटे हुए हृदय का दुःख (भरा रूदन) ही उसको आकर्षित-आनन्दित करते हैं। आशय यही है कि कवि प्रधानता वेदना और करूणादि का उपासक होता है, भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐश्वर्यादि का नहीं। कारण? वेदनादि से प्रेम करने पर ही उसकी संवेदनाएं जागृत होती हैं जिनकी अभिव्यक्ति करने हेतु वह काव्य-सृजन करता है

और कवि बना रहता है। तात्पर्य यही है कि वेदनादि ही काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा या आलम्बन होती हैं। दूसरी ओर, दर्शन शास्त्र (और उसका उपासक दार्शनिक तो जीवन की मर्मसूचक इन संवेदनाओं का केवल विश्लेषण मात्र ही करता है जबकि कवि इससे तादात्म्य स्थापित करके इनमें तल्लीन हो जाता है।

विशेष—१. यहाँ पर 'काव्य और वेदना के निकट सम्बन्ध' वाली मान्यता का अनुमोदन किया गया है।

२. विवेचन-विश्लेषण शैली का उत्तम प्रयोग है।

३. प्रो० मेहता का चरित्र उद्घाटित हुआ है।

मूलउद्धरण—

मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ, जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हँसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्द भरा क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छन्द, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता मेरे लिए वर्तमान ही सब-कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति, मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिये थी, सहयोग में, भाई-चारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा हैं, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुस्कराहट न आये, आँखों में आँसू न आये। मैं कहता हूँ, अगर तुम हँस नहीं सकते और रो नहीं सकते तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है। (परि० १८ : पृ० १६६)

[शब्दार्थ—प्राकृतिक=आदिम, यथार्थ। दमन=संयम। क्रीड़ा=खेल। कुत्सा=बुराई। भूत=अतीत। भार=बोझ। रूढ़ियों=परम्पराओं। मलबे=ढेर। स्फूर्ति=चेतना। अदावतों=दुश्मनी। ऋण=कर्ज। उपासना=आराधना। पराकाष्ठा=चरम सीमा। चहक=प्रसन्नता। मोक्ष=मुक्ति।]

प्रसंग—चिड़ियाघर में भेंट हो जाने पर, गोविंदी ने प्रो० मेहता से अनुरोध किया था कि वे मालती से मि० खन्ना को छुटकारा दिलाकर सत्पथ पर लायें। प्रो० मेहता से आश्वासन पाकर गोविंदी ने उनको धन्यवाद दिया तो प्रत्युत्तर में प्रो० मेहता ने कहा—

व्याख्या—मैं प्रकृति का उपासक हूँ। इसी से चाहता हूँ कि मनुष्य अपने प्रकृत रूप में रहे कृत्रिम या दिखावटी रूप में नहीं। वह प्रसन्नता के क्षणों में

प्रसन्नता की अनुभूति करे तो दुःख के क्षणों में दुखानुभव करे तथा क्रोध के क्षणों में डटकर क्रोध करे और ऐसे में तो जान से मारने में भी संकोच न करे। मैं मनुष्य को इसी प्रकृति-प्रदत्त रूप में रहते हुये देखना चाहता हूँ। जो लोग, कृत्रिम सभ्यता या आधुनिकता के नाम पर, दुःख-सुख जैसी प्राकृतिक भावनाओं का दमन करते हैं अथवा रोने को दुर्बलता या खुल कर हँसने को ओछा समझते हैं, ऐसे दिखावट-पसंदों को मैं पसन्द नहीं करता। मेरे लिये तो जीवन एक आनन्दकारी खेल के समान है जिसमें सरलता और उन्मुक्तता तो रहती है किन्तु घृणा या ईर्ष्यादि बुरी भावनाओं का अवसर नहीं। मैं न तो बीते हुए की चिन्ता करता हूँ न आने वाली भावी की परवाह। मैं तो वर्तमान को ही सब कुछ मानता हूँ और उसी मे मस्त-स्वाभाविक बना रहता हूँ। कारण? भावी की चिन्ता यदि हमको निष्क्रिय या कायर बना देती है तो अतीत की स्मृतियों का बोझ मानो असह्य होने के कारण हमारी कमर ही तोड़ देता है दूसरे, अपनी सीमित जीवनी-शक्ति को यदि हम अतीत और भविष्य तक भी फैला दें (अर्थात् अतीत के रोने या भविष्य की आशंका पर भी ध्यान देते रहें) तो निःसन्देह हमारी यह जीवन जीने की क्षमता और भी कम हो जायेगी। इस पर भी हम—विशेषतः भारतवासी—इस कड़वे सच को या तो समझते हैं या फिर इसे झुठला रहे हैं। प्रमाण? अतीत के बोझे को लादे हुए हम अभी भी परम्पराओं, चले आ रहे विश्वासों-मान्यताओं तथा अतीत रूपी मलबे में दबे पड़े हैं। उससे छुटकारा पाकर, मुक्त होने का न तो हम प्रयास करते हैं और न ऐसा कर पाने की क्षमता ही हम लोगों में शेष बची है। हमारी जो शक्ति और चेतना मानव-धर्म का पालन करने, परस्पर सहयोग और भ्रातृत्व भाव को बनाये रखने में लगनी चाहिये, उसी को हम व्यर्थ के पुराने प्रतिशोध लेने या बाप-दादों का ऋण चुकाने में गवां रहे हैं। इसी भाँति, धर्मान्तर्गत ईश्वर और मोक्षादि की बातें सुन-कर या पढ़कर मुझे हँसी आती है। मुझे तो लगता है कि मोक्ष या पूजा-पाठादि अहंकार की चरम सीमा हैं जो हमारी मनुष्यता को ही नष्ट किये दे रहे हैं। मेरे विचार में तो ईश्वर वहीं हैं जहाँ जीवन की सजीवता, क्रीड़ा तथा प्रसन्नता है। इसी भाँति, मानव-जीवन (या कम से कम अपने ही जीवन को सुखी बनाना ही उपासना या मोक्ष है। ज्ञान मार्ग का अनुयायी जन कहता है कि न हँसो, न रोओ, (वरन् तटस्थ और निलिप्त बने रहो)। मैं (इसके विपरीत मानता और) कहता हूँ कि बिना हँसे—रोये तुम मनुष्य नहीं, केवल पत्थर (की भाँति निष्प्राण-निस्पन्द) हो। मानवता (अर्थात् मानवीय प्रकृत भावनाओं की अनुभूति) को नष्ट कर देने वाला (तथा कथित) ज्ञान, ज्ञान नहीं कोल्हू है (क्योंकि वह कोल्हू की भाँति मानवीय अनुभूतियों और अनुभूति-क्षमता को क्षार-क्षार कर देता है)।

विशेष—१. प्रो० मेहता (और वस्तुतः लेखक प्रेमचन्द) की विचारधारा और व्यक्तित्व के अन्तः पक्ष का उद्घाटक यह स्थान दोनों ही दृष्टियों से महत्व-पूर्ण है।

२. तथाकथित आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, धर्म और ज्ञान पर करारे व्यंग्य हैं।

३. मानवतावाद और प्रकृत स्वाभाविक मानव-जीवन की तर्क सम्मत प्रतिष्ठा की गयी है।

मूल उद्धरण—

हाँ, हैं; लेकिन मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।

(परि० १८ : पृ० १६७)

[**शब्दार्थ**—उपरान्त=बाद में। उपक्रम=भूमिका। मात्र=केवल। लय=तल्लीनता, स्वयं को किसी चीज में समाहित कर देना।]

प्रसंग—चिड़ियाघर में, अचानक ही, प्रो० मेहता से भेंट होने पर प्रोफेसर ने श्रीमती गोविन्दी के सम्मुख अपनी मान्यताएँ और धारणाएँ प्रकट कीं, गोविन्दी को समझा-बुझाकर, घर लौट जाने की सलाह दी तथा पर्याप्त श्रद्धा-सम्मान भी प्रकट किया। इस पर गोविन्दी उनसे प्रभावित तो हुई किन्तु, तर्क रूप में, उसने प्रश्न रखा कि मैं केवल माता नहीं, नारी भी हूँ। इसी का समाधान प्रस्तुत करके तथा मातृत्व को नारीत्व से ऊँचा सिद्ध करते हुए प्रो० मेहता ने गोविन्दी से कहा—

व्याख्या—मैं मानता हूँ कि माता होने के साथ-साथ आप नारी भी हैं किन्तु मेरा विचार है कि हर नारी मूलतः पहले माता है। इसके बाद वह जो कुछ भी है, वह सब भी उसके इसी माता-रूप की भूमिका मात्र है। वस्तुतः, संसार से सबसे बड़ी साधना, तपस्या, त्याग और विजय नारी का मातृत्व ही है (क्योंकि ये सभी बातें सर्वाधिक रूप-मात्रा में इसी में सन्निहित होती हैं)। दूसरे शब्दों में, मातृत्व में नारी का जीवन, व्यक्तित्व और नारीत्व सभी कुछ लीन हो जाता है।

विशेष—१. यहाँ पर मातृत्व की महानता की प्रतिष्ठा की गयी है।

२. प्रो० मेहता (वस्तुतः प्रेमचन्द) की विचारधारा की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

३. लेखक की नारी भावना का एक सबल पक्ष—मातृत्व की महत्ता—यहाँ पर बड़े ओजस्वी रूप में मुखर हुआ है।

४. सूक्तिपरकता, सरलता, प्रवाहशीलता तथा छोटी वाक्यावली आदि इस स्थल की प्रमुख, भाषागत विशेषताएँ हैं।

मूल उद्धरण—

उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूँगा हो जाता है। वही सीमेन्ट, जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जायेगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीत के बख्तर को बेध डाला जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी। (परि० २१ : पृ० १८७–८८)

[**शब्दार्थ**—वाणी=कथन। निर्भीक=निडर। स्पष्टवादिता=साफ-साफ कहना। अनीत=अनीति करने वाले। बख्तर=कवच। सज्जित=सजकर, युक्त होकर।]

प्रसंग—होली के त्यौहार पर, गोबर और उसके साथियों द्वारा उपहासित होकर नोखेराम कुपित ही नहीं हुआ वरन् प्रतिशोध स्वरूप झूठी वसूली करने तक

पर उतर आया। मगर गोबर ने उसको साफ-२ सुनाकर धमकी का जवाब धमकी से दिया। इसी समय की उन दोनों की मनः स्थितियों पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने कहा है—

व्याख्या— गोबर का कथन सत्यता से परिपूर्ण था, अतएव शक्ति सम्पन्न या प्रभावोत्पादक बन गया था। प्रायः भयभीत व्यक्ति सत्य को प्रकट नहीं कर पाता। फस्वरूप उसका सत्य मौन बनकर रह जाता है। स्थिति एकदम सीमेन्ट वाली वन जाती है अर्थात् यदि सीमेन्ट को ईंट पर किया जाये तो वह ईंट को पत्थर की तरह दृढ़ बना देता है किन्तु मिट्टी पर किये जाने पर स्वयं भी मिट्टी की तरह शक्तिहीन बन जाता है। सत्य भी ऐसा ही सीमेन्ट है जो दृढ़तापूर्वक उद्घाटित किया जाये तो शक्तिसम्पन्न बन जाता है किन्तु, भयावस्था से, प्रकट न होने पर एकदम दुर्बल और असहाय बन कर रह जाता है। गोबर के निर्भीक कथन ने अनीति करने वाले नोखेराम को उसी प्रकार चोट पहुँचायी जैसे कि कोई शक्तिशाली शस्त्र (वाण) सैनिक के कवच को भेदकर सीधे मर्मस्थल पर चोट करता है। जिस अनीति के कवच से युक्त बनकर नोखेराम अपने को शक्तिसम्पन्न समझ बैठा था, उस पर गोबर के एक ही सच्चे कथन रूपी बाण की चोट पड़ने पर उसकी आत्मा तक झनझना उठी।

विशेष—१. गोबर और नोखेराम की चारित्रिक विशेषतायें यहाँ पर बड़े सांकेतिक किन्तु प्रभावशाली रूप में मुखर हुई हैं।

२. समकालीन ग्राम्य स्थिति के यथार्थ चित्रण में प्रेमचन्द जी अत्यन्त कुशल हैं। यह स्थल इसी का साक्षी है।

३. सूक्ति, संकेत तथा काव्य शैली का यहाँ पर सुन्दर प्रयोग है।

४. मिश्रित और सरल शब्दावली इस अंश की प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

मूल उद्धरण—

अब लल्लू उसके मन में आ बैठा था, शान्त, स्थिर, सुशील, सुहास। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनन्द था जिसमें प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। बाहर वाला लल्लू उसके भीतर वाले लल्लू का प्रतिबिम्ब मात्र था। प्रतिबिम्ब सामने न था, जो असत्य था, अस्थिर था। सत्य रूप तो उसके भीतर था, उसकी आशाओं और शुभेच्छाओं से सजीव। दूध की जगह वह उसे अपना रक्त पिला-पिला कर पाल रही थी। उसे अब वह बन्द कोठरी और वह दुर्गन्धमयी वायु और वह दोनों जून धुएँ में जलना, इन बातों का मानों ज्ञान ही न रहा। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई जैसे उसे शक्ति प्रदान करती रहती। जीते-जी जो उसके जीवन का भार था, मर कर उसके प्राणों में समा गया था। उसकी सारी ममता अन्दर जाकर बाहर से उदासीन हो गई। (परि० २७ : पृ० २२९)

शब्दार्थ—सुहास=हँसी भरे। वेदनामय=दुःख भरा। प्रत्यक्ष=साकार। प्रतिबिम्ब=परछाई। अस्थिर=चंचल। जून=समय। स्मृति=याद। भार=बोझ। ममता=वात्सल्य।]

प्रसंग—"मूल से ज्यादा प्यारा ब्याज" वाले नियम के अनुकूल झुनिया को

पति से अधिक प्रिय अपना पुत्र लल्लू था जो अकाल में ही चल बसा था। फिर भी, झुनिया उसको भूल नहीं पायी थी और निरन्तर उसी की स्मृतियों में खोई रहती थी। झुनिया के इसी मातृत्व तथा वात्सल्य भरे मन की झाँकी को प्रदर्शित करते हुए एवम् पुत्र-शोक से व्यथित उसकी मनःस्थिति को स्पष्ट करते हुए लेखक ने कहा है—

व्याख्या—(इकलौते पुत्र की असामयिक मृत्यु के पश्चात्) अब तो पुत्र लल्लू (स्मृति के रूप में) झुनिया के मन में आ विराजा था, वह भी एकदम शान्त, स्थिर, सुशील और हँसमुख रूप में। वह उसी की स्मृति-जन्य कल्पनाओं में खोयी रहती जिसमें लल्लू एकदम साकार बना, अपने सुशील, हँसमुख रूप में उसकी कल्पनाओं में ही वह सुखानुभूति किया करती थी जिसको कभी-कभी यथार्थ की क्षणिक अनुभूति वेदना से पूरित भी कर देती थी। जीवन के यथार्थ से एकदम अलग बनी हुई झुनिया इस कल्पना-जगत में ही वेदना और आनन्द की मिश्रित अनुभूतियाँ किया करती। उसको महसूस होता था कि बाहर वाला लल्लू अन्तःस्थित लल्लू का ही प्रतिरूप है जो सामने न था, काल्पनिक और जड़मात्र भी था। उसको लगा करता था कि असली लल्लू आशाओं और इच्छाओं के अनुकूल रूप को ग्रहण किये, उसी (झुनिया) के अन्दर हृदयगत होकर) उपस्थित है जिसको वह दूध नहीं, स्वयं का रक्त पिला-पिलाकर पाल-पोस रही है। अपनी बन्द प्रायः कोठरी, उसकी दुर्गन्धभरी वायु और (खानादि बनाते समय) सुबह-शाम उसका धुयें में जलना-घिरे रहना अर्थात् वाह्य संसार के कष्टों का उसको भान ही नहीं होता था मानो लल्लू की हृदय स्थित स्मृति उसको निरन्तर सब कुछ सहन करते रहने का बल प्रदान करती रहती थी। जीते जी, गरीबी के कारण, जो पुत्र उनको भार प्रतीत हुआ करता था अब वही, स्मृति के रूप में, मानों उसके प्राणों में समा चुका था। फलतः, वह बाहरी दुनिया से विरक्त होकर मानो अपने हृदय में ही समाकर रह गयी थी। आशय यही है कि झुनिया अब पुत्र विषयक कल्पनाओं और स्मृतियों में ही खोयी रहती थी।

विशेष—१. यहाँ पर मातृत्व भाव से परिपूर्ण झुनिया के मातृ-हृदय का एकदम आदर्शपरक, यथार्थपूर्ण, मनोविज्ञान सम्मत तथा सूक्ष्म अंकन है जो लेखक की गहरी पकड़ का भी साक्षी है।

२. झुनिया के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

३. यह अश एकदम नारी-मनोविज्ञान सम्मत और लेखक की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक क्षमता का परिचायक है।

४. विश्लेषण और काव्यात्मक शैलियों का सुन्दर और प्रभावोत्पादक प्रयोग है।

५. मानवीकरण, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा तथा उदाहरण आदि अलंकारों का प्रयोग है।

६. संकेतात्मकता बड़े सबल रूप में प्रयुक्त हुई मिलती है।

७. सरल, सबल शब्दावली, हल्की-सार्थक काव्यात्मकता तथा सूत्रपरकता इस स्थल की प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

मूल उद्धरण —

जीवन की सार्थकता में, अपनों के लिये कठिन से कठिन त्याग में और स्वाधीन सेवा में जो उल्लास है, उसकी ज्योति एक-एक अंग पर चमकती रहती। बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होकर जैसे तालियाँ बजा-बजा कर खुश होता है, उसी का वह अनुभव कर रही थी; मानों उसके प्राणों में आनन्द का कोई सोता खुल गया हो। और मन स्वस्थ हो तो देह कैसे अस्वस्थ रहे। उस एक महीने में जैसे उसका काया-कल्प हो गया हो। उसके अंगों में अब शिथिलता नहीं, चपलता है, लचक है, सुकुमारता है। मुख पर पीलापन नहीं रहा, खून की गुलाबी चमक है। उसका यौवन जो बन्द कोठरी में पड़े-पड़े अपमान और कलह से कुण्ठित हो गया था, वह मानों ताजी हवा और प्रकाश पाकर लहलहा उठा है। अब उसे किसी बात पर क्रोध नहीं आता। बच्चे के जरा सा रोने पर जो वह झुंझला उठती थी, अब जैसे उसके धैर्य और प्रेम का अन्त ही न था। (परि० २७ : पृ० २३७-३८)

[शब्दार्थ—सार्थकता = सफलता। स्वाधीन = स्वतन्त्र। उल्लास = प्रसन्नता, आनन्द। ज्योति = प्रकाश। सोता = झरना। काया-कल्प = शरीर-परिवर्तन। शिथिलता = दुर्बलता। चपलता = चंचलता। सुकुमारता = कोमलता। कलह = झगड़ों। कुण्ठित = कुंठाग्रस्त। लहलहा = हरा-भरा, प्रफुल्लित। धैर्य = धीरज।]

प्रसंग—गोबर-झुनिया के इकलौते पुत्र लल्लू की असामयिक मृत्यु ने यदि झुनिया की मनोव्यथाएँ बढ़ायी थीं तो हड़ताल के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली बेरोजगारी ने उसको भौतिक या वाह्य स्तर पर व्यथित बना दिया था। समस्या का समाधान और अर्थ-संकट का सामना करने का उपचार भी झुनिया ने ही ढूँढा। वह था—घास काटने की मजूरी जिसने मात्र एक माह में ही झुनिया को आमूल बदल दिया। उसकी तत्कालीन मन:स्थितियों और प्रकृत प्रति-क्रियाओं का वर्णन करते हुए ही लेखक ने बताया है—

व्याख्या—नित्य प्रति, संगी-साथियों के साथ, घास काटने हेतु जाने और इस प्रकार स्वावलम्बी बन जाने से झुनिया को अपने जीवन की सफलता प्राप्ति की प्रतीति होने लगी। अब उसके एक-एक अंग-प्रत्यंग में वही अनुभूति (भाव) छलकी पड़ती थी जो अपनों के लिये कठिन से कठिन त्याग करने में और स्वतन्त्र होकर सेवा करने में प्रसन्नता के रूप में (अर्थात् त्याग और स्वावलम्बन की आनन्दानुभूतियाँ) मुखरित या व्यक्त हो जाया करती हैं। जिस प्रकार कोई बच्चा अपने ही पैरों से, बिना कोई अन्य सहारा लिये (अर्थात् एकदम स्वावलम्बी बनकर) खड़ा होने पर अपनी प्रसन्नता को ताली बजा-बजाकर प्रकट करता है, ठीक ऐसी ही मन:स्थिति इस समय झुनिया की थी उसको लगता था मानो (उसके हृदय में) आनन्द का कोई झरना प्रवाहित होने लगा है। निश्चयत: जब मन प्रसन्न था तो उसका प्रभाव, प्रसन्नता सूचक शारीरिक प्रतिक्रियाओं पर भी पड़ना स्वाभाविक था, पड़ा भी। प्रमाण ? उसके शरीर का पूर्णत: परिवर्तन यथा अंग-प्रत्यंगों में (पूर्वकालीन) दुर्बलता के स्थान पर चंचलता, लचक और कोमलता का आ जाना तथा (पूर्वकाल में) मुख पर व्याप्त पीलिया के स्थान पर रक्त की गुलाबवत् कान्ति आदि। अभी तक उस बन्द सी कोठरी में रहते हुए और बात-बेबात होने वाले पारस्परिक झगड़ों में जो उसके यौवन का अपमान होता था, अब मानो वही यौवन एक पुष्प की

भाँति, आजादी की हवा और स्वावलम्बन का ज्ञान रूपी प्रकाश पाकर प्रफुल्लित या विकसित-वर्धित होने लगा था। इसी के फलस्वरूप, (आनन्दातिरेक में खोयी रहने वाली) झुनिया को न तो (पूर्ववत्) बात-बेबात क्रोध आता था, न वह बच्चे के रो पड़ने जैसी साधारण सी बात पर झुंझलाती थी। अब तो मानो उसमें प्रेम भी असीम था और धैर्य भी।

विशेष—१. झुनिया की अन्तर्बाह्य स्थितियों का सूक्ष्म, मनोविज्ञान सम्मत और प्रभावोत्पादक चित्रण है।

२—७ पूर्ववत्।

८. सूक्तियों का सटीक समावेश है।

मूल उद्धरण –

जब हम अपने किसी प्रियजन पर अत्याचार करते हैं और जब विपत्ति आ पड़ने से हम में इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी तीव्र व्यथा का अनुभव करें तो उससे हमारी आत्मा में जागृति का उदय हो जाता है और हम उस बेजा व्यवहार का प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो जाते हैं। गोबर उसी प्रायश्चित के लिए व्याकुल हो रहा था। अब उसके जीवन का रूप बिल्कुल दूसरा होगा जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता। अब उसे ज्ञात हुआ कि सेवा करने का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है और वह इस अवसर को कभी न भूलेगा।

(परि० २७ : पृ० २३८)

[शब्दार्थ—तीव्र=तेज। व्यथा=दुखानुभूति। उदय=प्रकट। बेजा=गलत। मृदुता=कोमलता।]

प्रसंग—शहर में रहकर भी गोबर और झुनिया की मुसीबतें बढ़ती ही गईं। इधर, झुनिया ने पुत्रोत्पन्न किया और उधर मिल में हुए आन्दोलन में गोबर मरणासन्न रूप में घायल ही नहीं हुआ, नौकरी से भी निकाल दिया गया। इस संकट में, गोबर ने झुनिया का सच्चा पतिभक्ता रूप देखा और अपने क्रोध भरे असंगत कार्य-व्यवहार पर ग्लानि से भर उठा। उसकी इसी आत्मग्लानि भरी मन:स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक ने कहा है—

व्याख्या—क्रोधादि से भर कर, अपनी सामर्थ्य की आड़ में, हम कभी-कभी अपने प्रियजनों (*यथा पत्नी*) पर अत्याचार कर बैठते हैं। इसका भान हमें स्वय विपत्तिग्रस्त हो जाने की स्थिति में ही हुआ करता है। कारण? इसी स्थिति में अर्थात् स्वयं विपत्ति को भोग लेने पर हम म अत्याचारादि के तीव्र कष्टों को स्वयं अनुभव करने की भावना जागृत होती है मानो हमारी स्वयं की आत्मा जागृत हो जाती है। फलस्वरूप (अतीत में किये गये) अपने अत्याचार वाले असंगत व्यवहार पर हमें ग्लानि होने लगती है तथा हम, सच्चे मन से, उसका प्रायश्चित तक करने को उद्यत रहते हैं। गोबर की इस समय यही स्थिति थी। (उसका झुनिया को मारना पीटना अब, घायलावस्था में, झुनिया द्वारा सेवा किये जाने पर, गोबर को अपने पर शर्मिन्दा करने लगा था और नि:सन्देह वह इसका प्रायश्चित करने को भी तैयार था)। वह अनुभव करने लगा था कि अब वह बिल्कुल नया रूप अपनायेगा। जिसमें कठोरता नहीं वरन् नम्रता तथा अभिमान नहीं वरन् उदारता को ग्रहण करेगा। (झुनिया द्वारा की गयी अनथक-निष्काम सेवा को भोग) अब गोबर समझ पाया था कि जीवन में,

इस प्रकार किसी की सेवा करने का अवसर बड़े भाग्य से मिलता है और वह इसको आजीवन नहीं भूलेगा।

विशेष—१. गोबर के चरित्र-विकास (और परिवर्तन) की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. पुरुष, विशेषतः पति-मनोविज्ञान से परिपूर्ण यह स्थल एकदम यथार्थ-परक और कम से कम भारतीय परिवेश में, एकदम सटीक है।

३. यहाँ पर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतिष्ठा है।

४. सूक्तिपरकता, आदर्शपरकता तथा मानव-मन का चित्रण कौशल इस स्थल की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं।

५. उदाहरण-लक्षण शैली है।

मूल उद्धरण—

उनकी निर्जीव, निराश, आहत आत्मा सान्त्वना के लिये विकल हो रही थी, सच्ची स्नेह में डूबी सान्त्वना के लिये उस रोगी की भाँति जो जीवन-सूत्र क्षीण हो जाने पर भी वैद्य के मुख की ओर आशा भरी आँखों से ताक रहा हो। वही गोविन्दी जिस पर उन्होंने हमेशा जुल्म किया, जिसका हमेशा अपमान किया, जिससे हमेश बेवफाई की, जिसे सदैव जीवन का भार समझा, जिसकी मृत्यु की सदैव कामना करते रहे, वही इस समय जैसे अंचल में आशीर्वाद और मंगल और अभय लिये उन पर वार रही थी, जैसे उन चरणों में ही उनके जीवन का स्वर्ग हो, जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर ही उनकी प्राणहीन धमनियों में फिर रक्त का संचार कर देगी। मन की इस दुर्बल दशा में, घोर विपत्ति में, मानो वह उन्हें कण्ठ से लगा लेने के लिये खड़ी थी। नौका पर बैठे हुये जल-विहार करते समय हम जिन चट्टानों को घातक समझते हैं और चाहते हैं कि कोई इन्हें खोद कर फेंक देता, उन्हीं से, नौका टूट जाने पर, हम चिपट जाते हैं। (परि० २८ : पृ० २४३)

[**शब्दार्थ**—निर्जीव=मृतप्रायः। आहत=चोट खायी हुयी। सान्त्वना= सहानुभूति। विकल=व्याकुल। स्नेह=प्रेम। बेवफाई=घृणा, उपेक्षा। कामना= इच्छा। अंचल=पल्लू। मंगल=कल्याण। अभय=निडरता। वार=न्योछावर। धमनियों=नसों। घातक=चोट करने वाली।]

प्रसंग—व्यापार में आर्थिक और प्रेम में (मालती से) हार्दिक या मानसिक चोट खाकर मि० चन्द्रप्रकाश खन्ना व्यथित हो उठे थे। ऐसे में, दिन-रात के साथियों से भी उपेक्षा मिली तो व्यथा-भार और अधिक बढ़ गया। ऐसे में, उन्हें एकमात्र सहारा दिखा-अपनी पत्नी गोविन्दी में जिसकी उन्होंने लम्बे समय तक उपेक्षा की थी। वे, मानों प्रायश्चित सा करते हुये और आत्मग्लानि से भरे हुये उसके चरणों पर गिरकर रो पड़े। उनकी इन्हीं क्षणों की मनःस्थिति को प्रस्तुत करते हुये प्रेमचन्द जी कहते हैं—

व्याख्या—इस समय, मि० खन्ना की आत्मा (मिल में हुये अत्यधिक आर्थिक नुकसान की चोट खा जाने के फलस्वरूप एकदम मृतप्राय, निराशाग्रस्त और चोट खायी हुई थी। वह व्याकुल बनी हुई थी किसी की प्रेम भरी सच्ची सहानुभूति को पाने के लिये। उनकी स्थिति एक ऐसे रोगी के समान थी जो मरणासन्न अवस्था में होकर भी, याचना भरी दृष्टि से चिकित्सक की ओर देख रहा हो, इस आशा के साथ

कि वह उसके प्राण बचा लेगा, उसको जीवन-दान दे देगा। उसको प्रतीत हो रहा था कि जिस गोविन्दी पर उन्होंने सदा अत्याचार किये थे, जिसको अपमानित किया था, जिसकी निरन्तर उपेक्षा की थी, जिसे अपने जीवन का बोझ मानते रहे थे, यहाँ तक कि जिसकी मृत्यु तक की कामना वे सदा करते रहे थे, वही गोविन्दी इस समय अपने आंचल में आशीर्वाद कल्याण और निडरता भरे हुये उन पर न्योछावर कर रही है! उनको लगा कि गोविन्दी के चरणों (के आश्रय) में ही उनका जीवन स्वर्ग (तथा उसमें प्राप्त होने वाली सारी सुख) है तथा उनके दुर्भाग्य भरे मस्तक पर अपना वरदहस्त रखकर वह गोविन्दी ही उनके निष्प्राण बने शरीर को पुनः सजीव और सक्रिय बना देगी। अत्यधिक विपत्ति और दुर्बलता से भरी उस दशा के क्षणों में गोविन्दी मानो उन्हें कंठ से लगाने के लिये उद्यत खड़ी थी। किसी नौका पर बैठकर जल-विहार करते समय जिन चट्टानों को हम मारक समझ बैठते हैं और झुंझलाकर सोचने लगते हैं कि कोई इन (विहार मे बाधा बनी) चट्टानों को खोद कर फैंक दे, नौका के टूट जाने और फलस्वरूप प्राणघातक संकट में फँसकर हम (चट्टानों का) सहारा लेने के लिये उन्हीं से चिपट जाते हैं। इसी प्रकार व्यापार-नौका के टूट-फूट जाने पर मि० खन्ना भी मारक मानी जाने वाली गोविन्दी रूपी चट्टान का आश्रय ले रहे थे।

विशेष – १. मि० खन्ना और गोविन्दी दोनों के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल द्रष्टव्य है।

२. यहाँ पर मि० खन्ना की मनोदशा का अत्यन्त सूक्ष्म, प्रसंगानुकूल, स्वाभाविक, यथार्थपरक तथा मनोविज्ञान सम्मत विश्लेषण है जो लेखक की गहन सूक्ष्म विश्लेषण-कला का भी साक्षी है।

३. विश्लेषण, वर्णन और आलंकारिक शैलियों का समान्वित रूप में प्रयोग है।

मूल उद्धरण—

सिल्लो निःसज्ञ सी भूमि की ओर ताक रही थी। धरती क्यों नहीं फट जाती कि वह उसमें समा जाय। इतना पमान! उसने अपने इतने ही जीवन में बहुत अपमान सहा था, बहुत दुर्दशा देखी थी, लेकिन आज यह फांस जिस तरह उसके अन्तःकरण में चुभ गई, वैसी कभी कोई बात न चुभी थी। गुड़ घर के अन्दर मटकों में बन्द रखा हो तो कितना ही मूसलाधार पानी बरसे, कोई हानि नहीं होती, पर जिस वक्त वह धूप में सूखने के लिये बाहर फैलाया गया हो, उस वक्त तो पानी का एक छींटा भी उसका सर्वनाश कर देगा। सिलिया के अन्तःकरण की सारी कोमल भावनाएँ इस वक्त मुँह खोले बैठी हुई थीं कि अमृत-वर्षा होगी। बरसा क्या, अमृत के बदले विष, और सिलिया के रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आयीं। घर में उपवास करके सो रहना और बात है, लेकिन पंगत से उठा दिया जाना तो डूब मरने ही की बात है। सिलिया को यहाँ एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया, जैसे कोई उसका गला दबाये हुये हो। वह कुछ न पूछ सकी। सोना के मन में क्या है, यह वह भाँप रही थी। वह बाँबी में बैठा हुआ साँप कहीं बाहर न निकल आये, इसके पहले ही वह वहाँ से भाग जाना चाहती थी। कैसे भागे, क्या बहाना करे? उसके प्राण क्यों नहीं निकल जाते! (परि० २६ : पृ० २५१)

[शब्दार्थ—निःसंज्ञ = निश्चेष्ट। फाँस = काँटा। अन्तःकरण = हृदय। दंश = काटना। लहरें = मूर्च्छना रूपी भावनायें। उपवास = व्रत। बाँबी = बिल।]

प्रसंग—जाति की निर्धन चमारी सिल्लो ब्राह्मण मातादीन की रखैल रही थी तो धनिया-होरी की पुत्री सोना की सहेली भी थी। सोना को उसकी ससुराल में सुखी होने की बात सुनकर तथा उससे भी अधिक मातादीन की अपने प्रति पुनः उदार हो जाने के शुभ समाचार से प्रिय सहेली सोना को परिचित कराने के उद्देश्य से वह आधी रात में ही सोना की ससुराल जा पहुँची मगर सोना से अपेक्षित अपनत्व भाव न पाकर व्यथित और क्रोधित हो उठी। सिलिया की इन्हीं क्षणों की मनःस्थिति का वर्णन करते हुये लेखक ने बताया है—

व्याख्या—अवाक् और एकदम निश्चल सी बनी हुई सिल्लो निगाहें झुकाये हुये भूमि की ओर ही देखे जा रही थी और मन ही मन में कल्पना कर रही थी कि भूमि फट जाये तो वह उसी में समाकर अपना जीवन समाप्त कर दे। कारण ? प्रिय सहेली सोना द्वारा की गयी उसकी उपेक्षा जो एकदम असह्य अपमान था। यूँ सिलिया ने जीवन में बहुत अपमान सहा था और दुर्दशा भी भोगी थी किन्तु इस समय तो सोना द्वारा किया गया अपमान उसके हृदय में फाँस की भाँति गड़ कर चुभ रहा था। इतनी चुभन पहले किसी भी अपमान के होने पर नहीं हुई थी। गुड़ यदि घर के अन्दर मटकों में भरा हुआ सुरक्षित रखा हो तो मूसलाधार वर्षा होने पर भी उसके पिघल कर नष्ट हो जाने का भय नहीं होता जबकि खुले में, सुखाने हेतु, फैलाया हुआ गुड़ तो पानी की बूँद मात्र पड़ जाने पर ही नष्ट हो जाता है। सिलिया की मन:स्थिति भी इस समय एकदम यही थी। प्रमाण ? अब तक उसने अपने दु.ख-गुड को हृदय-मटके में छिपाकर रखा हुआ था, इसलिये दूसरों से हुये अपमानों की मूसलाधार वर्षा होने के क्षणों में भी वह विचलित या चिन्तित नहीं होती थी किन्तु आज तो प्रिय सोना की उपेक्षा ने मानो पानी की बूँद का काम कर के उसके हृदय-स्थित गुड (प्रेम भाव) को गला कर नष्टप्रायः ही कर दिया था। यहाँ आने पर सिलिया समझती थी कि हृदय की सारी बातें वह सोना के सम्मुख स्पष्ट करेगी और सोना भी प्रेम भरी बातों की अमृत-वर्षा करेगी किन्तु वर्षा क्या हुई ? अमृततुल्य मीठी वाणी की नहीं, विष भरी बातों की जिनका विष सिलिया के रोम-रोम में व्याप्त हो गया था। उसके मन में भाव लहरें उसी भाँति उठने लगी जैसे कि सर्प दंश से पीड़ित व्यक्ति का तन मूर्च्छना की लहरों से झूमने लगता है। अपने घर में व्रत कर के भूखा सो जाना और बात है तथा सार्वजनिक रूप से भोजन करने वालों की पंगत से उठा दिया जाना और। पहली स्थिति एकदम वैयक्तिक होती है जबकि दूसरी स्थिति एकदम अपमान भरी जो स्वाभिमानी के तो शरम से डूब मरने की बात हो जाती है। सिलिया की इस समय यही (दूसरी) स्थिति थी। अपमान-बोध से व्यथित सिलिया के लिये अब सोना के यहाँ पर एक पल भी ठहरना असहनीय था। उसे लगने लगा कि मानो कोई उसका गला दबा रहा है। फलतः वह सोना से कुछ भी नहीं पूछ सकी। क्योंकि वह सोना के मन की यथार्थ स्थिति को समझ चुकी थी। इससे पहले कि सोना के हृदय रूपी बिल में छिपा शंका या वैमनस्य का सर्प प्रकट हो, सिलिया वहाँ से दूर चली जाना चाहती थी मगर भाग जाने का बहाना नहीं जुट पा रहा था। बस यही सोच रही थी कि वह मर जाये तो इस अपमान-यंत्रणा से छूट सकेगी।

विशेष—१. सिलिया के चरित्र का आंतरिक पक्ष यहाँ बड़े सशक्त रूप में वर्णित है।

२. नारी-मन के चित्रण से परिपूर्ण यह स्थल एकदम मनोविज्ञान सम्मत है।

३. दृष्टान्त और उपमादि लेखक के ग्राम्य जीवन से निकट के परिचय के साथी हैं।

४. यहाँ पर वर्णन, विश्लेषण और काव्य शैलियों का सुन्दर समन्वय है।

५. यहां पर मुहावरों और दृष्टान्त तथा उदाहरणों का सशक्त प्रयोग है।

मूल उद्धरण :—

अज्ञान की भाँति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजे और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिये मुश्किल हो जाता है।
(परि० ३० : पृ० २५७)

शब्दार्थ—निष्कपट = छलरहित। सुनहले स्वप्न = आशावादी यथार्थ। अमानुषीय = अमानवीय निरीहता = विवशता। दुर्बोध = मुश्किल। अगम्य = जिस तक पहुँचना मुश्किल हो दुर्बोध मुश्किल से समय में आने वाली। अप्राकृतिक = अस्वाभाविक।]

प्रसंग—किसी समय, प्रो० मेहता, मालती के साथ, होरी के गाँव में गये। मालती तो अन्दर औरतों से बातें करने में उलझ गयी और प्रो० मेहता, बाहर पुरुषों में, किसानों द्वारा खेला जा रहा कुश्ती का खेल देखने लगे। ग्रामीणों से सहानुभूति रखने वाले प्रो० मेहता के मन में अचानक ही एक प्रश्न उठा कि सुशिक्षित कहलाने वाले शहरी जन इन ग्रामीणों के साथ कठोरता भरा व्यवहार क्यों करते हैं? इसी प्रश्न का मूल कारण खोजते हुये, वे सोचने लगे—

व्याख्या—अज्ञान की तरह ज्ञान भी एकदम सरल, छलहीन तथा सुन्दर सुखद कल्पनाएँ करने वाला होता है। वह इतना अधिक मानवता प्रेमी होता है कि इसके विपरीत किये गये व्यवहार को एकदम अमानवीय (और फलतः त्याज्य) मान बैठता है। आदर्श भरी कल्पनाओं में खोया हुआ उसका मानस जीवन के कड़वे यथार्थ को जान या समझ नहीं पाता। भेड़िया कभी भी भेड़ की निरीहता पर दया नहीं करता वरन् अपने स्वभावानुकूल, प्रतिक्रिया स्वरूप, हिंसा का ही प्रदर्शन करता है। इस कटु सत्य को वह समझ नहीं पाता या अनदेखा कर देता है। कारण यह है कि वह तो, जीवन-यथार्थ को भूल, अपने कल्पना के आदर्श भरे लोक में ही विचरण करता रहता है, उसी में खोया रहता है और उसी में मग्न बना रहता है। फलतः, उसके लिये इस बात पर सोच-विचार करना मुश्किल हो जाता है कि जीवन के यथार्थ को जानना-समझना तथा तदानुकूल व्यवहार करना कितना अधिक मुश्किल है, उस तक पहुँचना कितना मुश्किल है और उसका पालन करना कितना अधिक अप्राकृतिक है। आशय यही है कि नगर का सुशिक्षित जन भेड़िये वाली प्रवृत्ति का होता है जो अज्ञान में रमे ग्राम्य जन रूपी भेड़ों की निरीहता को देख पसीजता नहीं वरन् उनके साथ हिंसा भरा, निर्दयी व्यवहार करता है।

विशेष—१. यहाँ पर नगर जनों की अत्याचारी प्रवृत्ति तथा ग्राम्य जनों की निरीहता भरी स्थिति का युगानुरूप अंकन है। अतएव देशकाल की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. प्रथम वाक्य एक प्रभावशाली सूक्ति है।

३. नगर जनों पर करारा व्यंग्य किया गया है।

मूल उद्धरण :—

वह यह जानते थे, जिसे सच्चा प्रेम कह सकते हैं, केवल एक बन्धन में बंध जाने के बाद ही पैदा हो सकता है। इसके पहले जो प्रेम होता है, वह तो रूप की आसक्ति मात्र है जिसका कोई टिकाव नहीं, मगर इसके पहले यह निश्चय तो कर लेना ही था कि जो पत्थर साहचर्य के खराद पर चढ़ेगा, उसमें खरादे जाने की क्षमता है भी या नहीं। सभी पत्थर तो खराद पर चढ़कर सुन्दर मूर्तियाँ नहीं बन जाते। इतने दिनों में मालती ने उनके हृदय के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी रश्मियाँ डाली थीं, पर अभी तक वे केन्द्रित होकर उस ज्वाला के रूप में न फूट पड़ी थीं जिससे उनका सारा अन्तःस्तल प्रज्ज्वलित हो जाता। आज मालती ने ग्रामीणों में मिलकर और सारे भेद-भावों को मिटाकर इन रश्मियों को मानों केन्द्रित कर दिया और आज पहली बार मेहता को मालती से एकात्मता का अनुभव हुआ।

(परि० ३० : पृ० २५८)

[**शब्दार्थ**—आसक्ति=मोहित हो जाना। टिकाव=स्थिरता। साहचर्य=साथ। खराद=धार पैदा करने का यन्त्र। क्षमता=शक्ति। रश्मियाँ=किरणें, प्रभाव। अन्तःस्तल=हृदय। प्रज्ज्वलित=प्रकाशित। एकात्मकता=एक हो जाने की अनुभूति।

प्रसंग—प्रो० मेहता मालती के साथ होरी के गाँव में गये थे। वहाँ पर, उन्होंने मालती को ग्राम्य महिलाओं में घुलते-मिलते ही नहीं, एक ग्राम्य बालक को गोद में लिये हुए भी देखा। निःसन्देह, प्रथम बार वे मालती से प्रभावित होकर उसके प्रति आकर्षित हो उठे। प्रो० मेहता की इन्हीं क्षणों की मनःस्थिति को स्पष्ट करते हुए लेखक ने बताया है :—

व्याख्या—प्रो० मेहता जानते (और मानते) थे कि सच्चा प्रेम केवल विवाह के बंधन में बंध जाने के बाद ही उत्पन्न हो सकता है। इससे और विवाह-पूर्व प्रेम केवल आसक्ति मात्र होती है—एकदम अल्पकालीन, क्षणिक मात्र। फिर भी, विवाह-बंधन में बंधने से पूर्व, वे इतना निश्चय कर लेना अवश्य चाहते थे कि जिस पत्थर (मालती) को जीवन-साथी बनाने के लिये जुटाना है, वह इस योग्य है भी कि उसकी सुन्दर प्रतिमा बनायी जा सके। आशय यही है कि जिस प्रकार कोई कुशल शिल्पी मूर्ति निर्माण करने से पहले पत्थर को खराद पर चढ़ाकर उसकी क्षमता की जांच करता है, उसी भाँति प्रो० मेहता भी विवाह-सम्बन्ध बनाने से पूर्व मालती की (जीवनसाथी के रूप में) जाँच-पड़ताल भली-भाँति कर लेना चाहते थे। जिस प्रकार हर एक पत्थर से सुन्दर मूर्ति नहीं बनायी जा सकती है, उसी प्रकार हर एक नारी को भी जीवन-संगिनी नहीं बनाया जा सकता है। यूँ पिछले लम्बे समय में मालती ने उनके हृदय के अलग-अलग भागों को प्रभावित किया था किन्तु समग्रतः इस रूप-

मात्रा में नहीं कि उनका हृदय पूर्णतया उसके प्रभाव से प्रभावित और प्रभासित हो सका हो। मालती ने ग्रामीणों में मिलकर और सारे वाह्य भेदभावों को समाप्त करके मानो आज अपने प्रभाव को समग्रतः केन्द्रीभूत कर दिया था। फलतः, आज, पहली बार, प्रो० मेहता को अनुभव हुआ कि मालती और वे एकदम अभिन्न या एक हैं।

विशेष—१. प्रो० मेहता और मालती के चरित्रांकन की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. परोक्षतः प्रो० मेहता के माध्यम से मानो स्वयं लेखक ने ही अपनी स्थिति और विचारों को यहाँ पर प्रकट किया है। अतएव मेहता के साथ-साथ लेखक के वैयक्तिक जीवन (विशेषतः द्वितीय विवाह-प्रकरण) तथा विचारधारा का प्रकटीकरण भी यहाँ पर हुआ मिलता है।

३. यहाँ पर दाम्पत्य जीवन की परम्परागत भारतीय विचारधारा की प्रतिष्ठा की गयी है।

४. सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

मूल उद्धरण :—V. V. Imp.

तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आंखों से देखा, कभी प्रेम की आंखों से नहीं। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुन्दर बनाने वाली चीज है, प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है, मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और न जाने क्या-क्या समझकर मुझसे हमेशा दूर भागते रहे, नहीं, मैं जो कुछ कहना चाहती हूं, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों स्थिर और चंचल हूं, इसलिये कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे अस्थिर और अचंचल बनाता; अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्मसमर्पण किया होता जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते। (परि० ३० : पृ० २५९)

[शब्दार्थ—सदैव = सदा। अवगुण = दोष। अस्थिर = ढुल-मुल। अचचल = दृढ़, स्थिर। आत्मसमर्पण = अपने को अर्पित करना। आक्षेप = दोषारोपण।]

प्रसंग—होरी के गाँव के समीपस्थ नदी पर प्रो० मेहता और मालती नौका-विहार के लिये गये। नौका (वस्तुतः झाऊ का तख्ता जो स्वयं प्रोफेसर ने तैयार किया था) पर विहार करते समय, बातों ही बातों में, मालती ने स्पष्टतः प्रेम समर्पण कर दिया तो प्रो० मेहता ने मालती के चंचल स्वभाव पर साफ-साफ आक्षेप किया। फलतः प्रत्युत्तरस्वरूप, अपनी चंचलता का मूल कारण भी प्रो० मेहता को ही ठहराते हुए, मालती ने उनसे कहा—

व्याख्या—तुमने मुझे कभी भी प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा। देखा है तो सदा परीक्षा करने की दृष्टि से। क्या तुम नहीं जानते कि हर एक नारी (और नारी ही होने के कारण मैं स्वयं भी) अपनी परीक्षा कराना नहीं, वरन् प्रेम भाव पाना चाहती है। कारण ? परीक्षा तो गुणों को भी अवगुण तथा सुन्दर को भी कुरूप बना देने वाली वस्तु होती है (क्योंकि उसमें भावना नहीं, तथ्यपरक मूल्यांकन अर्थात् गुण-अवगुण निर्धारण करने की प्रवृत्ति ही प्रधान रहती है)। दूसरी ओर

प्रेम (का भाव और तदाधारित दृष्टिकोण) अवगुण को गुण तथा कुरूप को सुरूप बनाने वाला होता है। उदाहरणस्वरूप मुझे ही लो। मैंने तुमसे प्रेम किया है। फलस्वरूप (प्रेमभाव के कारण) मैं तुममें किसी अवगुण की कल्पना तक नहीं कर सकती। दूसरी ओर, तुमने मुझे कसौटी पर कसा और मुझे चंचलादि न जाने क्या क्या मानकर हमेशा मुझसे दूर ही बने रहे। मुझे रोको मत, अपनी बात साफ-२ कह लेने दो। मैं मानती हूँ कि मैं स्थिर और चचल हूँ परन्तु केवल इसलिये कि मुझे स्थिर और गंभीर बना देने वाला एकाग्र प्रेम भाव नहीं मिला विशेषकर तुम से। यदि तुमने मेरे सम्मुख उसी प्रकार प्रेम भरा आत्मसमर्पण किया होता, जैसे कि मैंने तुम्हारे सम्मुख किया तो मैं अब तक (की तरह) अस्थिर और चंचल नहीं बनी रहती। फलतः तुम आज मुझ पर इस तरह का दोषारोपण नहीं कर पाते।

विशेष—१. मालती की स्पष्टवादिता, गहन चिन्तन-क्षमता तथा नारीयोचित अनन्य-पवित्र प्रेम-भाव आदि यहाँ पर बड़े प्रभावशाली रूप से प्रकट हुए हैं। अतएव उसके चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. प्रस्तुत कथन एकदम नारी-मनोविज्ञान सम्मत है, साथ ही साथ लेखक के तत्सम्बन्धी ज्ञान का भी।

३. छोटे-छोटे सूक्तिपरक वाक्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक और सारगभित हैं।

४. सरल शब्दावली, छोटे-सार्थक वाक्य तथा सपाट बयानी प्रमुख भाषागत गुण हैं।

मूल उद्धरण :—

नहीं मालती, इस विषय में मैं पूरा पशु हूं और उस पर लज्जित होने का कोई कारण नहीं देखता। आध्यात्मिक प्रेम और त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम, जिसमें आदमी अपने को मिटाकर केवल प्रेमिका के लिये जीता है, उसके आनन्द से आनन्दित होता है और उसके चरणों पर अपनी आत्मा समर्पण कर देता है, मेरे लिए निरर्थक शब्द है। मैंने पुस्तकों में ऐसी प्रेम कथायें पढ़ी हैं, जहां प्रेमी ने प्रेमिका के नए प्रेमियों के लिये अपनी जान दे दी है, मगर उस भावना को मैं श्रद्धा कह सकता हूं, सेवा कह सकता हूं, प्रेम कभी नहीं। प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूँख्वार शेर है जो अपने शिकार पर किसी की आंख भी नहीं पड़ने देता।

(परि० ३० : पृ० २६१)

शब्दार्थ—अध्यात्मिक=पारलौकिक। निरर्थक=व्यर्थ। खूंख्वार=हिंसक।]

प्रसंग—'प्रेम के क्षेत्र में एकाधिपत्य की भावना' अनिवार्य है। अपनी इसी धारणा को प्रकट करते हुए और प्रेम विषयक अपने मत का प्रतिपादन करते हुए प्रो० मेहता मालती से कहते हैं—

व्याख्या—(प्रेम या विवाह-सम्बन्ध की एक अनिवार्य शर्त है—प्रिया या पत्नी पर एकाधिपत्य बनाये रखना और न बना पाने पर प्राण ले लेने तक की सीमा तक हिंसक हो जाना)। नहीं, मालती ! प्रेमान्तर्गत एकाधिपत्य स्थापित किये

रखने के लिये मैं पशु की भाँति हिंसक बन सकता हूँ और ऐसा न बन जाना मैं (किसी के भी लिये) लज्जा की बात भी नहीं समझता। कारण ? आध्यात्मिक, त्यागमय और केवल प्रेमिका को ही सब कुछ मान कर लिया जाने वाला प्रेम और उसका कर्त्ता नायक निरन्तर उसी के लाभार्थ त्याग करता रहता है, आत्म-समर्पण करता रहता हैं किन्तु मेरे लिये ये सभी एकदम बेकार के शब्द हैं (क्योंकि मैं प्रेम के इन काल्पनिक, वायवी या आदर्शपरक रूपों को बिलकुल नहीं मानता)। नाना पुस्तकों में वर्णित ऐसी प्रेम-कथाओं को मैंने भी पढ़ा है जिसमें प्रेमी, अपनी प्रेमिका और उसके अन्य प्रेमियों की खुशी के लिये, अपने प्राण-त्याग कर देते हैं। मेरी दृष्टि में यह भावना श्रद्धा या सेवा की हो सकती है, प्रेम की कदापि नहीं। कारण ? प्रेम किसी सीधी-सादी और सब कुछ चुपचाप सह लेने वाली गाय की तरह नहीं होता। यह तो एक शेर की भाँति होता है जो अपने शिकार पर केवल एकाधिपत्य रखता है और किसी अन्य को उसे देखने तक नहीं देता, चाहे इसके लिये उसे मरना-मारना ही क्यों न पड़े ! आशय यही है कि प्रो० मेहता पत्नी या प्रेमिका के रूप में मालती पर एकाधिकार रखने के हिमायती हैं और इस रूप में किसी अन्य व्यक्ति का अपने दाम्पत्य जीवन में दखल किया जाना कदापि सहन नहीं कर सकते।

विशेष—१. प्रो० मेहता के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. प्रेम या विवाह विषयक प्रस्तुत विचारधारा एकदम परम्परागत भारतीय विचारधारा के अनुकूल और पाश्चात्य या वहाँ से उधार ली गयी तथाकथित आधुनिक विचारधारा के विपरीत है।

३. 'प्रेम···पड़ने देता' एक सशक्त सूक्ति है।

४. यहाँ पर मेहता की स्पष्टवादिता विशेष दृष्टव्य है।

५. भावसाम्य—"प्रेम-गली अति साँकरहि, तौं मैं इस न समाहि।"

—कबीर

मूल उद्धरण :—

अगर प्रेम खूँख्वार शेर है तो मैं उससे दूर ही रहूँगी। मैंने तो उसे गाय ही समझ रखा था। मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है। सन्देह का वहाँ जरा भी स्थान नहीं और हिंसा तो सन्देह का ही परिणाम है। वह सम्पूर्ण आत्म-समर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं, उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो। (परि० ० : २६१)

[**शब्दार्थ**—खूँख्वार = हिंसक। देह = शरीर। उपासक = भक्त।]

प्रसंग—प्रेम के विषय में मालती के विचार प्रो० मेहता के विचारों से एकदम विपरीत हैं जिनको प्रकट करते हुए मालती प्रो० मेहता से कहती है—

व्याख्या—हिंसापरक शेर की भाँति हिंसा पर उत्तर आने वाले प्रेम (और प्रेमी अथवा पति) से मैं दूर ही रहना चाहूँगी। कारण ? मेरी दृष्टि में प्रेम गाय की भाँति सरल, निश्छल और अटल विश्वास भरी पवित्र भावना का सम्बन्ध है जिसमें परस्पर सन्देह करने की तनिक भी गुंजाइश नहीं होती। दूसरी ओर सच्चा प्रेम सन्देह से कहीं अधिक ऊपर (विश्वास, अनन्य विश्वास) की स्थिति है। वह

शरीर की नहीं वरन् आत्मा की चीज है जिसमें सन्देह या उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले हिंसा-भाव को तनिक स्थान नहीं । प्रेम तो सम्पूर्ण रूप में प्रिया के सम्मुख किया गया) आत्मसमर्पण है । उसके पवित्र मन्दिर (क्षेत्र) में परीक्षक बन बनकर वरन् भक्त (पूर्ण आत्मसमर्पक) बनकर ही प्रवेश किया जा सकता हैं, तभी इच्छित वरदान प्राप्त किया जा सकता है ।

विशेष—१. मालती के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है ।

२. पुरुष का आत्मसमर्पण निश्छल और निःसन्देह प्रेमभाव, आत्मिक प्रेम-रूप आदि का प्रतिपादक यह स्थल नारीयोचित आदर्श प्रेम भावना का प्रतिपादक है ।

३. यहाँ पर सूक्तियों का सशक्त प्रयोग है ।

४. भावसाम्य—(i) प्रेम बलिदान है, आत्म त्याग है, ममत्व का विस्मरण है ।"

—भगवतीचरण वर्मा

(ii) प्रेम कभी दावा नहीं करता, अधिकार नहीं जमाता केवल देता है ।

—महात्मा गांधी

मूल उद्धरण :—V. V. Imp.

धन व ऐश्वर्य को तो वह केवल खिलौना समझती थी जिसे खेलकर लड़के तोड़-फोड़ डालते हैं । रूप में भी अब उसके लिये विलेष आकर्षण था, यद्यपि कुरुपता के लिये घृणा थी । उसको तो अब बुद्धि-शक्ति ही अपनी ओर झुका सकती थी जिसके आश्रय में उसमें आत्म-विश्वास जगे, अपने विकास की प्रेरणा मिले, अपने में शक्ति का संचार हो, अपने जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो । मेहता के बुद्धि-बल और तेजस्विता ने उसके ऊपर अपनी मुहर लगा दी और तब से वह अपना संस्कार करती चलीं आ रही थीं । जिस प्रेरक शक्ति की उसे जरूरत थी, वह मिल गयी थी और अज्ञात रूप से उसे गति और शक्ति दे रही थी । जीवन का नया आदर्श जो उसके सामने आ गया था, वह अपने को उसके समीप पहुंचाने की चेष्टा करती हुई और सफलता का अनुभव करती हुई उस दिन की कल्पना कर रही थी, जब वह और मेहता एकात्मक हो जायेंगे और वह कल्पना उसे और भी दृढ़ और निष्ठ बना रही थी ।

मगर आज जब मेहता ने उसकी आशाओं को दूर तक लाकर प्रेम का वह आदर्श उसके सामने रखा, जिसमें प्रेम को आत्मा और समर्पण के क्षेत्र से गिराकर भौतिक धरातल तक पहूंचा दिया गया था, जहां सन्देह और ईर्ष्या और भोग का राज्य है, तब उसकी परिष्कृत बुद्धि आहत हो उठी और मेहता से जो उसे श्रद्धा थी उसे एक धक्का सा लगा मानों कोई शिष्य अपने गुरू को कोई नीच कर्म करते देख ले । उसने देखा, मेहता बुद्धि-प्रखरता प्रेमत्व को पशुता की ओर खींच लिये जाती है और उसके देवत्व की ओर से आंखें बन्द किए लेती हैं, और यह देखकर उसका दिल बैठ गया । (परि० ३० : २६१-६२)

[शब्दार्थ—ऐश्वर्य=भौतिक सुख । आकर्षण=खिचाव । रूप=वाह्य सौन्दर्य । आश्रय=आधीनता । सार्थकता=सफलता । संस्कार=परिष्कार । तेजस्विता=कान्तिमय ओज । प्रेरक=प्रेरणादाता । एकात्मक=एक आत्मा

वाले। दृढ़=मजबूत। निष्ठ=विश्वासी। भौतिक=सांसारिक। परिष्कृत=स्वच्छ। आहत=घायल। प्रखरता=तेजी।]

प्रसंग—मालती मेहता से प्रेम करती रही थी। इसका मूल कारण था—मेहता में वे विशेषतायें होना जो मालती चाहती थी। नौका-विहार-काल में अपने प्रेम विषयक विचारों को प्रकट करके प्रो० मेहता ने मानो अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया था जो मालती की कल्पनाओं के एकदम विपरीत था। फलतः, मालती के विचार मेहता की ओर से बदल गये। मालती की इसी मनःस्थिति और तत्सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करते हुए लेखक ने बताया है—

व्याख्या—धन और उससे प्राप्त किये जाने वाले सांसारिक ऐश्वर्य मालती की दृष्टि में ऐसे खिलौने थे जिनको, खेलते या मन बहलाते हुए, बच्चे बाद में तोड़-फोड़ देते हैं। वह कुरूपता से घृणा करती थी किन्तु वाह्य शरीर-सौन्दर्य की ओर से भी (इस परिपक्व आयु में) आकृष्ट नहीं होती थी। उसको आकर्षित-प्रभावित कर सकते थे—बुद्धि और ज्ञान ताकि उनका अनुसरण करते हुए वह आत्मविश्वास-पूर्वक अपना भी अधिकाधिक बौद्धिक विकास कर सके तथा इसके लिये प्रेरणा पा सके। निःसन्देह, प्रो० मेहता पर यह बुद्धि-बल था, वह भी तेज से ओत-प्रोत, जिससे बहुत पहले ही मालती को डटकर प्रभावित भी कर लिया था। उसी समय से मालती अपने आप को सुधारती आ रही थी। मेहता के अद्‌भुत ज्ञान से उसने प्रेरणा ही नहीं ली थी, स्वयं को विकसित करने की क्षमता भी, जाने-अनजाने, प्राप्त की थी। इतना ही नहीं वरन्, प्रो० मेहता को ही अपने जीवन का आदर्श मानते हुए, वह अधिकाधिक उसके समीप पहुँचने का प्रयास भी निरन्तर करती रही थी। यहाँ तक कि अपने इन प्रयासों को सफल मानते हुए वह कल्पना करती रही थी कि एक दिन वह और मेहता (विवाहपाश में बन्धकर, पति-पत्नी के रूप में) एक हो जायेंगे—तन से और उससे भी अधिक मन से। यह सुखद कल्पना ही उसको अधिकाधिक दृढ़ता और विश्वास से भरती जा रही थी।

मगर आज, उसी मेहता ने (जो अब तक मालती के जीवन का एकमात्र आदर्श था) अपने प्रेम का जो रूप उसके सम्मुख प्रकट किया था, उसने मालती के मन को बेध डाला। मालती को लगा कि उसकी कामनाओं को द्वार तक लाकर मेहता ने एकदम धराशायी कर दिया है। कारण ? मेहता द्वारा प्रकट किये गये इस प्रेम का रूप एकदम साँसारिक (अर्थात् निम्नस्तर) का था जिसमें आत्मा और पूर्णसमर्पण का कोई नाम नहीं था वरन् यहां तो सामान्य साँसारिक प्रेम मात्र था, वह भी ऐसा जिसमें सन्देह, द्वेष और केवल दैहिक भोग की प्रधानता थी। यह देख कर मालती की परिष्कृत बुद्धि पर करारी चोट पड़ी। मेहता के प्रति उसके श्रद्धा भाव को वैसा ही धक्का सा लगा जैसाकि अपने श्रद्धेय गुरु द्वारा किये गये किसी निकृष्ट कर्म को देखकर उसके श्रद्धालु शिष्य को लगता है। मालती समझ गयी कि बुद्धि सम्पन्न होते पर भी प्रो० मेहता प्रेम को पशु स्तर पर ही स्वीकार करता है, प्रेम के देवत्वमय पवित्र रूप को तो वह देखता तक नहीं है। फलतः, मालती दुखी हो उठी।

विशेष—१. यहाँ पर मालती के मेहता-प्रेम और प्रतिक्रियात्मक उपेक्षा

भाव का एकदम मनोविज्ञान सम्मत, सूक्ष्म और गहन विश्लेषण किया गया है जो लेखक के मनोविश्लेषण-कौशल का साक्षी है।

२. मेहता और मालती दोनों के विकासशील तथा परिवर्तनोन्मुखी चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

३. मालती के चरित्र की गंभीरता, उच्चता और आदर्शपरकता यहाँ पर बड़े सशक्त रूप में मुखरित हुयी मिलती है।

४. यहाँ पर वर्णन-विश्लेषण शैली हैं।

मूल उद्धरण—

हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी, उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।

(परि० ३१: पृ० २६४–६५)

[**शब्दार्थ**—त्याग=बलिदान। हित=भलाई। प्रबल=शक्तिशाली। विद्रोह=विरोध। क्षुब्ध=व्यथित, क्रोधित। प्रतिहिंसा प्रतिशोध स्वरूप की गयी हिंसा।]

प्रसंग—पिता की इच्छा के विपरीत, रायसाहब के इकलौते पुत्र रुद्रपाल ने चुपचाप प्रेम-विवाह कर लिया था। इधर रायसाहब अपने पुत्र का विवाह जमींदार सूर्यप्रतापसिंह की पुत्री के साथ तय कर चुके थे जिसको पुत्र ने स्वीकार नहीं किया। फलतः रायसाहब भड़क उठे। उनकी इसी समय की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक ने टिप्पणी की है—

व्याख्या—रायसाहब सोच रहे थे—जीवन में हम जिन लोगों के भले के लिये अनेक प्रकार के त्याग किया करते हैं, बेशक उनसे (अपनत्व के कारण) बदले में वैसा ही त्याग किये जाने की कामना नहीं करते किन्तु फिर भी इतनी कामना अवश्य करते हैं कि उसके मन पर हमारे द्वारा किये गये त्याग का प्रभाव (मान) अवश्य रहे, चाहे यह प्रभाव उन लोगों के भले के लिये ही हो। (अत्यधिक अपनत्व भरे ममत्व के कारण) अपने माने जाने वाले लोगों के हित को हम अपना ही हित मान बैठते हैं। त्याग की मात्रा-वृद्धि के साथ-साथ यह प्रभाव-भावना (और स्वहित मान बैठना भी) बढ़ती ही जाती है। दूसरी ओर, जब दूसरी तरफ से (हमारी बात को न मानते हुए, हमारी किसी भी बात या कार्य का) विरोध किया जाता है तो हम क्रोधित हो जाते हैं। इस प्रकार, हमारा पूर्वकालीन त्याग ही मानो प्रत्युत्तर-स्वरूप क्रोधादि हिंसा का रूप धारण कर लेता है।

विशेष—१. मनोविज्ञानसम्मत प्रस्तुत दृष्टान एकदम यथार्थ और सूक्ति-परक है।

२. यहां पर रायसाहब के पितृ रूप की मन:स्थिति का सांकेतिक शैली में चित्रण है।

मूल उद्धरण—

और रायसाहब ने सुख का जो स्वर्ग बनाया था, उसे अपनी जिन्दगी में ही ध्वंस होते देख रहे थे और अब संसार से निराश होकर उनकी आत्मा अंतर्मुखी

होती जाती थी। अब तक अभिलाषाओं से जीवन के लिए प्रेरणा मिलती रहती थीं। उधर का रास्ता बन्द हो जाने पर उनका मन आप ही आप भक्ति की ओर झुका, जो अभिलाषाओं से कहीं बढ़कर सत्य था। (परि० ३१: पृ० २७०)

[**शब्दार्थ**—ध्वंस = नष्ट-भ्रष्ट। अन्तर्मुखी = हृदयगत या मनोगत। अभिलाषाओं = इच्छाओं।]

प्रसंग—पुत्र के प्रेम-विवाह, पुत्री के विवाह-विच्छेद और उन पति-पत्नी की भयंकर शत्रुता आदि घटनाओं ने रायबहादुर अमरपालसिंह को व्यथित ही नहीं, परिवर्तित भी कर दिया। उनकी इसी (परिवर्तित होती हुई) स्थिति का परिचय देते हुए लेखक ने बताया है—

व्याख्या—(अपने परिवार की ऐश्वर्यमयी पृष्ठभूमि पर) रायसाहब ने सुख प्राप्त करते रहने की सुखप्रद कल्पनायें कर-करके जो स्वर्ग बनाया था, उसको अब, अपने जीवन में ही नष्ट-भ्रष्ट होते हुये देख रहे थे (जैसे कि पुत्र द्वारा पिता की इच्छा का विरोध करते हुए प्रेम-विवाह किया जाना तथा इकलौती पुत्री का अपने पति को हंटरों से मार-मारकर जान तक से मार डालने का प्रयासादि)। इस स्थिति में रायसाहब का निराश होकर आत्मकेन्द्रित (और गुपचुप सा बने रहकर एकदम अकेला-सा) बन जाना स्वाभाविक ही था। अब तक तो सांसारिक सुखोपभोग की इच्छायें उनको आनन्द भरा जीवन जीते रहने के लिये प्रेरणा देती रही थीं। किन्तु अब, निराशा की घड़ियों में, वे भक्ति की ओर बढ़ने लगे जो सांसारिक-ऐषणाओं से कहीं बड़ा यथार्थ और स्वाभाविक सत्य था।

विशेष—१. रायसाहब के चरित्र की दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है।

२. 'गोदान' के अधिकांश पात्रों के चरित्र विकसनशील या परिवर्तनशील तथा आदर्शोन्मुखी हैं। यहाँ पर रायसाहब का चारित्रिक स्थिति इसी का प्रमाण है।

मूल उद्धरण—

यह कोई नया आविष्कार नहीं है कि संकटों में ही हमारी आत्मा को जागृति मिलती है। बुढ़ापे में कौन अपनी जवानी की भूलों पर दुःखी नहीं होता? काश, वह समय ज्ञान या शक्ति के संचय में लगाया होता, सुकृतियों का कोष भर लिया होता तो आज चित्त को कितनी शान्ति मिलती। वहीं उन्हें इसका वेदनामय अनुभव हुआ कि संसार में कोई अपना नहीं, कोई उनकी मौत पर आँसू बहाने वाला नहीं। (परि० ३२ : पृ० २७१)

[**शब्दार्थ**—आविष्कार = खोज। जागृति = सक्रियता। सचय = एकत्र करना। सुकृतियों = पुण्य कर्मों। कोष = खजाना। वेदनामय = दुःखमय।]

प्रसंग—मिर्जा खुर्शेद अपनी जवानी भर सांसारिक अय्याशियों में फँसे रहे थे और पैसे को इन्हीं प्रकार के कार्यों में पानी की तरह बहाते रहे थे। अब, अस्पताल में पड़कर, उनमें आत्मग्लानि और पश्चाताप का भाव जागा, अपनी कटुताव्यथा भी आस्था पर क्षोभ भी होने लगा। मिर्जा खुर्शेद की इसी स्थिति से परिचित कराते हुए लेखक ने बताया है—

व्याख्या—यह कोई नई खोज नहीं वरन् जीवन का परम सत्य है कि विपत्ति-काल में ही मनुष्य में आत्मबोध का उदय हुआ करता है। यही कारण है

कि प्रायः हर व्यक्ति अपनी वृद्धावस्था में आकर युवाकाल में की गई अपनी गलतियों पर पश्चाताप किया करता है। वह सोचा करता है कि यदि युवाकाल में उसने ज्ञान या शक्ति-सम्पन्नता प्राप्त कर ली होती, पुण्य कार्य करके अपने कर्म-कोष को भर लिया होता तो आज उसको कितनी अधिक मानसिक शान्ति प्राप्त होती। मिर्जा खुर्शेद की मनःस्थिति अब यही थी। अस्पताल में रहकर किये गये चिन्तन से उन्हें यह दुःख भरा अनुभव हुआ कि वे संसार में अकेले हैं क्योंकि उनका कोई भी सहायक नहीं है। यहाँ तक कि उनके मरने पर कोई दो आँसू भी नहीं बहायेगा

विशेष—१. यहाँ पर जीवन की यथार्थता को सूक्तिपरक शैली में बड़े समर्थ रूप में मुखर किया गया है।

२. आत्मग्लानि और निराशाभरी मनःस्थिति का बड़ा प्रभावशाली अंकन है।

मूल उद्धरण—

यह ध्यान न रहा कि यह मोह ही विनाश की जड़ है। प्रेम जैसी निर्मम वस्तु क्या भय से बाँधकर रखी जा सकती है? यह तो पूरा विश्वास चाहती है, पूरी स्वाधीनता चाहती है, पूरी जिम्मेदारी चाहती है। उसके पल्लवित होने की शक्ति उसके अन्दर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिये। वह कोई दीवार नहीं है, जिस पर ऊपर से ईंटें रखी जाती हैं। उसमें तो प्राण हैं, फैलने की असीम शक्ति है। (परि० ३३ : पृ० २७७)

[**शब्दार्थ**—विनाश = पतन। निर्मम = कठोर। स्वाधीनता = स्वतन्त्रता। पल्लवित = विकसित। असीम = अत्यधिक।]

प्रसंग—प्रो० मेहता, वस्तुतः, प्रेम के व्यावहारिक पक्ष से परिचित नहीं थे। इसी से मालती को समीप पाकर भी पूर्णतया और व्यवहार नहीं पा सके थे। उनकी इसी असफलता और उसके मूल कारण को स्पष्ट करते हुये लेखक ने बताया है—

व्याख्या—प्रो० मेहता (मालती पर एकाधिपत्य जमाने की जल्दी में) इस जीवन-सत्य को भूल गये कि (उन्हें मालती से प्रेम तो है और वह भी मोह की सीमा तक और) यह मोह-भाव ही विनाश का मूलाधार है, मूल कारण है। कारण यह है कि प्रेम जैसी (भावात्मक वस्तु को भय दिखाकर अधिकार में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि प्रेम (और उसका आलम्बन प्रिय) पूर्ण विश्वास तो चाहता ही है, वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा पूरा-पूरा उत्तरदायित्व भी चाहता है। वह बाहर से नहीं वरन् स्वयं अन्दर (अर्थात् हृदय) से ही विकसित हुआ करता है। उसको स्वतन्त्रता का प्रकाश और क्षेत्र आवश्यक है—एकदम एक वृक्ष की भाँति जिसका अंकुर और विकसन शक्ति गुप्त होती है किन्तु जिसको विकसित-वर्धित होने के लिये पूरी-पूरी स्वतन्त्रता, माली की देखभाल तथा प्रकाश, स्थानादि भी अनिवार्यतः चाहिये। प्रेम कोई ऐसी दीवार नहीं कि एक के ऊपर एक ईंट रखते चले जाओ और वह बन जाये। दूसरी ओर, प्रेम तो सजीव है जिसमें अपने आप में ही विकसित-वर्धित होने की पूर्ण क्षमता होती है।

विशेष—१. यहाँ पर मोह और प्रेम में अन्तर स्पष्ट करते हुये प्रेम की उच्च स्थिति को प्रतिष्ठित किया गया है।

२. इस गद्यांश में सूक्तियों (और सूक्ति शैली) का प्रभावशाली प्रयोग है।

३. दृष्टान्त अलंकार का सटीक प्रयोग है।

V. Imp. **मूल उद्धरण—**

मालती केवल रमणी नहीं है, माता है और ऐसी-वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग-अंग से मातापन फूटा पड़ता था मानों यही उसका यथार्थ रूप हो, यह हाव-भाव, यह शौक-सिंगार उसके मातापन के आवरण मात्र हो जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे। (परि० ३३ : पृ० २८०)

[शब्दार्थ—रमणी = रमण का साधन, नारी। मातापन = मातृत्व। संचय = एकत्र करना। यथार्थ = असली। हाव-भाव = आंगिक चेष्टायें, शृंगारिक अदायें। आवरण = परदा। विभूति = महान् पदार्थ।]

प्रसंग—मालती ने गोबर के पुत्र मंगल की अनथक सेवा करके प्राण-रक्षा ही नहीं की थी, उसको पूरा-पूरा वात्सल्य भी दिया था निःसन्देह, प्रो० मेहता मालती के इस मातृत्व भरे रूप को देखकर अभिभूत हो गये और सोचने लगे—

व्याख्या— चेचक के रोगी और माली, गोबर, के पुत्र मंगल की वात्सल्य भरी सेवा करने वाली मालती के इस एकदम नये रूप को देखकर प्रो० मेहता को लगने लगा कि) मालती केवल मन बहलाव करने वाली उपभोग्या नारी नहीं वरन् माता है, वह भी सामान्य स्तर की नहीं वरन् एकदम देवी, जीवनदाती माता जो (अपने पुत्र को ही नहीं वरन्) दूसरे (गोबर) के पुत्र को भी अपना ही पुत्र मान सकती है। लगता है कि मालती ने सदा ही मातृत्व भाव का संचय किया था और अब उसी को वह खुले हाथों लुटा रही है। उसको (मंगल के साथ) देखकर लगता है कि उसके एक-एक अंग-प्रत्यंग से मातृत्व भाव प्रकट होकर फूटा पड़ रहा है, मानो मालती का असली रूप यह माता वाला रूप ही है। साज-शृंगार और शृंगारिक प्रतीत होने वाली मालती की चेष्टायें तो मानो इस मातृत्व भाव को ढके रखने वाले परदे हैं जो मातृत्व को सुरक्षित रखने में सहायक मात्र हैं। आशय यही है कि मालती में मूलतः माता रूप ही प्रधान है, शेष सब बाहरी दिखावा मात्र है।

विशेष—१ मालती के उच्च चरित्र का प्रतिष्ठापक यह स्थल उसके चरित्र की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

२. मालती के माध्यम से यहाँ पर लेखक ने, भारतीय परम्परा के अनुकूल, नारी के आदर्श रूप (मातृत्व) की प्रतिष्ठा तथा प्रशंसा की है।

३. प्रो० मेहता के माध्यम से मानो यहाँ स्वयं लेखक ने ही अपने मातृत्व विषयक उद्‌गारों को प्रकट करने के साथ-साथ उसके प्रति आदर भाव भी प्रदर्शित किया है।

V. V. Imp **मूल उद्धरण—**

मालती नारीत्व के उस ऊँचे आदर्श पर पहुंच गई थी जहाँ वह प्रकाश के एक नक्षत्र सी नजर आती थी। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्लभ हो गयी थी और दुर्लभता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग का मन्त्र

है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा और भी स्फूर्तिमय बना दिया। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार कराना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है जिसमें अहम्मन्यता का ध्वंस हो जाता है। (परि० ३३ : पृ० २८२)

[शब्दार्थ—नक्षत्र=तारा। दुर्लभ=जिसका प्राप्त होना मुश्किल हो। मनस्वी=मन पर विजय प्राप्त कर लेने वाला। उद्योग=कर्म। स्फूर्तिमय=चेतन, सक्रिय। मान=नखरा। इष्ट=प्राप्य, इच्छित। अहम्मन्यता=अहम्, अभिमान का भाव। ध्वंस=नष्ट।]

प्रसंग=मालती के तेजी से परिवर्तित और उन्नत होते हुये चरित्र से अभिभूत होकर, प्रो० मेहता, अपने बिस्तर पर लेटे हुए विचार करते हैं और सोचते हैं—

व्याख्या—(त्याग पर-सेवा, करुणा और सबसे अधिक मातृत्व भाव की निश्छल उच्च सीमा आदि नाना चारित्रिक गुणों को प्रकट करके, कम से कम प्रो० मेहता की दृष्टि में) मालती नारीत्व का उच्च और आदर्शपरक का स्थान प्राप्त कर लिया था। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह सुदूर आकाश पर स्थित तथा प्रकाश से भरे नक्षत्र के समान प्रतीत होती थी (अपने से दूर जिस तक पहुँच पाना सामान्य बात नहीं)। फलतः अब वह (मेहता जैसे व्यक्ति के लिये समान स्तर की होकर) प्रेम करने की नहीं वरन् (उच्च, सुदूर किन्तु आदरणीय बन जाने के कारण) श्रद्धास्पद चीज बन गई थी साथ ही साथ, मुश्किल से उपलब्ध होने वाली भी (कम से कम प्रो० मेहता के लिये) यह भी सत्य है कि मनस्वी व्यक्तियों के लिये यह दुर्लभता ही चुनौती का कार्य करती है और उनको निरन्तर सुगम बनाने के प्रयत्नों में संलग्न किये रखती है। निःसन्देह प्रो० मेहता भी ऐसे मनस्वी व्यक्ति हैं। अब तक वे (मालती के) प्रेम में जिस सुख उपलब्ध करने की कल्पना करते रहे थे, उसको उनके (मालती के प्रति) इस श्रद्धा भाव ने और भी अधिक गहन तथा कर्मठता भरा हुआ बना दिया था (अर्थात् अब वे मालती को प्राप्त करने के लिये पहले से कहीं अधिक लालायित और प्रत्यनशील हो गये थे। निःसन्देह, प्रेम मान का भी कुछ न कुछ अवसर रहता है और अपने महत्व की गरिमा भी रहनी है जबकि दूसरी ओर, श्रद्धा की स्थिति तो अपने आप को मिटाकर श्रद्धेय पूर्णतया समर्पित हो जाने को ही श्रद्धालु का जीवन-लक्ष्य बना देती है। प्रेम, प्रिय पर अधिकाधिक अधिकार रखने की भावना को बढ़ाता है तथा समर्पण से साथ-साथ प्रिय द्वारा अर्पित किया जाना भी चाहता है जबकि श्रद्धा चरमानन्द ही आत्म-समर्पण कर देने में मिलता है। फलस्वरूप, श्रद्धा भाव में श्रद्धालु का सारा अहम् भाव समाप्त हो जाता है। (प्रो० मेहता की भी इस समय यही स्थिति थी क्योंकि मालती के प्रति वे प्रेम-भाव से भी आगे बढ़कर श्रद्धा का भाव रखने लगे थे)।

विशेष—१. यहाँ पर मालती और प्रो० मेहता के उन्नयन की ओर अग्रसर होने वाले चरित्र के उच्च रूप का भव्य चित्रण है।

२. श्रद्धा और प्रेम का मनोविज्ञान तथा साहित्य-सम्मत तुलनात्मक विवेचन है जो लेखक के मनोविज्ञान-ज्ञान का भी साक्षी है।

३. सूक्तियों का अत्यन्त सार्थक और विचारोत्तेजक रूप में प्रयोग मिलता है।

४. विवेचन-विश्लेषण तथा वर्णन शैली है।

V. V. Imp. मूल उद्धरण—

जब तक ममत्व नहीं है, अपनत्व नहीं है, तब तक जीवन का मोह नहीं है, स्वार्थ का जोर नहीं है। जिस दिन मन मोह में आसक्त हुआ और हम बन्धन में पड़े, उस क्षण हमारा मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जायेगा, नई-नई जिम्मेवारियाँ आ जायेंगी और हमारी सारी शक्ति उन्हीं को पूरा करने में लगने लगेगी। तुम्हारे जैसे विचारवान, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्दी नहीं करना चाहती। अभी तक तुम्हारा जीवन यज्ञ था जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा स्थान था। मैं उसको नीचे की ओर न ले जाऊँगी। संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाये। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे तो सुनने वाले कहाँ से आयेंगे ? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बन्द कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जायेगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगी। अपने जीवन के साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो। (परि० ३३ : पृ० २८३–८४)

[शब्दार्थ—ममत्व = ममता। अपनत्व = अपनापन, अहम् = वृति। आसक्त = मोहित, लिप्त। कारागार - गृहस्थ रूपी बन्दीगृह। साधकों = साधना करने वाले। आतंक = दबदबा। दुहाई = दुःख भरी पुकार। कपट = धोखा, पाखण्ड। प्रकोप = क्रोध। आर्त्त दुःख भरी। असत्य = झूठे। भार = बोझ। सार्थक = सफल।]

प्रसंग—तीन वर्ष के अनथक परिश्रम से लिखे गये अपने ग्रन्थ को प्रो० मेहता ने मालती को समर्पित किया तो—मालती विस्मित ही नहीं दुःखी भी हो उठी। इसका कारण भी शीघ्र सामने आ गया—प्रो० मेहता द्वारा रखे गये विवाह-प्रस्ताव के रूप में जिसको सुनकर, प्रो० मेहता के सम्मुख, यथार्थ वस्तु-स्थिति को प्रकट करने हेतु, मालती ने सकारण अपनी मनोभावनाओं को मुखरित करते हुये (प्रो० मेहता से) कहा—

व्याख्या—ममत्व और अपनत्व का मोह और स्वार्थ भरा रूप वैवाहिक सम्बन्ध में जितना अधिक पाया जाता है, उतना मित्र-सम्बन्ध बनाने में नहीं। अतएव, मित्र के रूप में ही रहकर जीवन, मोह और स्वार्थ से दूर रहने (तथा परोपकारी-निःस्वार्थी बन पाने) के अवसर अधिक मिल सकते हैं। जब भी हमारा मन मोहासक्त होकर हमें विवाह-बन्धन में बाँध देगा, तभी हमारी मानवता की सीमा सीमित या संकुचित होने लगेगी (और हम धीरे-धीरे परिवार या पति पत्नी तक ही सिमटकर रह जायेंगे) इतना ही नहीं, गृहस्थी-विषयक नई-नई और अनेकानेक जिम्मेदारियाँ भी हम पर इस कदर हावी हो जायेंगी कि हमारी समस्त कर्मक्षमता उन्हीं को पूरा करने में लगी रहेगी (हमें कुछ ऊँचा करने के अवसर नहीं मिल पायेंगे) इसी कारण से मैं तुम जैसे विचारवान और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति (के मन) को विवाह या गृहस्थ रूपी कारागार में बन्दी बनाना नहीं चाहती। अब तक तुम्हारा जीवन यज्ञ (की भाँति पवित्र और दूसरों का हित करने वाला) रहा है जिसमें स्वार्थ-भावना का समावेश अत्यल्प मात्र ही है। मैं तुम्हारे इस रूप वाले उच्च स्तरीय पवित्र जीवन को (विवाह के द्वारा तुमको गृहस्थी बनाकर सांसारिकता के) निम्नस्तर पर लाना नहीं चाहती। निःसन्देह तुम जैसे साधना करने वाले व्यक्तियों की संसार के प्राणियों को अभी भी आवश्यकता है। वे चाहते हैं कि आप जैसे

व्यक्ति अपने सेवा-क्षेत्र को इतना अधिक विस्तृत बनायें कि सारा संसार ही उसमें समाविष्ट हो जाये। आशय यही है कि आप केवल अपनी या अपने परिवार की ही सेवा-सीमाओं में न उलझें वरन, सारे संसार को अपना परिवार मानकर, सभी प्राणियों की सेवा-सहायता करें। आज तो इसकी जरूरत और भी अधिक है क्योंकि आज सर्वत्र ही अन्याय, आतंक, भय, अन्धविश्वास, कपट और स्वार्थादि जैसी दूषित चीजें छायी हुई हैं जिनसे दुखी और त्रस्त होकर संसार के लोग आर्त्तनाद कर रहे हैं, सहायता और छुटकारा पाने की याचनाएँ कर रहे हैं। यदि तुमने भी इसको नहीं सुना तो और कौन सुनेगा ? दूसरे गृहस्थ जनों की तरह तुम तो इसकी ओर से कान नहीं मुँद सकते। तुम्हें तो ऐसा करना एकदम, भार की तरह, असह्य बन जायेगा। तुमको तो अपनी विद्या, बुद्धि, मानवतावादी दृष्टि और उत्साह के साथ और भी अधिक क्षमतापूर्वक इसी महत् पथ पर बढ़ना चाहिये। निःसन्देह, मैं भी तुम्हारा अनुसरण करूँगी। मैं तो यही चाहती हूँ कि अपने जीवन की तरह ही तुम मेरा जीवन भी सफल कर दो।

विशेष—१. यह कथन मालती के महत्चरित्र का उद्घोषक है।

२. प्रो० मेहता के माध्यम से लेखक ने यहाँ बुद्धिजीवियों को मानव-समाज की सेवा करने की प्रेरणा प्रदान करायी है।

३. मालती का यह कथन एकदम उत्तम कोटि का उद्बोधन बन पड़ा है।

४. विचार प्रधान शैली है।

५. उत्तरार्ध में समकालीन यथार्थ स्थिति वर्णित है।

V. V. Imp. **मूल उद्धरण**—

संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। थाना-पुलिस, कचहरी-अदालत सब हैं हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिये सभी तैयार रहते हैं। भगवान न करे, कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो, आदमी कहां तक दबे ? यहां तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। (परि० ३५ : पृ० २६२)

प्रसंग—दातादीन की सलाह पर होरी अपनी छोटी पुत्री रूपा का विवाह-सम्बन्ध अधेड़ावस्था के रामसेवक के साथ करने को तैयार हो गया तो एक दिन रामसेवक स्वयं ही होरी के यहाँ आ गये। बातचीत में प्रसंग किसानों की दुरावस्था का छिड़ गया तो रामसेवक ने (किसानों की दुरावस्था को स्पष्ट करते हुये) होरी से कहा—

व्याख्या—इस संसार में गऊ की तरह सीधा-सादा और सहनशील बनकर रहने से काम नहीं चलता। कारण ? (व्यवहार में यही देखा गया है कि) जितना ज्यादा दबो, लोग उतना ही ज्यादा दबाते हैं। यूँ, कहने को तो गरीब किसानों की अत्याचारादि से सहायता करने के लिये पुलिस, कचहरी आदि भी हैं लेकिन वस्तुतः सहायता या रक्षा कोई नहीं करता। कारण ? हर तरफ (पैसे की) लूट मची है (अर्थात् हर अधिकारी, हर सत्ता पैसा निचोड़ना चाहती है) और गरीब की तो लोग गरदन तक काटने को तैयार रहते हैं। भगवान ऐसा समय न लाये कि कोई भी व्यक्ति बेईमानी करे क्योंकि बेईमानी करना पाप है लेकिन इससे भी बड़ा पाप है—अपने अधिकार और न्याय के विरुद्ध आवाज न उठाना, संघर्ष न करना (और चुपचाप कायर बनकर हर अत्याचार-अन्याय को सहते रहना)। होरी! तुम स्वयं सोचो कि कोई भी व्यक्ति आखिर कहाँ तक यह सब कुछ सह सकता है ? आज तो

स्थिति यह है कि किसान हर शक्ति-सम्पन्न के लिये चारे की भाँति आसानी से खाया जा सकने वाला खाद्य बनकर रह गया है।

विशेष—१. यहाँ पर समकालीन ही नहीं वरन् सर्वकालीन कृषक-समाज की दयनीय और अत्याचारग्रस्त स्थिति का सच्चा चित्रण है (जो प्रस्तुत उपन्यास का महत्वपूर्ण उद्देश्य भी है)।

२. लोकोक्ति-मुहावरों का सशक्त प्रयोग सबल भाषा पक्ष का साक्षी है।

३. सूक्तियों का सुन्दर प्रयोग है।

V. V. Imp मूल उद्धरण—

होरी खाट पर पड़ा शायद सब-कुछ देखता था, सब-कुछ समझता था, पर जबान बन्द हो गई थी। हां, उस की आंखों से बहते आंसू बता रहे थे कि मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह। मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके। (परि० ३६ : पृ० ३००)

[**शब्दार्थ**—जबान=वाणी, आवाज। निपटारा=किये हुए। मंसूबों=इरादों।]

प्रसंग—मरणासन्न होरी और उसकी मनःस्थिति का वर्णन करते हुये लेखक ने बताया है—

व्याख्या—(मरणासन्न अवस्था में) होरी बिस्तर पर पड़ा था। वह, संभवतः सब कुछ देखता-समझता था यद्यपि उसकी जिह्वा निष्क्रिय हो चुकी थी (अतः अनुभूतियों को शब्द नहीं दे सकता था)। आँखों से आँसू बह रहे थे मानो बता रहे हों कि मरते समय भी संसार का मोह छोड़ना व्यक्ति के लिये कितना मुश्किल है। जीवन में व्यक्ति जो कुछ नहीं कर पाया, उस पर दुःख मानना ही तो मोह कहलाता है क्योंकि जो कुछ कर्त्तव्य-कार्य कर लिये उनके प्रति भला क्या मोह हो सकता है? वस्तुतः, मरते समय का मोह तो (अपने परिवार के) उन लोगों के प्रति होता है जिनके प्रति हम अपने कर्त्तव्यों का पूरा पालन नहीं कर पाये और वे अनाथ बन कर रह गये अथवा अपनी उन अधूरी इच्छाओं के या इरादों के प्रति मोह जागता रहता है जिनको हम सन्तुष्ट नहीं कर सके। (निःसन्देह, होरी पर भी ये दोनों ही बातें चरितार्थ होती थीं)।

विशेष—१. मरणासन्न व्यक्ति (होरी) की मनःस्थिति का बड़ा सच्चा और मर्म-स्पर्शी वर्णन है।

२. सूक्तियों का बड़ा सबल प्रयोग है।

३. सरल-मिश्रित शब्दावली, सरलता, भावाभिव्यक्ति-क्षमता, छोटे-छोटे वाक्य तथा अत्यन्त प्रभावोत्पादकता आदि इस स्थल की प्रमुख भाषागत विशेषतायें हैं।

४. काव्यमयी वर्णन शैली है।

५. 'आँसू' का मानवीकरण है।

———